

The Collection of Hindu Law Texts.

Vol. XVIII.

THE

S'RÂDDHA MAYÛKHA

(*Sanskrit Text.*)

A TREATISE ON

S'RÂDDHA

BY

BHATTA NÎLAKANTHA.



~~~~~  
EDITED BY

**J. R. GHARPURE, B.A., LL. B., (Honours-In-Law)**

**Pleader, High Court,**

*Principal Law College, Poona.*

- Sa 35  
Nil/Gha

\_\_\_\_\_  
First Edition.  
\_\_\_\_\_

( *All rights reserved.* )

\_\_\_\_\_  
1927.

CENTRAL ARCHAEOLOGICAL  
LIBRARY, NEW DELHI.

Acc. No. .... 5597: .....  
Date..... 28/2/57 .....  
Call No. .... Sa 3 S / Nil / Gha. ....

---

Printed by O. S. Deole at the Bombay Vaibhav Press, Servants of India  
Society's Home, Sandhurst Road, Girgaon, Bombay,

and

Published by J. R. Gharpure, at the office of the Collections  
of Hindu Law Texts, Girgaon, Bombay.

---

धर्मशास्त्रग्रन्थमाला ( ग्रन्थाङ्कः १८ )

॥ श्रीः ॥

भट्टनीलकण्ठकृतभगवन्तभास्करे

श्राद्धमयूखः

( चतुर्थः )

स च

जगन्नाथ रघुनाथ घारपुरे, बी. ए., एलएल. बी.,  
हायकोर्ट वकील, मुंबई,

पुण्यपत्तनस्थव्यवहाराश्रमे मुख्याध्यापकः

इत्यनेन संशोधितः प्रकाशितश्च ।

प्रथमावृत्तिः

शकाब्दाः १८४८, क्रिस्ताब्दाः १९२७.

( अस्य ग्रन्थस्य सर्वेऽधिकारा राजशासनेन स्वायत्तीकृताः । )

---

---

मोहमय्यां 'मुंबईवैभव' मुद्रणालये 'चिंतामण सखाराम देवळे' इत्यनेन मुद्रितः,  
'जगन्नाथ रघुनाथ वारपुरे, हायकोर्ट-वकील' इत्यनेन प्रकाशितश्च ।

---

---



## उपोद्धातः ।

धर्मशास्त्रग्रन्थमालाया अयं अष्टादशमो ग्रन्थोऽधुना प्रकाशं नीयते । भट्टनीलकण्ठोद्घृत-  
भगवन्तभास्कराख्यधर्मशास्त्रप्रबन्धे द्वादश मयूखाः 'संस्काराचारकाला' इत्यादि श्लोके दर्शिताः ।  
तेषां चतुर्थोऽयं श्राद्धमयूखो नाम । तत्राद्यः समयमयूखो नीलकण्ठभट्टपुत्रः शंकरभट्टो रचितवान् ।  
आचाराद्येकादशमयूखास्तु भट्टनीलकण्ठेन स्वयमेव रचिता इत्यत्र विशेषः ।

भाट्टवंशविस्तारस्तथा भट्टनीलकण्ठस्य कालदेशादिविचारोऽस्माद्विरचितव्यवहारमयूखस्यांगल-  
भाषान्तरेऽस्या एव मालायाश्चतुर्दशमे विस्तरतः सावकाशश्च कृतः । सैव संक्षेपतो नीतिव्यव-  
हाराचारोत्सर्गप्रतिष्ठादिकेषुचिन्मयूखेषु दर्शितो भाट्टवंशवृक्षश्च दृत्तस्तत्स्थलेष्वालोचनीय इति नात्र  
उद्धापितः ।

अत्र यानि पुस्तकानि यैश्च सुमनस्कतया प्रेषितानि तेषां नामादीनि संज्ञाश्च प्रकाश्यन्ते । तद्यथा

अ—डेकनकॉलेजसंग्रहात्प्राप्तं विश्राम १।१२३ इत्यनुकमांकेन चिह्नितम् ।

ब— " " " १।१२४ " "

घ— " " " १।१२२ " "

ङ— " " " २।१७४ " "

क— " " १८७९-८०।६२ " "

ख— " " १८८६-९२।३१९ " "

र— " " १८८१-८२।८८२ " "

इ—आनन्दाश्रमसंग्रहादानीतम् । ३७०४ " "

न—सत्पुत्रवासिन्नीवालाचार्यगजेन्द्रगडकर इत्येतैः प्रेषितं । ८६

क्ष—फर्ग्युसनकॉलेजमंडलीकविभागात्प्राप्तम् ।

ज्ञ—राजापुरस्थपाठशालातः प्राप्तम् ।

य—श्रीमत्सरदारबिबलकर इत्येतेषां संग्रहात्प्राप्तम् । १७१ "

र— " मेहेंदले " " १०७४ "

क्ष—श्री वाराणस्यां शिलामुद्रितं ।

श—श्री गुजराथीमुद्रणालये मोहमय्यां मुद्रितं ।

परमुपकृतं नो येभ्यः सकाशादेतानि प्राप्तानीति ज्ञम् ।

# श्राद्धमयूखस्य विषयानुक्रमणिका ।

| विषयः                           | पृष्ठम्. | विषयः                          | पृष्ठम्. |
|---------------------------------|----------|--------------------------------|----------|
| मंगलाचरणम्                      |          | आशौचेन श्राद्धप्रतिबन्धे ...   | १६       |
| श्राद्धलक्षणम् ...              | २        | श्राद्धविघ्ने समुत्पन्ने ...   | १७       |
| „ भेदाः ...                     | २, ३     | आमश्राद्धं ...                 | १८       |
| श्राद्धकालाः ...                | ३        | कालनिषेधाः ...                 | १९       |
| अष्टका ...                      | ४        | श्राद्धे „ „ ...               | ४        |
| अन्वष्टकाः ...                  | ३, ४     | पिण्डदाने „ „ ...              | ४        |
| व्यतीपातः ...                   | ५        | क्वचित्प्रतिप्रसवः „ „ ...     | ४        |
| युगादयः ...                     | ६        | अपिण्डके स्ववावाचनम् ...       | ४        |
| मन्वादयः ...                    | ४        | श्राद्धदेशाः ...               | ४        |
| भिन्नतिथिषु फलम् ...            | ४        | श्राद्धाधिकारिणः ...           | २०       |
| विषशस्त्रहृतानाम् ...           | ७        | पुत्रादयः ...                  | ४        |
| काम्यश्राद्धानि ...             | ८        | पुत्रप्रतिनिधयः ...            | ४        |
| नक्षत्रश्राद्धानि ...           | ४        | गौणपुत्राः ...                 | ४        |
| तेषां फलं ...                   | ४        | पत्न्यादयः ...                 | ४        |
| महालयः ...                      | ८, ९     | दुहिता, दौहित्रः ...           | ४        |
| प्रतिपदादिश्राद्धानि ...        | ९, १०    | आतृपुत्रः ...                  | ४        |
| महालये निषिद्धकालाः ...         | ११       | पिता ...                       | ४        |
| पित्र्ये देवताक्रमः ...         | १२       | माता ...                       | ४        |
| „ क्रमांतरः ...                 | ४        | भगिन्यां विशेषः ...            | २१       |
| एकोद्दिष्टे विशेषाः ...         | ४        | तदभावे मातृसपिण्डाः ...        | ४        |
| बहुविप्रासंभवे ...              | ४        | „ शिष्यादयः ...                | ४        |
| भरणीश्राद्धे गयाफलम् ...        | १३       | „ स्त्रीहारी धनहारी च ...      | ४        |
| यत्यादीनां वनस्थानां ...        | ४        | सर्वाभावे नृपतिः ...           | ४        |
| त्रयादेशीश्राद्धम् ...          | ४        | एतेषां क्रमः ...               | ४        |
| मघाश्राद्धम् ...                | ४        | पुत्रेश्वरसोऽनुपनीतोऽपि ...    | ४        |
| चतुर्दशीश्राद्धम् ...           | १४       | अन्ये तूपनीता एव ...           | ४        |
| अवैधमृतानाम् ...                | ४        | सर्वाभावे स्त्रियः कुर्युः ... | २२       |
| मातामहश्राद्धम् ...             | १५       | सोदरासोदरभ्रातरः ...           | ४        |
| पक्षतिथिविशेषतः पार्वणनियमः ... | ४        | क्रियाभेदेन कर्तव्यवस्था ...   | २३       |
| आब्दिकादिषु मातामहपर्युदासः ... | ४        | त्रिप्रकाराः क्रियाः ...       | ४        |
| क्षयाह्वाज्ञाने ...             | ४        | „ पूर्वमध्यमोत्तराः ...        | ४        |
| दिनाज्ञाने मासाज्ञाने ...       | १६       | तास्त्राधिकारिणः ...           | २४       |
| प्रास्थानिकमासदिवसाज्ञाने ...   | ४        | सपिण्डनक्रियाधिकारिणः ...      | २५       |
| मरणाश्रवणे ...                  | ४        | तत्कालः ...                    | ४        |
| प्रेतक्रियोत्तरमागते विशेषः ... | ४        | गौणपुत्राणां विशेषः ...        | ४        |

| विषयः                        | पृष्ठम्. | विषयः                               | पृष्ठम्. |
|------------------------------|----------|-------------------------------------|----------|
| ध्यामुष्यायणकानां ...        | ...      | वैश्वदेवप्रकारः ...                 | ४२       |
| जीवत्पितृकस्यापि क्वचित् ... | २६       | तत्र विशेषः ...                     | ११       |
| तत्र देवताः ...              | २७, २८   | निमंत्रिताद्विजत्यागे दोषः ...      | ४३       |
| तत्राधिकारविचारः ...         | २९       | “ प्रायश्चित्तम् ...                | ११       |
| कालदेशकर्तृणामैक्यै ...      | २९       | श्राद्धकर्तृनियमाः ...              | ११       |
| ” तन्त्रता ...               | २९       | ब्राम्हणनियमाः ...                  | ११       |
| ” पार्थिव्यम् ...            | २९       | विप्रोपवेशनम् ...                   | ४४       |
| <b>द्रव्याणि</b>             |          | अनन्तरकृत्यम् ...                   | ४५       |
| ग्राह्याणि ...               | ३०       | श्राद्धभेदेन विश्वेदेवव्यवस्था ...  | ११       |
| वर्ज्यानि ...                | ३१       | आसनदानम् ...                        | ४६       |
| ग्राह्यफलानि ...             | ३२       | अर्घपात्रासादनम् ...                | ११       |
| वर्ज्यं ” ...                | ३३       | तत्रैतिकर्तव्यता ...                | ११       |
| कन्दाः ...                   | ११       | अर्घ्यदानादि ...                    | ४७       |
| श्राद्धे मांसविचारः ...      | ३४       | अर्घ्यपात्रासादनप्रकारः ...         | ११       |
| कुशाः ...                    | ३५       | न्युब्जपात्रस्थापनानंतरं विशेषः ... | ११       |
| तत्र कालः ...                | ११       | अमौकरणम् ...                        | ४८       |
| पावित्रलक्षणम् ...           | ११       | अग्न्यभावे विप्रपाणौ ...            | ४९       |
| ब्रह्मग्रन्थिः ...           | ११       | परिवेषणम् ...                       | ५०       |
| तिलाः ...                    | ३६       | अन्ननिवेदनम् ...                    | ११       |
| पुष्पाणि ...                 | ११       | <b>भोजयितुर्नियमाः</b> ...          | ११       |
| अर्घपात्राणि ...             | ११       | यजमानजप्यानि ...                    | ११       |
| भोजनपात्राणि ...             | ३७       | ऋग्वेदजप्यानि ...                   | ११       |
| <b>ब्राह्मणाः</b>            | ११       | यजुर्वेद ” ...                      | ५१       |
| प्रशस्ताः ”                  | ११       | तैत्तिरीयाणां ” ...                 | ५२       |
| अनुकल्पः ...                 | ३८       | वाजसनेयिनां ” ...                   | ११       |
| वर्ज्या ब्राह्मणाः ...       | ३९       | मैत्रायणीमानां ” ...                | ११       |
| सर्वापवादः ...               | ३९       | कठानां ” ...                        | ११       |
| श्राद्धे विभक्तयः ...        | ११       | छन्दोगजप्यानि ...                   | ११       |
| चतुर्थी-आसने संकल्पे च ”     | ११       | पुराणजप्यानि... विशेषः ...          | ११       |
| प्रथमा तर्पणे ”              | ११       | <b>भोक्तृनियमाः</b> ...             | ५३       |
| संबोधनं ”                    | ११       | विकिरदानम् ...                      | ५४       |
| षष्ठी ”                      | ११       | तत्र मंत्राः ...                    | ११       |
| सव्यापसव्यनिर्णयः ...        | ४०       | ” प्रमाणम् ...                      | ११       |
| तत्र कर्माणि ...             | ४१       | आचमनदानम् ...                       | ११       |
| विप्रनिमंत्रणादि ...         | ११       | विकिरेतिकर्तव्यता ...               | ११       |
| तत्र निषेधाः ...             | ४२       | वैश्वदेवविकिरमंत्रः ...             | ११       |
| विप्रसंख्या ...              | ११       | पित्र्य ” ” ...                     | ५५       |
| अनेकविप्राभावे ...           | ११       | विकिरस्य प्रतिपत्तिः ...            | ११       |

| विषयः                        | पृष्ठम्. | विषयः                   | पृष्ठम्. |
|------------------------------|----------|-------------------------|----------|
| <b>पिण्डदानम्</b>            | ५५       | त्रिपुष्करादियोगः       | ७८       |
| आश्वलायनीयम्                 | ...      | आहिताग्नेर्विशेषः       | ...      |
| पिण्डदानदेशः                 | ५६       | <b>वृषोत्सर्गः</b>      | ...      |
| स्थानकल्पना                  | ...      | अकरणे निन्दा            | ७९       |
| लेखाकरणम्                    | ...      | तद्देशः                 | ...      |
| तत्र मंत्रः                  | ...      | वृषलक्षणम्              | ...      |
| दर्भास्तरणम्                 | ...      | नीललक्षणम्              | ...      |
| तदनंतरम्                     | ...      | तत्र विधिः              | ...      |
| पिण्डपरिमाणम्                | ५८       | जपे विशेषः              | ...      |
| <b>दक्षिणा</b>               | ५९       | अंकनं पूजनं च           | ८०       |
| <b>स्वधावाचनम्</b>           | ...      | उत्सर्गः                | ८१       |
| <b>श्राद्धप्रयोगः</b>        | ...      | तत्फलम्                 | ...      |
| संख्यप्रहणम्                 | ६३-६४    | <b>मृतशय्यादानविधिः</b> | ८२       |
| विप्रप्रार्थना               | ६५       | तत्र मंत्रः             | ...      |
| आपोशानादि                    | ...      | <b>उदकुम्भश्राद्धम्</b> | ...      |
| विकिरः                       | ...      | तत्र विशेषः             | ...      |
| पिण्डदानम्                   | ६६       | <b>सपिण्डीकरणम्</b>     | ...      |
| आशिषः                        | ...      | तत्र कालाः              | ८३       |
| प्रार्थना                    | ६७       | प्रेतेऽग्निमति कर्म     | ...      |
| <b>तर्पणम्</b>               | ६८       | अनाग्निमति              | ...      |
| पक्षश्राद्धे विशेषः          | ...      | उभयोः साम्निकत्वे       | ८४       |
| श्राद्धदिने नित्यतर्पणविचारः | ६९       | अन्येष्टिपद्धतिः        | ...      |
| वैश्वदेवकालनिर्णयः           | ...      | तत्प्रकारः              | ८५       |
| सामेरनमेष्ट                  | ७०       | तत्राधिकारविचारः        | ८६       |
| <b>ब्रम्हार्पणम्</b>         | ७१       | सह्यगमने विशेषः         | ...      |
| संकल्पश्राद्धम्              | ७१       | आभ्युदयिकश्राद्धम्      | ८७       |
| आमहोमादिविधिः                | ७२       | तंत्रेण                 | ...      |
| तत्र ऊहादयः                  | ७३       | पृथक्                   | ...      |
| “ ब्राह्मणसंख्या             | ७४       | मातरः                   | ८९       |
| <b>ऊहविचारः</b>              | ७४-७५    | कचिद्विशेषः             | ...      |
| एकोद्दिष्टम्                 | ७६       | तत्र प्रयोगः            | ९०       |
| तत्र भेदाः                   | ...      | <b>नित्यश्राद्धम्</b>   | ९१       |
| मलमासे प्राप्ते              | ७७       | संन्यासांगश्राद्धम्     | ९२       |
| ऊनमासिककालः                  | ...      | जीवच्छ्राद्धम्          | ...      |
|                              | ...      | जलधेनुविधिः             | ९३, ९४   |

॥ श्री ॥

भट्टनीलकण्ठकृतभगवंतभास्करे

॥ अथ श्राद्धमयूखः प्रारभ्यते ॥

मंगलाचरणम्

श्रीगणेशाय नमः ॥

+ [ यो लीलया संतनुतेऽत्र विश्वं तत्पालयत्यात्मनि विश्वरूपे ।

ल्यं नयत्याशु च पूर्णरूपः शिवं तनोत्वाशु रविर्ममासौ ॥ १ ॥

जज्ञे पितामहतनोः खलु कश्यपो यस्तस्मादजायत मुनिस्तु विभाण्डकाख्यः ।

तं पुत्रिणां धुरमरोपयदध्यशृङ्गस्तस्यान्वयेऽप्यजनि शृङ्गिवराभिधानः ॥ २ ॥

तस्मिन्वंशे महति वितते सङ्गराख्ये नृपाणां राजा कर्णः समजनि यथा सागरे शीतरश्मिः ।

कीर्त्या यस्य प्रथिततरया श्रोत्रजातेऽभिपूर्णे कर्णस्यापि प्रविततकथा नावकाशं लभन्ते ॥ ३ ॥

विशोकाख्यदेवस्ततस्तत्सुतोऽभूद्विशोकाकृता येन सर्वा धरित्री ।

ततोऽप्यास राजाऽस्तशत्रुस्ततोऽभूदयाख्यो स्येणैव सर्वाहितघ्नः ॥ ४ ॥

बभूवाथ वैराटराजस्ततोऽभून्नृपो मेदिनीवल्लभो वीढराजः ।

नरब्रह्मदेवस्ततो मन्थुदेवस्ततोऽभून्नृपश्चन्द्रपालाभिधानः ॥ ५ ॥

शिवगणाख्यनृपः समजन्यथो शिवगणाख्यपुरं प्रचकार यः ।

शिवगणेन समः सकलैर्गुणैः शिव शिव प्रथमो गणनासु यः ॥ ६ ॥

रोलिचन्द्र इति तत्तनयोऽभूत्कर्मभेननृपतिस्तमथानु ।

लोकपो नरहरिर्नृपराजो रामचन्द्र इति तत्तनुजातः ॥ ७ ॥

यशोदेवस्ततो जातस्ताराचन्द्रनृपस्ततः । चक्रसेनस्तततो राजा राजसिंहनृपो यतः ॥ ८ ॥

ततोऽप्यभूद्रूपतिसाहिदेवः स्वकीर्तिभिर्निर्जितदुग्धासिन्धुः ।

अभूत्ततः श्रीभगवन्तदेवः सदैव भाग्योदयवान्क्षितीशः ॥ ९ ॥

यद्दानद्रविणाद्रिनिर्जितवपू रत्नाचलो लज्जया दूरे स्तब्ध इलावृते निविशते नो यत्र पुंसां गतिः ।

किंच त्रस्यदरातिवामनयनानेत्राम्बुभिर्वर्द्धितस्तेजोभिर्वर्द्धवामुखोत्थहुतभुक्तुल्यः कथं नो भवेत् ॥ १० ॥

आज्ञप्तस्तेन राज्ञा विबुधकुलमणिर्दाक्षिणात्यावर्तसो भट्टः श्रीनीलकण्ठः स्मृतिषु दृढमतिर्जैमिनीयेऽद्वितीयः ।

आज्ञामादाय सूध्नां सविनयममुना तस्य सर्वात्रिबन्धान्दृष्ट्वा सम्यग्विविच्य प्रविततकिरणस्तन्यते भास्करोऽयम् ॥ ११ ॥ ]

तिथेर्मयूखं प्रतिपाद्य सम्यगाराख्य धामाऽथ गिरामगोचरम् ।

श्राद्धं कृत्यत्र स नीलकण्ठः संप्रेरितः श्रीभगवन्तवर्मणा ॥ १२ ॥

प्रतारकैरादृतमत्र किञ्चिन्मया तु निर्धूलतया तदुज्झितम् ।

ऊनोक्तितातो नहि तेन काचित्खपुष्पहीनाऽपचितिर्न हीयते ॥ १३ ॥

+ एतत्तु राज्ञोऽपुस्तकयोरेवं पठितं ।

## श्राद्धलक्षणम् ।

मृतोद्देश्यको विप्रस्वीकाराङ्गको द्रव्यत्यागः श्राद्धम् । जीवच्छ्राद्धे दैवश्राद्धे च तत्पदं गौणं कौण्डपात्यग्निहोत्रपदवत् । विप्रस्वीकारवच्चोक्त्या तर्पणनिवृत्तिः । यत् केचित् त्यागाभावादेव तर्पणनिवृत्तिमाहुः । तन्न । द्रव्यदेवतासंयोगेनेन्द्र 'ऊर्ध्वोर्ध्व इति आधारमाधारयति' इत्यादि-  
 ५ च्यागकल्पनाया आवश्यकत्वात् । न ममेत्यभिलापः परं नास्ति आचाराभावात् । यत्रैव यागाग्नि-  
 होत्रादावभिलापाचारस्तत्रैव तादृशश्रुत्यनुमानम् न सर्वत्र । त्यागस्तु मानसः सर्वत्राप्यविशिष्टः ।  
 न च देवताभावेन द्रव्यदेवतासंयोगाभावः । "देवतास्तर्पयति" (अ. ३।४।१) इत्याश्वलाय-  
 नादिस्त्रयस्थदेवतापदेन तत्समर्पणात् । अङ्गकत्वोक्त्या च विप्रस्वीकृतेः श्राद्धस्वरूपघटकता  
 व्यावर्त्यते तेन तदभावेऽपि प्रधानसिद्धिरविहता । पिण्डदानस्य च प्राधान्यसिद्धिः । अन्यथा  
 १० तस्य विप्रस्वीकरणान्तत्वाभावेन प्राधान्यं न स्यात् । एतेन विप्रस्वीकारान्तो द्रव्यत्यागः श्राद्धं  
 पिण्डदानाग्नौकरणयोश्च तत्पदशक्यत्वमिति विरुद्धं प्रलपन्तः केचिदपास्ताः । अत एव आपस्तम्ब-  
 सूत्रे ( २।१६।३ ) "पितरो देवता ब्राह्मणस्त्वाहवनीयार्थः" इति विप्रस्वीकृतेस्त्यक्त-  
 द्रव्यप्रतिपत्तित्वमाहवनीयाधिकरणकहोमवदुक्तं संगच्छते । यं तु ब्रह्माण्डे

"देशे काले च पात्रे च श्रद्धया विधिना च यत् । पितॄनुद्दिश्य विप्रेभ्यो दत्तं श्राद्धमुदाहृतम्"॥  
 १५ इति भोज्याग्निप्रतिपादनांशेन दानरूपता "पितॄन् यजेत" इत्यादिस्मृत्यन्तरे च  
 यागरूपता व्यवहृता सा गौणीति केचित् । यागव्याप्यत्वेऽपि श्राद्धस्य न काचित् क्षतिः ।  
 गौण्यां मानाभावात् । श्राद्धे च पितॄन्द्देश्यकान्नत्यागरूपत्वादिप्रभोजनपिण्डदानयोरेव प्राधान्यम् ।  
 तादृशान्नत्यागरूपस्य फलसम्बन्धित्वेन तत्र तत्र वक्ष्यमाणत्वात् । एवमेव कपर्दिधूर्तस्वामिप्रभृतयः।

यत्तु तैः अग्नौकरणमपि प्रधानमुक्तं तत्र मूलं मृग्यम् । यत्तु प्राच्याः केचित्सङ्क्रान्त्यादि-  
 २० श्राद्धेषु पिण्डनिषेधः पर्युदासो वा प्राप्तिमपेक्षते सा चातिदेशेन चाङ्गानामेव न प्रधानस्यातः  
 पिण्डदानमङ्गमित्याहुः । तन्न । न ह्यातिदेशिक्येव प्राप्तिनिषेधस्य पर्युदासस्य बोधोपजीव्या ।  
 प्रधानत्वे हि तस्यापि श्राद्धपदशक्यत्वात्तद्विधिनैव प्राप्ते निषेधपर्युदासोपपत्तेः । अत उक्तयुक्त्या  
 तदपि प्रधानम् ।

यत्तु कर्कानुयायिनः 'पिण्डदानमेव प्रधानं नान्योऽन्नत्यागः' इति तदपि न ।  
 २५ पितॄन्द्देश्यकान्नत्यागस्यापि फलसंबन्धाविशेषात् । निषिद्धपर्युदस्तपिण्डके सङ्क्रान्त्यादिश्राद्धे  
 प्रधानाभावेनाङ्गमात्रानुष्ठानप्रसङ्गाच्चेति दिक् ।

तच्च श्राद्धं पार्वणमेकोद्दिष्टं च । पार्वणं च दर्शश्राद्धमेव 'पर्वणि भवम्' इति योगात् ।  
 न च पर्वशब्दस्य संक्रान्त्यादावपि सत्त्वान्निमित्तके श्राद्धे तथा पूर्णमाश्राद्धे तथामावास्यायां  
 विशेषेण इति निगमवचनेन कृष्णपक्षश्राद्धस्यामावास्याख्यपर्वयोगात्तत्राप्यतिप्रसक्तो योग इति  
 ३० वाच्यम् । 'अमावास्यायां यत्क्रियते तत्पार्वणमुदाहृतम्' इति रुद्धिबोधनेन योगरूढत्वात् ।  
 संक्रान्त्यादौ पर्वशब्दस्य गौणत्वाच्च ।

१ अवर्द्धनक्ष-परे । २ रधनक्ष-पवार; अवर्द्धक-पवार; टयध-वाचार । ३ अवर्द्धयनधटक्ष-  
 अवशिष्टः । ४ अवर्द्धनयनरध-द्रव्यदेवताभावेन । ५ अवर्द्धन-यत्तु । ६ अवर्द्धयनटक्षध-भोज्यांशः ।  
 ७ अवर्द्ध-गौणेति; यनधक्षइ-गौण्येति । ८ न-पर्युदास ।

“ एकमुद्दिश्य यच्छ्राद्धमेकोद्दिष्टं प्रचक्षते । त्रीनुद्दिश्य तु यत्तद्धि पार्वणं मुनयो विदुः ” ॥

इति कण्ववचसि तु त्र्युद्देश्यकश्राद्धमात्रे पार्वणशब्दः कौण्डपायनहोमे ‘ मासमग्निहोत्रं जुहुति ’ इत्यग्निहोत्रशब्द इव गौणः । न च ‘ त्रीनुद्दिश्य तु यत्तद्धि ’ इत्यस्यापि रूढि-  
बोधकत्वमेव इति वाच्यम् । दार्शिकेऽप्येतेनैव रूढिसिद्धेरमावास्यायामित्यस्याऽऽनर्थक्यप्रसङ्गात् ।  
अतः पार्वणशब्दो दार्शिकस्यैव नामधेयमिति दर्शश्राद्धप्रकरण एव च मन्वादिस्मृतिषु धर्मपाठात् ५  
तदेव प्रकृतिः । अन्येषु तु धर्मानुक्तेर्विकृतित्वम् । आश्वलायनसूत्रानुसारिणां तु ‘ अथातः  
पार्वणे श्राद्धे काम्य आभ्युदयिक एकोद्दिष्टे च ’ इति ( अ. ४।७।१ ) तत्सूत्रेण चत्वारि श्राद्धानि  
प्रक्रम्य धर्माभ्यानात् चतुर्णामपि समानविधानता । कात्यायनपस्तम्बसत्याषाढसूत्रानुसारिणां  
कुष्णपक्षश्राद्धं प्रकृतिः । तत्रैव धर्माभ्यानात् । तदपि प्रकृतित्वमन्वष्टकादीन्प्रत्येव यत्र ‘ तस्य  
मासिश्राद्धेन कल्पो व्याख्यातः ’ इत्यापस्तम्बादिसूत्रमस्ति । न्यायेन ‘ सर्वश्राद्धप्रकृतित्वे प्राप्ते १०  
एवमादिसूत्रस्य परिसंज्ञार्थत्वात् । एतत्सूत्रपरिसंख्यातानां तु वार्षिकादीनां दर्शश्राद्धविकृति-  
त्वमिति निरणायि मया विस्तरेण मासिश्राद्धपद्धतौ । अतो वार्षिकादिश्राद्धान्तरेषु चोदना-  
लिङ्गेन पूर्वोक्तकण्ववचनोक्तपार्वणनाम्ना

“ सपिण्डीकरणात्पूर्वमेकोद्दिष्टं सुतः पितुः । ऊर्ध्वं पार्वणवत्कुर्यात्प्रत्यब्दमितरेण तु ” ॥ इति  
लौगाक्षिवचनेन वा दार्शिकातिदेशः ।

१५

श्राद्धकालानौह याज्ञवल्क्यः ( आ. २।१७-२।१८ )

“ अमावास्याऽष्टका वृद्धिः कुष्णपक्षोऽथनद्वयम् । द्वयब्राह्मणसम्पत्तिर्विषुवत्सूर्यसंक्रमः ॥

“ व्यतीपातो गजच्छाया ग्रहणं चन्द्रसूर्ययोः । श्राद्धं प्रति रुचिश्चैव श्राद्धकालाः प्रकीर्तिताः ” ॥ इति ।

अत्र न श्राद्धानुवादेन कालविधिः । याज्ञवल्क्यस्मृतौ श्राद्धस्य वचनान्तरेणाप्राप्तेः ।  
आवश्यकश्राद्धाणां स्मृतौ श्राद्धस्य विधिरनुवादो वा । अन्यथेतिकर्तव्यताम्नानवैयर्थ्यप्रसङ्गात् । २०  
अतोऽत्रामावास्यादिविशिष्टश्राद्धविधायकान्येतावन्ति वाक्यानि कथ्यन्ते । तत्रामावास्या  
निर्णीता समयमयूखे ।

### अष्टका

“ हेमन्तशिशिरयोश्चतुर्णामपरपक्षाणामष्टमीष्वष्टकाः ” ( २।४।१ ) इत्याश्वलायनोक्ताश्चतस्रः  
भाद्रकृष्णाष्टमी च पञ्चमी । तथा च पाद्रे वसुनामा पिता स्वकन्यां शशापानुजग्राह च २५  
साऽष्टकात्वेनोत्पन्ना इत्युक्तेः—

“ प्रौष्ठपद्यष्टका भूयः पितृलोके भविष्यति ” । आयुरारोग्यदा नित्यं सर्वकामफलप्रदा ॥” इति ।  
अत्राशक्तावनुकल्पमाहाश्वलायनः ( २।४।८-११ ) “ अप्यनडुहो यवसमाहरेदग्निना वा कक्षमुपोषे-  
देषा मेऽष्टकेति न त्वेवानष्टकः स्यात् ” इति । यवसमार्द्रतणम् । कक्षं शुष्कतृणम् । उपेषोद्देहत् ।

### अथान्वष्टकाः ।

३०

अष्टका उक्त्वाऽऽहाऽऽश्वलायनः ( २।५।१ ) “ अपरेद्युरन्वष्टक्यम् ” इति । अत्र च नवम्या

१ अवर्द्धयनरडक्षरध-श्राद्धभेदानाह । २ ईनवअवधयड-कन्या । ३ अयनधधडर-भविष्यासि  
४ अवर्द्धयनरडक्षरध-तत्रा ।

अपराह व्याख्या न निर्णयः । तस्या निमित्तत्वाश्रुतेः । सर्वस्मृतिसूत्रेषु 'उत्तरेद्युरपरेद्युः श्वोभूत' इत्यष्टकोत्तरादिनस्यैवान्वष्टकानि निमित्ततया श्रवणाच्च । कात्यायनः

“अन्वष्टकासु नवभिः पिण्डैः श्राद्धमुदाहृतम् । पित्रादि मातृमध्यं च ततो मातामहान्तर्कम्” ॥ इति । आग्नेये

५ “अन्वष्टकासु वृद्धौ च गयायां च क्षयेऽहनि । अत्र मातुः पृथक् श्राद्धमन्यत्र पतिना सह” ॥ इति । हेमाद्रौ आगलेयः

“केवलास्तु क्षये कार्या वृद्धावादौ प्रकीर्तिताः । अन्वष्टकासु मध्यस्था नान्त्याः कार्यास्तु मातरः” ॥ इति । तत्रैव ब्रह्माण्डे

“पितृभ्यः प्रथमं दद्यान्मातृभ्यस्तदनन्तरम् । ततो मातामहेभ्यश्चेत्यान्वष्टक्ये क्रमः स्मृतः” ॥ इति ।

१० दीपिकायां तु ‘मातृयजनं त्वन्वष्टकास्वादितः’ इत्युक्तं तज्जीवत्पितृकविषयं तस्य पितृपार्वणाभावात् इति कश्चित् । तत्तुच्छम् । क्रमानुपपत्तेः । शास्त्राभेदेन तु व्यवस्था युक्ता । तत्राप्याश्वलायनादीनां पितृपूर्वकम् । तत्सूत्रे तथाभ्यानात् । अन्येषां तु मातृपूर्वकम् । अत्र सुवासि-  
न्यपि भोज्या ।

“भर्तुग्रे मृता नारी सह वा तेन या मृता । तस्याः स्थाने नियुज्यते विप्रैः सह सुवासिनीम्” ॥

१५ इति स्मृतेः । इदं च नित्यम्

“अष्टकान्वष्टकास्तिस्रस्तथैव च नृपोत्तम । एतानि श्राद्धकालानि नित्यानाह प्रजापतिः ॥

“श्राद्धमेतेष्वकुर्वाणो नरकं प्रतिपद्यते ॥” इति हेमाद्रौ विष्णुधर्मोत्तरात् । अत एवेदं स्वतन्त्रप्रधानं नाष्टकाङ्गम् । पूर्वेषुः श्राद्धं त्वष्टकाङ्गम् फलवत्संनिधावफलं तदङ्गमिति न्यायात् । एष एव पितामहचरणानामप्याशयः । इदं च शूद्रानुपेताभ्यामपि कार्यमिति

२० वक्ष्यतेऽधिकारिनिर्णये । जीवत्पित्राऽपीदं कार्यम्

“आन्वष्टक्यं गयाप्राप्तौ सत्यां यच्च मृतेऽहनि । मातुः श्राद्धं सुतः कुर्यात्पितर्यपि च जीवति” ॥ इति मैत्रायणीयपरिशिष्टात् । अकरणे प्रायश्चित्तमृग्विधाने

“एभिर्भुभिर्जपेन्मंत्रं शतवारं तु तद्धिने । आन्वष्टक्यं यदा शून्यं संपूर्णं याति सर्वथा” ॥ इति । भाद्रपदान्वष्टकाश्राद्धमप्यावश्यकम् ।

२५ “सर्वासामेव मातृणां श्राद्धं कन्यागते रवौ । नवम्यां हि प्रदातव्यं ब्रह्मलब्धवरा यतः” ॥

इति स्मृतेः । अत्र सर्वासामितिवचनात्सापत्नमातुरपि श्राद्धम् । तत्र मातृसापत्नमात्रो-  
र्देवतात्वे विशेषो नारायणवृत्तावुक्तः

“अनेका मातरो यस्य श्राद्धे चापरपक्षिके । अर्घ्यदानं पृथक्कुर्यात्पिण्डमेकं तु निर्वपेत्” ॥

द्वयोर्बह्वीनां च नामैक्ये द्विवचनान्तं बहुवचनान्ते चेति । श्राद्ध आन्वष्टक्ये । यत्तु पठन्ति

३० “तमिस्रपक्षे नवमी पुण्या भाद्रपदे हि या । चत्वारः पार्वणाः कार्याः पितृपक्षे मनीषिभिः” ॥ इति ।

तत्राकरश्चिन्त्यः । इदं च सधवाया एव मातुर्मरणे भवति इति केचित् । वस्तुतस्तु अविशेषा-  
द्विधवाया अपि मृताया भवति । यत्तु “श्राद्धं नवम्यां कुर्यात्तन्मृते भर्तारि लुप्यति” इति वचस्तदनाकरम् । एतच्च मातृक्षयाहश्राद्धवदविशेषाज्जीवत्पितृकेणापि सपिण्डं कार्यम् ।



यत्तु जीवत्पितृकनिषेधे

“मुण्डनं पिण्डदानं च प्रेतकर्म च सर्वशः । न जीवत्पितृकः कुर्याद् गुर्विणीपतिरेव च ” ॥

इति दक्षवाक्यत्वेनालोसि तद्दक्षस्मृतौ निबन्धान्तरे चादर्शनादनाकरम् । इत्यस्तु प्रसक्तानु-  
प्रसक्तम् । प्रकृतां याज्ञवल्क्यवचोव्याख्यामनुसरामः । वृद्धिः पुत्रजन्म । एतानि च श्राद्धानि  
नित्यानि ।

“अमावास्याव्यतीपातपौर्णमास्यष्टकासु च । विद्वान् श्राद्धमकुर्वाणः प्रायश्चित्तीयते तु सः ” ॥  
इति पितामहोक्तेः ।

“श्राद्धं कुर्यादवश्यं तु प्रमीतपितृको द्विजः । इन्द्रक्षये मासि मासि वृद्धौ प्रत्यब्दमेव च ” ॥

इति लौगाक्षिवाक्याच्च । कृष्णः सर्वमासीयः । न तु भाद्रपदस्यैव । अयनद्वयं मकर-  
कर्कटसंक्रमणे । विषुवतुलामेषसंक्रमणे । संक्रमादयनविषुवतोः पृथङ्निर्देशः फलभूमार्थः । द्रव्यं १०  
पायसादि । ब्राह्मणो वक्ष्यमाणलक्षणः । तयोः संपत्ती इति द्विवचनान्तः पाठ इति केचित् ।  
एकवचनान्तः पाठः । द्रव्यब्राह्मणयोः सम्पत्तिर्यस्मिन्काल इति बहुव्रीहिरिति माधवस्मृतिचन्द्रिका-  
कारौ । ‘द्रव्यम्’ इति ‘असमस्तम्’ इति मिताक्षरायाम् । व्यतीपातः प्रसिद्धो योगः ।

“श्रवणाश्विधनिष्ठार्द्रा नागदैवतमस्तके । यद्यमा रविवारेण व्यतीपातः स उच्यते ” ॥  
इति वृद्धमनूक्तो वा । नागदैवतमाश्लेषा । मस्तकं मृगाशिरः । श्रवणादिपञ्चानां चतुर्थपाद इति १५  
हेमाद्रौ । शास्त्रान्तरेऽपि

“पञ्चाननस्थौ गुरुभूमिपुत्रौ मेषे रविः स्याद्यदि शुक्लपक्षे ।

पाशाभिधाना करमेण युक्ता तिथिर्व्यतीपात इतीह योगः ” ॥

पञ्चाननः सिंहः । पाशाभिधाना द्वादशी । करमं हस्तः । गजच्छाया त्वपराके वायुपुराणे

“हंसे हस्तस्थिते या तु मघाऽशुक्ला त्रयोदशी । तिथिर्वैवस्वतीनाम सा छाया कुंजरस्य तु ” ॥ इति । २०

तथा

“हंसे हंसस्थिते या तु अमावास्या करान्विता । सा ज्ञेया कुञ्जरच्छाया इति बौधायनोऽब्रवीत् ॥ ”

हंसः सूर्यः । तद्देवतावत्वाद्धस्तनक्षत्रमपि । चन्द्रसूर्ययोर्हस्तस्थयोरिति फलितोऽर्थ इति  
हेमाद्रौ । स्मृत्यन्तरे

“यदेन्दुः पितृदैवत्ये हंसश्चैव करे स्थितः । याम्या तिथिर्भवेत्सा हि गजच्छाया प्रकीर्तिता ” ॥ इति । २५

पितृदैवत्यं मघा । हंसः सूर्यः । करो हस्तः । याम्या तिथिस्त्रयोदशी हस्तच्छाया इति  
स्मृतिचन्द्रिकायाम् । “एतद्धेतवे पितृणामयनं यद्धस्तिश्राद्धं तस्माच्छायायां श्राद्धं दद्यात्” इति  
काठकोक्तेः । “गजच्छायासु कुर्वीत कर्णव्यजनवीजिता ” इति भारतीकोक्तेः । ‘श्राद्धकालाः  
प्रकीर्तिताः’ इति गजच्छायालक्षितकालग्रहणादविरुद्धम् ।

ग्रहणं स्पर्शकालः ।

३०

“त्रिदशाः स्पर्शसमये तृप्यन्ति पितरस्तथा । मनुष्या मध्यकाले तु मोक्षकाले तु राक्षसाः ” ॥  
इति वृद्धवसिष्ठोक्तेः । श्राद्धं प्रति रुचिः । इति न परिसंख्या । अन्येषामपि कालानां श्राद्धा-

१ अवईयतक्षर-मस्तके प्रथमचरणे । २ अवईधनयक्षट-किंचित्पाठव्यत्यासो दृश्यते । वायुपुराणे-  
द्धारानन्तरं “स्कान्दे” इति यदेन्दुः इत्यादि त्रयादेशीपर्यन्तं अन्तरैव प्रक्षिप्तम् । ३ अवईधनयक्षट-पाठः ।

नुवादेन विधानात् । ब्राह्मे

“आषाढ्यामथ कार्तिक्यां माध्यां मन्वन्तरादिषु । युगादिषु च दुःस्वप्ने जन्मर्क्षे ग्रहपीडिते ॥

“प्रौष्ठपदासिते पक्षे श्राद्धं कुर्वीत यत्नतः । मार्गशीर्षे च पौषे च माघे प्रौष्ठे च फाल्गुने ॥

“कृष्णपक्षे च पूर्वैश्वरान्वष्टक्यं तथाऽष्टमी” इति । “तिस्रोऽष्टकास्तासु श्राद्धं प्रकुर्वीतैव पार्वणम्” ॥ इति ।

५ युगादयो विष्णुपुराणे ( ३।१।११ )

“वैशाखमासस्य तु या तृतीया नवम्यसौ कार्तिकशुक्लपक्षे ।

नभस्य मासस्य तमिन्नपक्षे त्रयोदशी पञ्चदशी च माघे ” ॥

माघे पञ्चदशी अमावास्या । ‘ द्वे शुक्ले द्वे तथा कृष्णे ’ इति वक्ष्यमाणवचनात् ।

देवलः

१० “तृतीया रोहिणीयुक्ता वैशाखस्य मता तु या । मघाभिः सहिता कृष्णा नभस्ये तु त्रयोदशी ॥

“नवमी कार्तिकस्यापि शततारकसंयुता । तथा तेनैव ऋक्षेण माघे पञ्चदशी युता ॥

“युगादयः स्मृता ह्येता दत्तस्याक्षयकारकाः ” । इति ।

इह च तत्र योगाद्युगादिषु शुक्लादिरेव मासो ग्राह्यः । कृष्णादिपक्षे तद्योगाभावात् । यत्तु

ब्रह्मपुराणे—“माघस्य पौर्णमास्यां तु धोरं कलियुगं स्मृतम् ” इत्युक्तं तत्कल्पभेदेन

१५ ज्ञेयम् । नारदीये

“द्वे शुक्ले द्वे तथा कृष्णे युगादी कवयो विदुः । शुक्ले पूर्वाह्निके ग्राह्ये कृष्णे चैवापराह्निके ” ॥

“अस्मिंश्च गोभूमिहिरण्यवस्त्रदानेन सर्वं प्रविहाय पापम् ।

शूरत्वमिन्द्रस्य सुहृत्वमेति मर्त्याधिपत्यं लभते मनुष्यः ” ॥

मात्स्ये मन्वादयः

२० “अश्वयुक्शुक्लनवमी कार्तिके द्वादशी तथा । तृतीया चैत्रमासस्य तथा भाद्रपदस्य च ॥

“फाल्गुनस्य त्वमावास्या पुष्यस्यैकादशी सिता । आषाढस्यापि दशमी माघमासस्य सप्तमी ॥

“श्रावणस्याष्टमी कृष्णा तथा माघी च पूर्णिमा । कार्तिकी फाल्गुनी चैत्री ज्येष्ठी पञ्चदशी सिता ॥

“मन्वन्तरादयश्चेता दत्तस्याक्षयकारकाः” ॥ अत्र विशेषानिर्देशे शुक्ला तिथिर्ग्राह्या । जातूकर्ण्यः

“ग्रहोपरागे च तथैव जाते पित्र्ये गयायामयनद्वये च ॥

२५ नित्यं च शङ्खे च तथैव पक्षे दत्तं भवेन्नृक्षसहस्रतुल्यम् ” ॥ इति ।

‘नित्यं भवेद्दत्तम्’ इत्यन्वयेन नित्यतेति चन्द्रिकायाम् । पित्र्यं मघा । सा च महालयस्था ।

शङ्खोऽमावास्या । पञ्चमष्टका । तथा च स एव

“शङ्खं प्राहुरमावास्यां क्षीणसोमां द्विजोत्तम । अष्टका च भवेत्पञ्चं तत्र दत्तं तथाऽक्षयम्” ॥ इति ।

“यदा विष्टिव्यतीपातौ भानुवारस्तथैव च । पञ्चकं नाम तत्प्रोक्तमयनात्तु चतुर्गुणम् ” ॥

३० इति शङ्खोक्तो वा पञ्चः । देवलः

“इन्दुक्षयो गजच्छाया मन्वादिषु युगादिषु । एते कालाः समुद्दिष्टाः पितृणां प्रीतिवर्द्धनाः” ॥ इति ।

चतुर्दशीमित्रासु द्वादशकृष्णपक्षमासु तिथिषु क्रमात्फलान्याह याज्ञवल्क्यः (आ. २६२-२६४)

“कन्यां कन्यावेदिनश्च पशुन्वै सत्सुतानपि । \*यूतं कृषिश्च वाणिज्यं तथैकद्विशफानपि” ॥

१ अर्धयनलक्ष—सुते च । \*यूतं कृषिं च वाणिज्यं द्विशफैकशफांस्तथा इति मुद्रितयाज्ञवल्कीये पाठः ।

“ ब्रह्मवर्चस्विनः पुत्राच्च स्वर्णरौप्ये सकुप्यके । जातिश्रेष्ठ्यं सर्वकामान्भोति श्राद्धदः सदा ॥  
 “ प्रतिपत्प्रभृतिष्वेकां वर्जयित्वा चतुर्दशीम् । शस्त्रेण तु हता ये वै तेभ्यस्तत्र प्रदीयते ” ॥ इति ।  
 कन्यावेदिनो जामातरः । धृतं तत्र विजयः । एकशफाः अश्वादयः । कुप्यं ताम्रादि ।  
 हेमाद्रौ नागरखण्डे

“ अपमृत्युर्भवेद्येषां शस्त्रमृत्युरथापि वा । उपसर्गमृतानां च विषमृत्युमुपेयुषाम् ॥

५

“ वह्निना च प्रदग्धानां जलमृत्युमुपेयुषाम् । सर्पव्याघ्रहतानां च शृङ्गेरुद्वन्द्वनैरपि ॥

“ तेषां श्राद्धं प्रकर्तव्यं चतुर्दश्यां नराधिप ” ॥

**ब्रह्मपुराणे**

“ युवानः पितरो यस्य मृताः शस्त्रेण वा हताः । तेन कार्यं चतुर्दश्यां तेषां वृत्तिमभीप्सतां ” ॥

**प्रचेताः**

१०

“ वृक्षारोहणलोहाद्यैर्विद्युज्ज्वालाविषाग्निभिः । नखिदंष्ट्रिविपन्नानामेषां शस्ता चतुर्दशी ” ॥ इति ।

**मरीचिः**

“ विषशस्त्रश्वापदादितिर्यग्ब्राह्मणघातिनाम् । चतुर्दश्यां क्रिया कार्या अन्येषां तु विगर्हिता ” ॥ इति ।

विषादिभिर्घातो येषां ते घातिनः । यत्तु शाकटायनेनोक्तम्

“ जलाग्निभ्यां विपन्नानां सन्यासे वा गृहे पथि । श्राद्धं कुर्वन्ति तेषां वै वर्जयित्वा चतुर्दशीम् ” ॥ इति १५

तद्वैधमृत्युपरम् ।

“ ज्ञातिश्रेष्ठ्यं त्रयोदश्यां चतुर्दश्यां तु सुप्रजाः । प्रीयन्ते पितरश्चास्य ये वै शस्त्रहता रणे ” ॥ इति

**सौमन्तवचनमप्यवैधमरणविषयम् । अत्र “ कृष्णपक्षे दशम्यादौ वर्जयित्वा चतुर्दशीम् ”**

इति **मनूके**श्चतुर्दशीवर्जनं दशमीमारभ्य श्राद्धानुष्ठाने ज्ञेयम् । अन्यथा वक्ष्यमाणमहालय-  
 श्राद्धगता षोडशसङ्ख्या व्याह्रन्येत । अत एव

२०

“ नभस्यापरपक्षे तु श्राद्धं कार्यं दिने दिने । नैव नन्दादि वर्ज्यं स्यान्नैव वर्ज्या चतुर्दशी ” ॥ इति

**काष्णार्जिनिवचोऽपि सङ्गच्छत इति माधवाद्यः । तातचरणास्तु**

“ शस्त्रेण तु हता ये वै तेभ्यस्तत्र प्रदीयते ” । इति इतरदेवताबाधेन शस्त्रहतानां

देवतात्वविधानात्तदभावे लुप्यते । यथाऽभ्युदयेष्टौ प्राकृतदेवताबाधादेवतान्तरस्य वा

विधानादुपांशुयाजः । **मानवकाष्णार्जिनीये** अपि शस्त्रहतपितृकं प्रत्येव सङ्गच्छते । २५

**मानवे ‘ दशम्यादौ ’** इत्यादिपदेन पक्षान्तराणामपि ग्रहणम् । जीवत्पितृकाजीवात्पि

तृकरूपमिन्नाधिकारिकामावास्यान्तातिथितदुत्तरप्रतिपद्गतश्राद्धेष्विव शस्त्राशस्त्रमृतपितृकरूपमिन्ना-

धिकारिकश्राद्धेष्वेव श्राद्धगता षोडशसङ्ख्योपपद्यत इति । अतो देवताभावे चतुर्दशीश्राद्धं

लुप्यत इति युक्तम् उत्पद्यन्ति । एतेन चतुर्दश्यां शस्त्रहतेभ्य एवेति देवतानियमोऽपि

सिध्यति न तु चतुर्दशीकालनियमः । ‘ अन्येषां तु विगर्हिताम् ’ इति पूर्वोक्तमरीचि- ३०

वचनाच्च । अतोऽन्यस्मिन्नपि दिने शस्त्रहतानामशस्त्रहतानां च भवत्येव श्राद्धम् । इदं चैकोद्दिष्ट

मेव कार्यम् । न पार्वणम् ।

“ समत्वमागतस्यापि पितुः शस्त्रहतस्य वै । एकोद्दिष्टं सुतैः कार्यं चतुर्दश्यां महालये ” ॥ इति

**सुमन्तूक्तेः ।** समत्वमागतस्य कृतसपिण्डनस्येत्यर्थः । पित्रादित्रय्यां द्वयोः शस्त्रादिना मृतावेकोद्दिष्टद्वयं कार्यम् । ' एकस्मिन्द्वयोर्वैकोद्दिष्टविधिः ' इति स्मृतेः । अत्र ' एकस्मिन्द्वयोर्वा ' इत्युक्त्या पित्रादिषु त्रिष्वपि शस्त्रहतेषु पार्वणमेव । अत्र माधवदेवस्वामिप्रभृतयः ' एकस्मिन्द्वयोः ' इत्यस्य यथाश्रुतत्वे वाक्यभेदापत्यैतस्योपलक्षणत्वेन त्रिष्वपि शस्त्रहतेष्वेकोद्दिष्टत्रयमेव कार्यम् । शस्त्रहनने निमित्ते एकोद्दिष्टमात्रविधिपरत्वाद्वाक्यस्य । ' एकस्मिन्द्वयोः ' इति तु ' एकं वृणीते द्वौ वृणीते ' इत्यादिवदनुवाद इत्याहुः । वस्तुतस्तु " शस्त्रेण तु हता ये वै " इति शस्त्रहतदेवताविधिनैवैकस्य द्वयोर्वा शस्त्रादिमरणे एकोद्दिष्टस्यान्यथानुपपत्त्या प्राप्तेस्त्रिषु मृतेषु तु ' ऊर्ध्वं पार्वणं कुर्यात् ' इति सपिण्डनोत्तरभावित्वेन सामान्यवचनप्राप्तस्यापि पार्वणविधेरबाधात्पार्वणमेव कार्यम् । अतः ' एकस्मिन् ' इत्यादि पूर्वोक्तसौमन्तवचनन्यायप्राप्तस्यैवार्थस्यानुवादकं न विधायकं कस्याचिदर्थस्य । अपरार्कस्मृतिचन्द्रिकाहेमाद्रादीनामप्ययमेवाशयो लक्ष्यते । दिनान्तरे तु शस्त्रादिहतानामपि पार्वणमेव । तथा च प्रजापतिः " सङ्क्रान्तावुपरागे च पर्वोत्सवमहालये । निर्वपेदत्र पिण्डांस्त्रीनिति प्राह प्रजापतिः " ॥ इति ।

### अथ काम्यश्राद्धानि ।

**१५ विष्णुधर्मोत्तरे** " अतः काम्यानि वक्ष्यामि श्राद्धानि तव पार्थिव । " आरोग्यमथ सौभाग्यं समरे विजयं तथा । सर्वकामांस्तथा विद्यां धनं जीवितं मेव च ॥ " आदित्यादिदिनेऽप्येवं श्राद्धं कुर्यात्सदा नरः । क्रमेणैतान्यवाप्नोति नात्र कार्या विचारणा " ॥ इति ।

### अथ नक्षत्रश्राद्धानि तत्फलं च ।

#### मार्कण्डेयः

**२०** " कृत्तिकासु पितृनर्च्यं स्वर्गमाप्नोति मानवः । अपत्यकामो रोहिण्यां सौम्ये त्वौजस्वितां लभेत् ॥ " आर्द्रायां शौर्यमाप्नोति क्षेत्रलाभः पुनर्वसौ । पुष्टिः पुष्ये पितृनर्च्यं आश्लेषासु वरान् सुतान् ॥ " मघासु स्वजनश्रेष्ठ्यं सौभाग्यं फाल्गुनीषु च । प्रदानशीलो भवति सापत्यस्तुतरासु तु ॥ " प्राप्नोति श्रेष्ठतां सत्सु हस्ते श्राद्धप्रदो नरः । रूपवन्ति च चित्रासु तथाऽपत्यान्यवाप्नयात् ॥ " वाणिज्यलाभदाः स्वात्यो विशाखाः पुत्रकामदाः । कुर्वतामनुराधासु दद्युश्चक्रप्रवर्तनम् ॥ **२५** " ज्येष्ठास्वर्थाधिपत्यं च मूले चारोग्यमुत्तरम् । आषाढासु यशःप्राप्तिरुत्तरासु विशोकता ॥ " श्रवणे च शुभान् लोकान् धनिष्ठासु महाधनम् । वेदाविद्याऽभिजिति तु मिषकृसाद्धिस्तु वारुणे ॥ " अजाविकं प्रोष्ठपदे विन्देद्भार्यां तथोत्तरे । रेवतीषु तथा रौप्यमश्विनीषु तुरङ्गमान् ॥ " श्राद्धं कुर्वीततथाऽऽप्नोति भरणीष्वायुरुत्तमम् । तस्मात्काम्यानि कुर्वीत ऋक्षष्वेतेषु तत्त्ववित् " ॥ सौम्यं मृगशिरः । चक्रप्रवर्तनं सर्वत्राज्ञाभङ्गभावः ।

### अथ महालयः ।

तत्र प्रौष्ठपदीश्राद्धं तावदुक्तं ब्रह्मपुराणे

" नान्दीमुखानां प्रत्यब्दं कन्याराशिगते रवौ । पौर्णमास्यां तु कर्तव्यं वराहवचनं यथा ॥

“ पिता पितामहश्चैव तथैव प्रपितामहः । त्रयो ह्यश्रुमुखा ह्येते पितरः संप्रकीर्तिताः ॥

“ तेभ्यः परतरे ये तु ते तु नान्दीमुखाः स्मृताः ” ॥ इति ।

अस्मिंश्च श्राद्धे मातामहपार्वणं नाचरन्ति शिष्टाः । यत्तु कश्चिदाह—सर्वश्राद्धानां दर्श-  
विकृतित्वात्तत्र च मातामहानामप्येवमिति मातामहत्रयसद्भावादिहापि प्राप्तिः स्यादेव । “ पितरो  
यत्र पूज्यन्ते तत्र मातामहा अपि ” इति धौम्यवाक्येन वा प्राप्तिः । न च प्रौष्ठपदीश्राद्धे ५  
पित्रभावान्मातामहाननुष्ठानम् । “ पितरो यत्र पूज्यन्ते ” इत्यत्र हि पितृशब्दः सपिण्डीकरणान्त-  
श्राद्धजन्यपितृभावपरः न जनकपरः । तत्र वर्ज्यत्वानुपपत्तेः । ‘ पित्रपितृसमुदाये पितृशब्दः’  
इति लक्षणायाश्च शक्त्याऽर्थलभेऽनभ्युपगमादिति । दृष्टश्च तत्रापि प्रयोगः । “ पितृपात्रेषु  
प्रेतपात्रं प्रसेचयेत् ” इत्यादौ । तस्मादनुष्ठेयं मातामहपार्वणमिति । तन्न । यद्यपि कचित्  
पितृशब्दः सपिण्डीकरणान्तश्राद्धजन्यपितृभावपरस्तथापि इह न तथा लिङ्गसमवायन्यायानु १०  
पित्रपितृसमुदायपरत्वमेव ।

“ कर्षूसमन्वितं मुक्त्वा तथाऽद्यं श्राद्धषोडशम् । प्रत्याब्दिकं च शेषेषु पिण्डाः स्युः षडिति स्थितिः ” ॥

इति परिशिष्टे पर्युदासानुपपत्तेः । षोडशश्राद्धेषु त्वदुत्तरीत्या मातामहानामप्राप्तेः । ननु  
षोडशश्राद्धानामेकोद्दिष्टत्वपक्षे त्वपरपक्षेऽपि कथं प्राप्तिरिति चेत् । न पितृणामुद्देश्यत्वेन तद्वत-  
विशेषणस्याविवक्षितत्वात् । न चैवं चतुर्दश्यामपि मातामहप्राप्तिः शङ्क्या । “ श्राद्धं शस्त्र- १५  
हतस्यैव ” इत्येवकारेणेतरेव्यावृत्तेः । किञ्च

“ आन्वष्टभ्यं गयाप्राप्तौ सत्यां यच्च मृतेऽहनि । मातुः श्राद्धं सुतः कुर्यात्पितर्यपि च जीवति ” ॥

इति जीवत्पितृकस्यान्वष्टकाश्राद्धे मातामहप्राप्तिः केन वार्येत । मात्रादिषु सपिण्डनान्त-  
श्राद्धजन्यपितृत्वस्य विद्यमानत्वात् । यदुक्तं ‘ दर्शश्राद्धान्मातामहानां प्राप्तिः ’ इति तन्न ।  
देवतान्तरविधिना प्राकृतदेवताबाधात् । अतो यत्र न देवतोपदेशः संक्रान्त्यादिश्राद्धेषु तत्रैव २०  
प्राकृतदेवताप्राप्तिः । न विहितदेवताकेष्विति सिद्धं प्रौष्ठपदीश्राद्धे मातामहाननुष्ठानम् ।

### अथ प्रतिपदादिश्राद्धानि ।

तत्र बृहन्मनुः

“ आषाढीमवधिं कृत्वा पञ्चमं पक्षमाश्रिताः । काङ्क्षन्ति पितरः क्लिष्टा अणुमध्यन्वहं जलम् ॥

“ आषाढीमवधिं कृत्वा यः पक्षः पञ्चमो भवेत् । तत्र श्राद्धं प्रकुर्वीत कन्यास्थाऽर्को भवेन्न वा ” ॥ २५  
अत्राऽऽद्यश्लोकोत्तरार्द्धान्नित्यता ।

“ आषाढ्याः पञ्चमे पक्षे यः श्राद्धं न करिष्यति । शाकेनापि दरिद्रोऽपि सोऽन्त्यजत्वमुपेक्ष्यति ” ॥

इति नागरखण्डाच्च । काम्यताऽपि

“ पुत्रानायुस्तथाऽऽरोग्यमैश्वर्यमतुलं तथा । प्राप्नोति पञ्चमे दत्त्वा श्राद्धकामांस्तु पुष्कलान् ” ॥

इति कार्ष्णाजिनिस्मृतेः । आदित्यपुराणे

“ पक्षान्तरेऽपि कन्यास्थे रवौ श्राद्धं प्रशस्यते । कन्यागते पञ्चमे तु विशेषणैव कारयेत् ” ॥ इति । ३०

गौतमः

“ अपरपक्षे श्राद्धं पितृभ्यो दद्यात्पञ्चमादि दर्शान्तम् । अष्टम्यादि दशम्यादि सर्वस्मिन्वा ” ॥ इति ।

काष्णाजिनिः

“आदौ मध्येऽवसाने वा यत्र कन्यां रविर्व्रजेत् । स पक्षः सकलः पूज्यः श्रान्दषोडशकं प्रति” ॥  
ब्रह्माण्डे “नभस्यकृष्णपक्षे तु श्रान्दं कुर्याद्दिने दिने । त्रिभागहीनपक्षं वा त्रिभागं त्वर्द्धमेव च ॥” इति ।

त्रिभागहीनः षष्ठीप्रभृतिः । त्रिभाग एकादश्यादि ‘तुशब्देन त्रयोदश्यादिरपि’ इति प्राच्याः । तेन

५ तन्मते चतुर्थीपञ्चमीषष्ठ्यष्टमीदशम्येकादशीत्रयोदशीप्रभृतीति सप्त पक्षाः । त्रिभागहीनत्रिभाग-  
पदाभ्यामल्पान्तरतया पञ्चमीदशम्याद्योरेव पक्षयोर्ग्रहणमिति केचित् । वस्तुतस्तु पञ्चम्यादि-  
दशम्यादिपदयोरतद्वृणसंविज्ञानबहुव्रीहिणैकमूलकल्पनालाघवाय षष्ठ्येकादशीपक्षावेव गृह्यते । एव-  
मर्द्धपदेनाष्टम्यादिः । तुशब्दः पादपूरक इति । अत एव हेमाद्रौ विष्णुधर्मोत्तरे

“उत्तरादयनाद्राजन् श्रेष्ठं स्यादक्षिणायनम् । याम्यायनाच्चतुर्मासं तत्र सुप्ते तु केशवे ॥

१० “प्रौष्ठपद्याः परः पक्षस्तत्रापि च विशेषतः । पञ्चम्यूर्ध्वं तु तत्रापि दशम्यूर्ध्वं ततोऽप्यति” ॥ इति ।

“मघायुक्ता तु तत्रापि राजन्नुक्ता त्रयोदशी” ॥ इति ।

श्लोकगौतमः

“कन्यागते सवितरि यान्यहानि तु षोडश । क्रतुमिस्तानि तुल्यानि सम्पूर्णतैरक्षिणैः” ॥ इति ।

एते च पक्षाः शक्तितो व्यवस्थाप्याः । ‘तिथिवृद्धौ षोडश साम्ये पञ्चदश’ इति माधवः ।

१५ “प्रौष्ठपद्या सह’ इति हेमाद्रिः । तत्वं तु देवल आह

“अहःषोडशकं यत्तु शुक्लप्रतिपदा सह । चन्द्रक्षयाविशेषेण सापि दर्शात्मिका स्मृता” ॥ इति ।

अत्र “नभस्यस्यापरे पक्षे तिथिषोडकं तु यत् । कन्यास्थार्कान्वितः श्रेयान् स कालः श्रान्दकर्मणि” ॥

इति शाठ्यायनिवाक्ये ‘संख्यायुक्तेषु समुच्चयः स्यात्’ इति न्यायेन तिथीनां श्रान्दे

समुच्चयावगमात् । तस्य च श्रान्दावृत्तिं विनाऽनुपपत्तेरेकस्यैव श्रान्दस्य सायंप्रातरग्निहोत्रहोमस्ये-

२० वावृत्तिः । तेनानेकदिनसाध्य एक एव श्रान्दप्रयोगः तेन ब्राह्मणदेशदक्षिणानामैक्यमिति  
केचित् । वस्तुतस्तु

“आदौ मध्येऽवसाने वा यत्र कन्यां रविर्व्रजेत् । स पक्षः सकलः पूज्यः श्रान्दषोडशकं प्रति” ॥

इति काष्णाजिनिवाक्यात् ‘तिस्र आहुतीर्जुहोति’ इतिवत्कर्मणां भेद एव । यदि

वाक्यान्तरप्राप्तमेकं श्रान्दमनूय तिथिसमुच्चयो विधीयेत ततो न भेदः स्यात्, प्रत्युत क्रोत्पात्तिः क

२५ गुणविधिरिति विनिगमनाविरहाच्छाठ्यायनिवाक्यस्याप्युत्पत्तिपरतया समुच्चितानेकतिथिविशिष्ट-

श्रान्दविधौ ‘यद्ग्रेयोऽष्टाकपालोऽमावास्यायां पौर्णमास्यां चाच्युतो भवति’ इत्यत्रेव समुच्चितानेक-

कालविशिष्टकर्मविधिकृतभेदवदिहापि भेद एव युक्तः । एवं च देशब्राह्मणार्दीनामपि भेदो

भवतीति दिक् । पूर्वोक्तपञ्चम्यादिपक्षेष्वशक्तस्तु एकस्मिन्नपि दिने कुर्यात् ।

“आषाढ्याः पञ्चमे पक्षे कन्यासंस्थे दिवाकरे ।

३० “यो वै श्रान्दं नरः कुर्यादेकस्मिन्नपि वासरे । तस्य संवत्सरं यावत्तप्ताः स्युः पितरो भुवम्” ॥

इति हेमाद्रौ नागरखण्डोक्तेः । यत्तु निर्णयदीपिकायाम् ‘मृताहनि पितुर्यो वै श्रान्दं दास्यति

मानवः’ इति द्वितीयमर्द्धमलेखि, यच्च कातीयत्वेनालेखि

१ शङ्ख—ततो यथा । २ अवर्द्धयनयडसधरज—न्युक्ता । ३ अर्द्धकथयध—र्धेतर । ४ वर्द्धयन-

यकथ—ऽब्राह्मणादीनां ।



“या तिथिर्यस्य तातस्य मृताहे तु प्रवर्तते । सा तिथिः पितृपक्षेऽपि पूजनीया प्रयत्नतः ॥

“तिथिच्छेदो न कर्तव्यो विनाऽऽशौचं यदृच्छया । पिण्डश्राद्धं च कर्तव्यं विच्छित्तं नैव कारयेत् ॥

“अशक्तः पक्षमध्ये तु करोत्येकदिने यदि । निषिद्धेऽपि दिने कुर्यात्पिण्डदानं यथाविधि ” ॥

इति तन्महानिबन्धेष्वलिखनान्निर्मूलम् । अतोऽनिषिद्धे यस्मिन्कस्मिन्नपि दिने कार्यं न तु ५

निषिद्धेऽपि मृताहनीति नियमः । तच्च नित्यम्

“आषाढ्याः पञ्चमे पक्षे यः श्राद्धं न करिष्यति । शाकेनापि दारिद्र्ये वा सोऽन्त्यजत्वमुपेक्ष्यति ” ॥

इति तत्रैवाकरणे दोषश्रवणात् । अत्रानुपपत्तौ पक्षान्तरमाह यमः

“हंसै वर्षासु कन्यास्थे शाकेनापि गृहे वसन् । पञ्चम्योरन्तरे दद्याद्भयोरपि पक्षयोः ” ॥ इति ।

पक्षमध्ये कथंचिच्छ्राद्धे न जाते तु सुमन्तुः

१०

“कन्याराशौ महाराज यावत्तिष्ठेद्विभावसु । तस्मात्कालाद्भवेद्यं वृश्चिकं यावदागतः ” ॥ इति ।

अथ महालये निषिद्धकालः । तत्र संग्रहश्लोकः

“नन्दाश्वकामरव्यारभृग्वग्नितृकालभे । गण्डे वैधृतिपाते च पिण्डास्त्याज्याः सुतेऽसुभिः ” ॥

नन्दाः प्रतिपत्पञ्च्येकादश्यः । अश्वः सप्तमी । कामस्त्रयोदशी । आरो भौमः । अग्निपितृ- १५  
कालभानि कृत्तिकामघाभरण्यः । पातो व्यतीपातः । अत्र सप्तमीरविभौमभरणीगण्डवैधृतिव्यतीपातेषु  
मूलवचोऽन्वेष्टव्यम् । वसिष्ठः

“नन्दायां भार्गवादिने चतुर्दश्यां त्रिजन्मसु । एषु श्राद्धं न कुर्वीत गृही पुत्रधनक्षयात् ” ॥

त्रिजन्म जन्मभं ततो नवममेकोनविंशं चेति । यत्तु ‘कर्तुश्च पुत्रदाराणां त्रिजन्मक्षाणि चिन्त- २०  
येत् ’ इति तत्राकरश्रित्यः । नारदः

“कृत्तिकार्यां च नन्दायां भृगुवारे त्रिजन्मसु । पिण्डदानं न कर्तव्यं कुलक्षयकरं यतः ॥

“त्रिजन्मसु त्रिपादेषु नन्दायां भृगुवासरे । धातृपौष्णभयोः श्राद्धं न कर्तव्यं कुलक्षयात् ॥

“सकृन्महालये काम्ये पुनः श्राद्धेऽखिलेषु च । अतीतविषये चैवमेतत्सर्वं विचिन्तयेत् ” ॥ इति ।

वृद्धगर्गः

२५

“प्राजापत्ये च पौष्णे च पित्रर्क्षे भार्गवे तथा । यस्तु श्राद्धं प्रकुर्वीत तस्य पुत्रो विनश्यति” ॥ इति ।

प्राजापत्यं रोहिणी । पौष्णं रेवती । पित्रर्क्षं मघा । अस्यापवादो हेमाद्राविति प्रयोगपारिजाते

“अमा पाते भरण्यां च द्वादश्यां पक्षमध्यके । तथा तिथिं च नक्षत्रं वारं च न विचारयेत् ” ॥ इति ।

इदं च हेमाद्रिपुस्तकेषु न दृश्यते । महालयश्राद्धं चाधिमासे न कर्तव्यम्

“नभो वाऽथ नभस्यो वा मलमासो यदा भवेत् । सप्तमः पितृपक्षः स्यादन्यत्रैव तु पञ्चमः ” ॥ ३०

इति नागरखण्डात् । पञ्चमसप्तमत्वे आषाढपूर्णिमातः ।

“वृद्धिश्राद्धं तथा होममग्न्याधेयं महालयम् । राजाभिषेकं काम्यं च न कुर्याद्भानुलङ्घिते ” ॥

इति भृगूक्तेश्च । तत्र विश्वेदेवास्तावद्भुरिलोचनौ । तथा चादित्यपुराणे

“अपि कन्यागते सूर्ये काम्ये च धुरिलोचनौ ” ॥

कन्यागत इति कन्यासङ्क्रान्तिनिमित्तके श्राद्ध इति केचित् । तदा तु महालये पुरुरवार्द्रवावेव ।

पिञ्चे देवताक्रममाह बोपदेवः

“ताताम्बात्रितयं सपत्नजननी मातामहादित्रयं सस्त्रि स्त्रीतनयादि तातजननीस्वभ्रातरः सस्त्रियः ।

“ताताम्बात्मभगिन्यपत्यधवयुग्जायापितासद्गुरुःशिष्याप्ताःपितरो महालयविधौ तीर्थे तथा तर्पणे”॥इति।

ताताम्बात्रितयं पित्रादित्रयं मात्रादित्रयं च । मातामहादित्रयं सस्त्रीति सपत्नीकमिति

प्रयोज्यम् । अपत्यधवयुगिति सापत्यां सधवामित्यर्थः । अत्र पार्वणत्रयं कार्यम् । तथाच श्राद्धहेमाद्रौ

“महालये गयाश्राद्धे वृद्धौ चान्वष्टकासु च । नवदैवत्यमत्रेष्टं शेषं षाट्पौरुषं विदुः ” ॥

समर्थस्य तु द्वादशदैवत्यम् । तथा च द्वैतनिर्णये निगम

“ महालये गयाश्राद्धे वृद्धौ चान्वष्टकासु च । ज्ञेयं द्वादशदैवत्यं तीर्थे प्रौष्ठे मघासु च” ॥ इति ।

क्रमान्तरं प्रघट्टके स्मृत्यन्तरे

“ आदौ पिता ततो माता सपत्नजननी तथा । मातामहाः सपत्नीकाः स्वपत्नी तदनन्तरम् ॥

“ सुतभ्रातृपितृव्याश्च मातुलाश्च सभार्यकाः । दुहिता भगिनी चैव दौहित्रो भागिनेयकः ॥

“ पितृष्वसा मातृष्वसा श्वशुरो गुरुरर्थिनः ” ॥ इति ।

क्रमान्तरं प्रयोगपारिजाते सग्रहे

“ पितृमातृमातामहाः पितृव्यो भ्रातरः सुतः । पितृष्वसा मातुलश्च तद्भगिन्यः स्वजामयः ” ॥

“ भार्याभगिन्यो दुहिता श्वशुरा भावुका स्तुषाः । शालको गुरुराचार्यः स्वामी मित्रं यथाक्रमम्” ॥इति।

स्वजामयः स्वभगिन्यः । भावुका भगिनीपत्यः । एतेषां क्रमाणामैच्छिको विकल्पः ।

पित्रादिभिन्नानां तु महालये एकोद्दिष्टमेव “ उपाध्यायो गुरुः श्वश्रूः पितृव्याचार्यमातुलाः ॥

“ श्वशुरभ्रातृपुत्रा ऋत्विक्शिष्यस्वपोषकाः । भगिनी स्वामिदुहितृजामातृभगिनीसुताः ” ॥

इत्युपक्रम्य

“ सखिद्रव्यदाशिष्याद्यास्तीर्थे चैव महालये । एकोद्दिष्टेन विधिना पूजनीयाः प्रयत्नतः ” ॥

इति हेमाद्रौ पुराणोक्तेः । सुमन्तुरपि “ सपिण्डीकरणादूर्ध्वं यत्र यत्र प्रदीयते ।

“ भ्रात्रे भगिन्यै पुत्राय स्वामिने मातुलाय च । मित्राय गुरवे श्राद्धमेकोद्दिष्टं न पार्वणम्” ॥ इति ।

सपत्नमातुरप्येकोद्दिष्टमेव । तथा चैतत्प्रक्रमे हेमाद्रौ जातृकण्यः

“ सपिण्डीकरणादूर्ध्वं पित्रोरेव हि पार्वणम् ” । अत्र पार्वणैकोद्दिष्टयोः क्रममाह मरीचिः

“ यद्येकत्र भवेत्स्यातामेकोद्दिष्टं च पार्वणम् । पार्वणं त्वभिनिर्वर्त्य एकोद्दिष्टं समापयेत् ॥

“ पितृव्यभ्रातमातृणामेकोद्दिष्टं न पार्वणम् । पार्वणं त्वभिनिर्वर्त्य एकोद्दिष्टं समापयेत् ” ॥

पुलस्त्यः

“महालये गयाश्राद्धे गतासूनां क्षयेऽहनि । तन्त्रेण श्रपणं कृत्वा श्राद्धं कुर्यात्पृथक् पृथक्” ॥ इति ।

यत्तु

“ प्रदानं यत्र यत्रैषां सपिण्डीकरणात्परम् । तत्र पार्वणवत्कुर्यादिकोद्दिष्टं त्यजेद्बुधः ” ॥

इति तदेतादृशैकोद्दिष्टविधिना बाधोदेतद्व्यतिरिक्तविषयम् । बहुविप्रासंभवे चतुर्विंशतिमते

“ एकस्मिन्बाह्येण सर्वानाचार्यार्दीस्तु पूजयेत् ” ॥ इति ।



अत्र भरणीश्राद्धे गयाफलम् ।

“ भरणी पितृपक्षे तु महती परिकीर्तिता । अस्यां श्राद्धं कृतं येन स गयाश्राद्धकृद्भवेत् ” ॥

इति मात्स्यात् । महालये सप्तम्यादिषु त्रिदिनेषु माध्यावर्षार्यं श्राद्धम् । तथा चाष्टकान्वष्टकापूर्वेषुःश्राद्धान्युक्त्वाऽऽवलायनः (२।५।९) “ एतेन माध्यावर्षं प्रौष्ठपद्या अपरपक्षे ” इति ।

मध्ये वर्षासु भवं माध्यावर्षमित्यर्थः । हरदत्तस्तु माध्यावर्षमिति पपाठ । मघायुतवर्षासु ५ भवं माध्यावर्षं ‘ मघाश्राद्धम् ’ इति निर्णिनाय । अत्रत्याष्टमीनवम्योरष्टकान्वष्टकाश्राद्धे निर्णीते प्राक् । इयमेवान्वष्टकाऽक्षयनवमी सौभाग्यनवमी तु व्यवहियते पामरैः । न त्वत्र कर्मभेदे प्रमाणं किंचिदस्ति । वैष्णवानां संन्यासिनां च महालयश्राद्धं द्वादश्यां कार्यम् ।\*

“ यतीनां च वनस्थानां वैष्णवानां विशेषतः । द्वादश्यां विहितं श्राद्धं कृष्णपक्षे विशेषतः ” ॥ १०  
इति प्रतापमार्त्तण्डे संग्रहोक्तेः ।

“ संन्यासिनोऽयान्दिकादि पुत्रः कुर्याद्यथाविधि । महालये तु यच्छ्राद्धं द्वादश्यां पार्वणं भवेत् ” ॥  
इति तत्रैव वायवीयाच्च ।

### अथ त्रयोदशीश्राद्धम् ।

मनुः ( ३।२७३ )

१५

“ यत्किञ्चिन्मधुना मिश्रं प्रदद्यात्तु त्रयोदशीम् । तदप्यक्षय्यमेव स्याद्वर्षासु च मघासु च ” ॥ इति एतन्मधुदानं कलौ न कार्यम्

“ अक्षता गोपशुश्रूवैव श्राद्धे मांसं तथा मधु । देवराच्च सुतोत्पत्तिः कलौ पञ्च विवर्जयेत् ” ॥

इति निगमोक्तेः । एतच्च दिनान्तरगतास्वपि मघासु कार्यं ‘ मघासु च ’ इति चकारात् । अत एव त्रयोदशीमघाश्राद्धयोर्भेदः । ‘ यदाग्नेयोऽष्टाकपालोऽमावास्यायां पौर्णमास्यां चाच्युतो २० भवति ’ इत्यत्रैव चकारादाग्नेययोर्भेदः । मघात्रयोदश्यायोगे तु फलाधिक्यम्

“ त्रयोदशी भार्द्रपदी कृष्णा मुख्या पितृप्रिया । तृप्यन्ति पितरस्तस्यां स्वयं पञ्चशतं समाः ॥

“ मघायुतायां तस्यां तु जलाद्यैरपि तोषिताः । तृप्यन्ति पितरस्तद्द्वर्षाणामयुतायुतम् ” ॥

इति स्मृतिचन्द्रिकायां स्मृत्यन्तरात् । “ प्रौष्ठपद्यामतीतायां मघायुक्तां त्रयोदशीम् ”

प्राप्येर्युक्त्वा

२५

“ प्रजामिष्टां यशः स्वर्गमारोग्यं च धनं तथा । नृणां श्राद्धे सदा प्रीताः प्रयच्छन्ति पितामहाः ” ॥

इति पारिजाते शंखोक्तेः । अत्र त्रयोदशीश्राद्धं नित्यमपि “ प्रौष्ठपद्यामतीतायां तथा

कृष्णा त्रयोदशी ” इति कालानुक्त्वा “ श्राद्धमेतेष्वकुर्वाणो नरकं प्रतिपद्यते ” । इति

कालहेमाद्रौ विष्णुधर्मोत्तरात् ।

मघाश्राद्धे चाविभक्तानामपि पृथगधिकारः ।

३०

“विभक्ता वाऽविभक्ता वा कुर्युः श्राद्धं पृथक् पृथक् । मघासु च ततोऽन्यत्र नाधिकारः पृथग्विना” ॥  
इति हेमाद्रौ स्मृतेः । इदं च गजच्छायेति निरणायि गजच्छाया निर्णये प्राक् । मघात्रयोदशी-  
योगे त्विदं श्राद्धमधिमामेऽपि भवति । तथा च काठकगृह्ये

“मघात्रयोदशीश्राद्धं प्रत्युपस्थितिहेतुकम् । अनन्यगतिकत्वेन कर्तव्यं स्यान्मलिमुत्वे” ॥ इति ।

केवलमघाप्रयुक्तं केवलत्रयोदशीप्रयुक्तं तु न भवति । शुद्धमासेऽपि तयोः संभवेन  
सगतिकत्वात् । अत एव ‘प्रत्युपस्थितिहेतुकमनन्यगतिकत्वेन’ इति च हेतुनिर्देशोऽपि  
सङ्गच्छते । यत्तु वामनपुराणे “त्रयोदश्यां तु वै श्राद्धं न कुर्यात्पुत्रवान् गृही” ॥ इति ।  
यच्चागिराः

“त्रयोदश्यां कृष्णपक्षे यः श्राद्धं कुरुते नरः । पञ्चत्वं तस्य जानीयाज्जघेष्ठपुत्रस्य निश्चितम्” ॥ इति ।

१० तत्पुत्रवद्गृहस्थस्य मघायुक्तत्रयोदश्यां सपिण्डकश्राद्धनिषेधपरम् । अत एव प्रतापमार्तण्डे  
बृहत्पराशरः

“मघायुक्तत्रयोदश्यां पिण्डानिर्वपणं द्विजः । ससन्तानो नैव कुर्यान्नित्यं ते कथयो विदुः” ॥ इति ।

यत्तु हेमाद्रौ नागरखण्डे

“असन्तानस्तु यस्तस्य श्राद्धे प्रोक्ता त्रयोदशी । सन्तानयुक्तो यः कुर्यात्तस्य वंशक्षयो भवेत्” ॥ इति ।

५ तदपि सपिण्डकश्राद्धनिषेधपरम् । यत्तु काष्णार्जिनिः

“श्राद्धं नैवैकवर्गस्य त्रयोदश्यामुपक्रमेत् । न तृतास्तत्र ये यस्य प्रजां हिंसन्ति तस्य ते” ॥ इति ।

“पितरो यत्र पूज्यन्ते तत्र मातामहा अपि” ॥

इति धौम्यवाक्येन मातामहप्राप्तावपि ‘भ्रमप्राप्तैकपार्वणनिषेधार्थम्’ इति हेमाद्रिः ।

यत्तु भ्रमप्राप्तनिषेधे वचोवैयर्थ्याज्जीवनमातृमातामहवर्गकं प्रत्ययं निषेधस्तस्यैकवर्गयजनप्राप्तेरिति ।

० तन्न औत्तरार्द्धिकार्थवादासङ्गतेः । युक्तं तु

“यावत्किञ्चित्स्वगृहोक्तं यस्य कर्म प्रचोदितम् । तस्य तावति शास्त्रार्थे कृते सर्वः कृतो भवेत्” ॥

इति वाक्येन येषां सूत्रे मातामहा नाम्नातास्तान्प्रति सामान्यतः प्राप्तस्यैकपार्वणस्य  
निषेधार्थमिदमिति । अत्र मघात्रयोदशीयुगादिश्राद्धानां तन्त्रता महालयश्राद्धकरणपक्षे तु  
तनैवैषां प्रसङ्गसिद्धिः । बहुदेवत्वस्य सपिण्डत्वादिभिर्विशेषग्रहणात् महालयश्राद्धस्यापि तन्त्रत्वोक्तिस्तु

५ कस्यचिन्मूर्खस्य प्रलापत्वादुपेक्ष्या । इति महालयत्रयोदशी ।

अथात्र चतुर्दश्यामवैधमतानामेकोद्दिष्टमुक्तं प्राक् । तत्र ‘विश्वेदेवा अपि भवन्ति’ इति

स्मृत्यर्थसारे प्रयोगपारिजाते च

“प्रेतपक्षे चतुर्दश्यामेकोद्दिष्टं विधानतः । दैवयुक्तं तु तच्छ्राद्धं पितृणामक्षयं भवेत् ॥

“तच्छ्राद्धं दैवहीने चेतुत्रदारधनक्षयः” ॥ इति ।

महालये चतुर्दशीश्राद्धं लुप्तं चेदृश्चिकदर्शनपर्यन्तं यस्मिन् कस्मिंश्चिद्दिने एकोद्दिष्टविधिर्नैव

कार्यम् । यथाप्राप्त एव गौणकालविधानात् । एतेन टोडरानन्दीया पार्वणोक्तिरपास्ता । अमायां

रवीन्द्र हस्तस्थौ चेतसा गजच्छायेत्युक्तं प्राक् ।

आश्विनसितप्रतिपदि मातामहश्राद्धमुक्तं हेमाद्रौ

“जातमात्रोऽपि दौहित्रो विद्यमानेऽपि मातुले । कुर्यान्मातामहश्राद्धं प्रतिपद्याश्विने सिते ” ॥

इति स्मृतेः । जातमात्रोऽधिकारी जात इत्यर्थः । “जायमानो वै ब्राह्मणस्त्रिभिर्ऋणवा जायते ” इत्यत्रेवाधिकारी जायमान इत्यर्थः । तेनोपनयनात्प्रागेतच्छ्राद्धानुष्ठानमिदानीन्तनानां दुराचार एव । एतच्च जीवत्पितृक एव कुर्यादिति साम्प्रदायिकाः । एतच्च सपिण्डकमेव ५ कार्यम् । यत्तु

“मुण्डनं पिण्डदानं च प्रेतकर्म च सर्वशः । न जीवत्पितृकः कुर्याद्दुर्विणीपतिरेव च ” ॥

इति दक्षस्मृतिस्थामिति कश्चिद्विलेख तद्दक्षस्मृतौ ग्रन्थान्तरे चाभावाच्चिर्मूलम् । यच्चस्याः सङ्गव-  
व्यापित्वबोधकं वचः

“प्रतिपद्याश्विने शुक्ले दौहित्रस्वेकपार्वणम् । श्राद्धं मातामहं कुर्यात्सपिता सङ्गवे सदा ” ॥ इति । १०

तच्चिर्मूलम् । क्षयाहस्य श्राद्धकालत्वमाह व्यासः

“मासपक्षतिथिस्पृष्टे यो यस्मिन् म्रियतेऽहनि । प्रत्यब्दं तु तथाभूत क्षयाहं तस्यतं विदुः ” ॥ इति ।  
संन्यासिनां तु क्षयाहे पार्वणमेव नैकोद्दिष्टम् । तथा च प्रचेताः

“एकोद्दिष्टं यतेर्नास्ति त्रिदण्डग्रहणादिह । सपिण्डीकरणाभावात्पार्वणं तस्य सर्वदा ” ॥ इति । १५

पक्षतिथिविशेषतोऽपि पार्वणनियमो मिताक्षरायां स्मृतौ

“अमावास्या क्षयो यस्य पितृपक्षेऽपि वा पुनः । पार्वणं तत्र कर्तव्यं नैकोद्दिष्टं कदाचन ” ॥ इति ।  
इदं च ‘अनाकरम्’ इति विज्ञानेश्वरः । शंखस्मृतिर्मूलमिति माधवः । शिष्टाचारोऽप्येत-  
द्वाक्यानुसारी । अमावास्यामहालयमिन्नक्षयाहे संन्यासिमिन्नानां पार्वणैकोद्दिष्टयोर्विकल्पः ।  
वचनद्वैविध्यात् । तथा च शातातपः २०

“सपिण्डीकरणं कृत्वा कुर्यात्पार्वणवत्सदा । प्रतिसंवत्सरं विद्वान् छागलेयोदितो विधिः ” ॥ इति ।

यमस्तु

“सपिण्डीकरणादूर्ध्वं प्रतिसंवत्सरं सुतैः । मातापित्रोः पृथक् कुर्यादेकोद्दिष्टं क्षयेऽहनि ” ॥

इति । अत्र ‘कुलाचाराव्यवस्था’ इति मिताक्षरायाम् ।

आब्दिकादिषु मातामहपर्युदासमाह कात्यायनः २५

‘कर्षूसमन्वितं मुक्त्वा तथाऽऽद्यं श्राद्धषोडशम् । प्रत्याब्दिकं च शेषेषु पिण्डाः स्युः षडिति स्थितिः ॥’ इति ।

कर्षूसमन्वितं सपिण्डनम् । तत्र कर्षूसंज्ञकगर्तविधानात् ।

इति श्राद्धकालाः ।

क्षयाहाज्ञाने तु क्षयाहश्राद्धं प्रकृत्याह बृहस्पतिः

“न ज्ञायते मृताहश्चेत्यमीति प्रोषिते सति । मासश्चेत्प्रतिविज्ञातस्तदर्शे स्यान्मृताहनि ” ॥ ३०

‘तदर्शे एव मृताहनि’ इति सामानाधिकरण्यम् । तदर्शे एव मृताह इत्यर्थः । मरीचिस्तु

“श्राद्धविघ्ने समुत्पन्ने अविज्ञाते मृतेऽहनि । एकादश्यां तु कर्तव्यं कृष्णपक्षे विशेषतः ” ॥ इति ।

अमावास्याकादश्योस्तु विकल्पः । ‘विशेषतः’ इत्युक्त्या शुक्लपक्षेऽपीति हेमाद्रिः ।

दिनाज्ञाने मासाज्ञाने च भविष्यत्पुराणे

“ दिनमेकं न जानाति मासं नापि कदाचन । कार्यं तेन अमायां वै श्राद्धं माघेऽथ मार्गके ” ॥

कदाचन न जानातीत्यनुषङ्गः । प्रस्थानमासतद्दिनज्ञाने तु तदेव ग्राह्यम् । तथा च बृहस्पतिः

“ दिनमासौ न विज्ञातौ मरणस्य यदा पुनः । प्रस्थानदिनमासौ तु ग्राह्यौ पूर्वोक्तया दिशा ” ॥ इति ।

५ प्रास्थानिकमासदिवसाज्ञाने तु भविष्योत्तरे “ मृतवार्त्ताश्रुतेर्ग्राह्यौ पूर्वोक्तक्रमेण तु ” इति । मरणाश्रवणे तु जातूकर्ण्यः

“ पितरि प्रोषिते यस्य न वार्त्ता नैव वाऽऽगतिः । उर्ध्वं पञ्चदशाद्वर्षात्कृत्वा तत्प्रतिरूपकम् ॥

“ कुर्यात्तस्य च संस्कारं यथोक्तविधिना ततः । तदादीन्येव सर्वाणि प्रेतकार्याणि संचरेत् ” ॥ इति ।

अत्र प्रोषित इत्येव विवक्षितं तेन तद्दिशेषणं पितरीत्यविवक्षितम् । अनुवाद्यविशेषणत्वात् ।

१० तदादीन्येव दाहदिनप्रभृतीन्येव संचरेत्कुर्यादित्यर्थः । एवं च दाहदिनमेव क्षयाहस्थाना-  
पन्नमिति तात्पर्यम् । बृद्धबृहस्पतिः

“ यस्य न श्रूयते वार्त्ता यावद्दाहशवत्सरम् । कुशपुत्रकदाहेन तस्य स्यादवधारणम् ” ॥

प्रेतक्रियोत्तरमागते विशेषो बृद्धमनुना दर्शितः

“ प्रोषितस्य यदा कालो गतश्चेद्दाशाब्दिकः । प्राप्ते त्रयोदशे वर्षे प्रेतकार्याणि कारयेत् ॥

१५ “ द्वादशाहं व्रतं कुर्यान्निरात्रमथवाऽस्य तु । स्नात्वोद्गृहेत्ततो भार्यामन्यां वा तदभावतः ॥

“ जीवन्त्यदि स आगच्छेत् घृतकुम्भे नियोजयेत् । उद्धृत्य स्नापयित्वाऽस्य जातकर्मादि कारयेत् ॥

“ अग्नीनाधाय विधिवद् ब्रत्यस्तोमेन वा यजेत् ॥

“ अथैन्द्राग्नेन पशुना गिरिं गत्वा च तत्र तु । इष्टिमायुष्मतीं कुर्यादीप्सितांश्च ऋतूंस्ततः ” ॥ इति ।

आशौचेन श्राद्धप्रतिबन्धे विशेषः षट्त्रिंशन्मते

२० “ मासिकाब्दे तु संप्राप्ते अन्तरा मृतसूतके । कार्यं वदन्ति शुद्धयन्ते दर्शे वाऽपि विशेषतः ” ॥ इति ।

विशेषत इत्युक्त्या शुक्लपक्षोऽप्यनुज्ञायत इति हेमाद्रिः । अत्रिः

“ तदहश्चेत्प्रदुष्येत केनचित्सूतकादिना । सूतकानन्तरं कार्यं पुनस्तदहरेव वा ” ॥ इति ।

तदहश्चेत्तरमासगते तस्मिन्नेव दिन इत्यर्थः । अत्राशौचान्त आद्यः पक्षः मुख्यकालप्रत्यासत्तेः ।

ततो दर्शः । ततः कृष्णैकादशी । ततः शुक्ला । तत उत्तरमासे तदहरिति हेमाद्रिः । केचित्त

२५ पुनस्तदहरेव वेति पक्षो मासिकपरो न त्वनुमासिकपरोऽपि ।

“ एकोद्दिष्टे तु संप्राप्ते यदि विघ्नः प्रजायते । अन्यस्मिंस्तत्तिथौ तस्मिन् श्राद्धं कुर्यात्प्रयत्नतः ” ॥

इति देवलेनैकोद्दिष्ट एव मासान्तरस्थतदहर्विधानात् । एकोद्दिष्टत्वं तु मासिकानामेव न

त्वनुमासिकानामिति । अन्यस्मिन्मासान्तरे तत्तिथौ मरणतिथौ तस्मिन्कृष्णे शुक्ले वेत्यर्थ

इत्याहुः । वस्तुतस्तु आब्दिकस्य पूर्वमेकोद्दिष्टरूपत्वमप्युक्तम् । अनुमासिकानामपि तानि प्रक्रम्य

३० “ यो यथा वार्षिकं कुर्यात्तथा कुर्यात्स तान्यपि ” इतिवाक्येनैकोद्दिष्टरूपता स्पष्टा । अतो

वार्षिकमासिकानुमासिकानि यदैकोद्दिष्टरूपाणि क्रियन्ते तदा मासान्तरस्थतत्तिथौ कार्याणि ।

यदा तु पार्वणानि तानि तदा मृतातिथिदर्शकृष्णशुक्लैकादश्यः कालाः । यदपि

“ देये पितृणां श्राद्धे तु आशौचं जायते यदा । आशौचे तु व्यतिक्रान्ते तेभ्यः श्राद्धं प्रदीयते ” ॥

इति ऋष्यशृङ्गोक्तेराशौचान्तमात्रपरत्वाच्च तद्विषयो मासान्तरगततिथिरूपः काल इत्याहुः

तत्र । पूर्वोक्ताग्निवचने आशौचविघ्ने मासान्तरगततत्तिथिरूपकालोक्तिविरोधात् । यदपि माध्ववृ-  
सिंहौ मासिकमाशौचे सति तदन्ते आशौचभिन्नविघ्ने पुनस्तदहरेव । षट्त्रिंशन्मतवचोगत-  
मासिकपदं त्वनुमासिकपरम् । अत आशौचे सति तदनुमासिकमाब्धिकं वा तदन्ते दर्शं कृष्णायां  
शुक्लायामेकादश्यां वा इति चत्वारः पक्षा इत्याहतुः । तदप्यनेनैव परास्तम् । प्रमाणाभावाच्च ।  
हारीतः

“ श्राद्धविघ्ने द्विजातीनामामश्राद्धं प्रकीर्तितम् । अमावास्यादि नियतं माससंवत्सरादृते ” इति ।  
माससंवत्सराणामासिकसांवत्सरिकात् । एतद्विघ्नं नियतं नित्यममावास्याद्यामेन  
कार्यमित्यर्थः । श्राद्धविघ्नोऽत्र पत्नीरजोदर्शनम् ।

“ अपत्नीकः प्रवासी च भार्या यस्य रजस्वला । सिद्धाच्चेन न कुर्वीत आमं तस्य विधीयते ” ॥  
इत्युशनोवाक्यात् । आमामावे तु व्यासः

“ द्रव्याभावे द्विजाभावे प्रवासे पुत्रजन्मनि । हेमश्राद्धं प्रकुर्वीत यस्य भार्या रजस्वला ” ॥ इति ।  
इदं चामात्रहेमविधानममावास्यादिश्राद्धविषयम् । क्षयाहश्राद्धं तु रजोदर्शनात्पञ्चमदिनकार्यम्  
“ मृतेऽहनि तु संप्राप्ते यस्य भार्या रजस्वला । श्राद्धं तत्र न कर्तव्यं कर्तव्यं पञ्चमेऽहनि ” ॥

इति श्लोकगौतमोक्तेरेतदानुपूर्विकस्मृत्यन्तराच्च । यत्तु हेमाद्रिः ‘ भर्तुः पत्न्या सह  
श्राद्धाधिकाराद्रजोदशनेन तस्या अधिकारप्रतिबन्धे भर्तुरप्यनधिकारात्प्रतिबन्धं श्राद्धं कदा कार्य- १५  
मित्याकांक्षायां पञ्चमदिनविधिः ’ इत्याह । तन्न । यदा हि पत्युः पत्न्याश्चाऽहवनीयत्वादि-  
कामनयाऽऽधानेऽधिकारः सिद्धस्तदा क्लृप्तपतिविद्ययैव कर्मनिर्वाहे तस्या अक्लृप्तविद्याकल्पनपरि-  
जिहीर्षया सहाधिकार उपपद्यते । तस्या आहवनीयत्वाद्यकामनायां तु न सहाधिकारः । भर्त्राधि-  
कारिके केवलमाज्यावेक्षणादौ कर्तृत्वमात्रं तस्या अध्वर्यादेरिव होमादौ । एवमाहवनीयादिषाध्येषु  
दर्शपूर्णमासादिष्वपि पत्न्याः फलकामनायां सहाधिकारः । तदभावे तु पत्युरेवाधिकारः । २०  
पत्न्यास्तु केवलमाज्यावेक्षणादौ कर्तृत्वमात्रं नाधिकारः । मण्डनोक्ते ‘ तुल्य एवाधिकारः  
स्यात् अधिकारेऽपि वैषम्यम् ’ । इत्यधिकारगते साम्यवैषम्योक्ती अप्येतदभिप्राये एव ।

न च भर्तुः कामनाभावेनानधिकारे पत्न्याश्च तत्सत्त्वेनाधिकारे पतिं विना तस्या एव केवलं  
प्रयोगोऽस्त्विति वाच्यम् । अपूर्वविद्याकल्पनगौरवात् । पत्युस्तु रोगनाशेष्ट्यादाविव तस्या अधि-  
कारं विनाऽप्यप्रतिषिद्धोऽधिकारः । न च फलस्वाम्यधिकारिपर्यायपतिशब्दादुत्पन्ननादेशङ्गीप्स्यत्या- २५  
भ्यां पत्नीशब्दसिद्धेर्यास्मिन् प्रयोगे तस्या आज्यावेक्षणादिकर्तृत्वं तन्निरूपित एवोपस्थिति-  
लाघवात्पत्नीशब्देनाधिकारो गम्यते इति वाच्यम् ‘ पत्नी भर्तुर्धनहरी, पत्नी दुहितरश्चैव, असुताश्च  
पितुः पत्न्यः ’ इत्यादिषु पत्नीशब्दस्य फलस्वाम्ययोग्यतामात्रे दर्शनात्पत्यु रोगनाशेष्ट्यादौ च  
तस्याः फलोपधानासम्भवेन योग्यतामात्रस्यावश्यमङ्गीकार्यत्वात्सर्वत्र योग्यतयैव निर्वाहः । तदव-  
च्छेदकं तूढात्वमेव । किंच—सर्वत्रापि भुज्यमान एव फले तत्स्वाम्यरूपाधिकारः फलोपहितः । ३०  
ऋतुप्रयोगादौ तु तद्योग्यतामात्रमेव न फलोपधानम् । योग्यतावच्छेदके परमननुगमः । यथा बृह-  
रगतिरसवे ब्राह्मणत्वं राजसूये क्षत्रियत्वम् । एवमिहोढात्वमिति न कश्चिद्विशेषः । निरणायि चेदं  
मयाऽध्ययनवादे सप्रपञ्चमिति नेह विस्तरः । पत्याधिकारिकेषु तु तन्मितृमातृप्रात्रादिदेवत्येषु  
तस्या अनधिकारः ।

“प्रतिसंवत्सरं कार्यं मातापित्रोर्मृतेऽहनि । पितृव्यस्याप्यपुत्रस्य भ्रातुर्ज्येष्ठस्य चैव हि ” ॥

इति ससम्बन्धिकार्थकपितृमात्रादिपदगर्भदेवीपुराणादिवचसां तां प्रत्यप्रवृत्तेः । अधिकाराभावे च तद्व्रतं साहित्यं गर्भभावेणैव गलितम् । “पाणिग्रहणाद्धि सहत्वं कर्मसु तथा पुण्यफले च ” इति स्मृतिस्तु दार्शण्यैर्मासिकादौ सहाधिकारमेवानुवदति नान्यत्र विधत्ते । अतः पूर्वोक्त-  
 ५ वचनेनैव क्षयाहदिनबाधः । पञ्चमदिनविधिश्च न सहाधिकारबलेन । अत्र कालादर्शानुयायिनः  
 “अपुत्रा तु यदा भार्या संप्राप्ते भर्तुराब्दिके । रजस्वला भवेत्सा तु कुर्यात्तत्पञ्चमेऽहनि ” ॥

इति कालादर्शलिखितश्लोकगौतमवाक्यस्य मृतश्राद्धाधिकारिणीं भार्यां प्रति प्रवृत्तेस्तदेकमूल-  
 कल्पनालाघवेन ‘मृतेऽहनि’ इत्यत्रापि यस्य कर्त्री भार्येति व्याख्येयमित्याहुः । माधवस्तु मतद्वय-  
 मपि लिलेख न तु किञ्चिन्निर्णिनाय । तातचरणास्तु ‘मृतेऽहनि’ इति वचः पितृमातृभ्रातृ-  
 १० पितृव्यादिमासिकाब्दिकोभयपरम् । ‘अपुत्रा तु’ इति श्लोकगौतमीयं तु भर्त्राब्दिकमात्रपरम् ।  
 अतो भिन्नविषयतया नैकमूलतासंभव इत्याहुः । अयं च तेषामाशयः

“श्राद्धविघ्ने द्विजातीनामामश्राद्धं प्रकीर्तिताम् । अमावास्यादिनियतं माससंवत्सरादृते ” ॥  
 इति हारीतपर्युदस्तयोर्मासिकसांवत्सरिकयोरामश्राद्धाभावे निर्णयाकाङ्क्षायाम् ‘मृतेऽहनि’  
 इत्येतदुभयविषयं नाब्दिकमात्रे श्लोकगौतमीयेनोपसंहर्तुं शक्यम् । मम तु प्रतिभाति कालाद्शा-  
 १५ दावनयोर्द्वयोरपि वाक्ययोः श्लोकगौतमीयतया लिखनाच्चोपसंहारो युक्तः सामान्यवचनानर्थक्या-  
 पत्तेः ।

ननु नेदं वाक्यद्वयं किंत्वेकस्मिन्नेव वाक्ये पाठद्वयमात्रम् । तत्र ‘अपुत्रा तु यदा’ इति  
 पाठपक्षे ‘मृतेऽहनि’ इत्येतत्पाठतुल्यानुपूर्वीकं स्मृत्यन्तरवाक्यं कथं नोपसंह्रियते इति चेत् ।  
 श्रृणु । एतत्पाठद्वयमपि प्रमाणत्वात्समुच्चियते संदिग्धत्वाद्विकल्प्यते वा ? नाद्यः । स्मृत्यन्तर-  
 २० वाक्यस्योपसंहारेऽपि एतत्समानार्थकस्य मतेऽहनीत्यादेः सामान्यपठितस्याऽऽनर्थक्यापत्त्या  
 तदयोगात् । नान्त्यः । स्मृत्यन्तरसंवादेन ‘मृतेऽहनि’ इत्येतत्पाठस्यैव प्रामाण्यनिश्चयात् ‘अपुत्रा  
 तु यदा’ इत्यादेः पाठस्य त्वप्रामाणिकत्वात् । यत्तु लौगाक्षिः

“पुण्यवत्स्वपि दारेषु विदेशस्थोऽप्यनग्निकः । अन्नेनैवाब्दिकं कुर्याद्धेन्ना वाऽऽमेन न क्वचित् ” ॥ इति  
 तद्वाराणां पुण्यवत्त्वे निमित्ते वाक्यान्तरप्राप्ते पञ्चमदिनरूपे कालेऽन्नेनैव कुर्यादित्येवमामहेमपरि-  
 २५ सङ्ख्यामात्रार्थं न मृततिथिरूपकालविध्यर्थम् । यच्चैतस्यैवार्थस्य संग्राहकं पौरुषेयं वाक्यम्  
 “विदेशगो वा विगताग्निको वा रजस्वलायामपि धर्मपत्न्याम् ।

“श्राद्धं मृताहे विदधीत पाकैर्नामेन हेन्ना न तु पञ्चमेऽह्नि ” ॥ इति तदपि मृताहे रजस्वलायां  
 धर्मपत्न्यां सत्यां श्राद्धं नामेन हेन्ना न । पञ्चमेऽह्नि तु पाकैर्विदधीत इत्येवं व्याख्येयम् ।  
 यत्तु पारिजातादौ

३० “रजस्वलायां भार्यायां क्षयाहं यः परित्यजेत् । स वै नरकमाप्नोति यावदाभूतसंस्तुवम् ” ॥

“मासिकानि सपिण्डानि अमावास्यं तथाब्दिकम् । अन्नेनैव तु कर्तव्यं यस्य भार्या रजस्वला ” ॥ इति  
 तदप्यनापथ्यामहेमपरिसंख्यामात्रार्थम् । आब्दिकं तु पञ्चमेऽह्नि अन्नेनैवेति सर्वं शिवम् । ग्रहणे  
 भोजननिषेधप्रयोजकवेधमध्ये ग्रहणकाले चाऽऽब्दिकश्राद्धप्राप्तौ भोक्तृब्राह्मणलाभेऽन्नेनैव कार्यं  
 तदलाभे आमेन हेन्ना वा । तथा च गोभिलः



“दर्शो रविग्रहे पित्रोः प्रत्याब्दि कमपस्थितम् । अग्नेनासंभवे हेम्ना कुर्यादामेन वा सुतः ” ॥ इति ।  
अत्र ग्रहे प्रत्याब्दि कमपस्थितमित्येवोद्देश्य समर्पकम् । तेन रविग्रहे पित्र्यतिरिक्तस्यापि चन्द्रग्रहेऽपि पित्रादीनां सर्वेषामन्नादिभिर्गृहासंभवं विहितमेव कार्यम् । एवं मासिकमपि न्यायसाम्यात् ।  
यत्तु पठन्ति ‘ग्रहणात्तु द्वितीयेऽह्नि रजोदोषात्तु पञ्चमे’ इति तन्निर्मूलम् ।

अथ श्रद्धे कालनिषेधः । स्कान्दे “उपसन्ध्यं न कुर्वीत पितृपूजां कथञ्चन ” ॥ इति । ५  
विष्णुः ( ७७-८. )

“सन्ध्यारात्र्योर्न कर्तव्यं श्राद्धं सलु विचक्षणैः । तयोरपि च कर्तव्यं यदि स्याद्राहुदर्शनम् ” इति ।  
सन्ध्यामाह योगियाज्ञवल्क्यः

“उद्यात्प्राक्तनी सन्ध्या मुहूर्तद्वयमुच्यते । सायंसन्ध्या त्रिघटिका हस्तादुपरि भास्वतः ” ॥

अथ पिण्डदाने कालनिषेधः । ब्रह्मपुराणे

१०

“यदा च श्रोत्रियोऽभ्येति गृहं वेदविदग्निचित् । तेनैकेन तु कर्तव्यं पिण्डनिर्वपणादृते ” ॥

बृहत्पराशरः

“युगादिषु मध्यां च विषुवेऽप्ययनेऽथ वा । भरणीषु च कुर्वीत पिण्डनिर्वपणं न हि ” ॥ इति ।

कृत्यरत्ने वृद्धगार्ग्यः

“पौर्णमासीषु सर्वासु निषिद्धं पिण्डपातनम् । वर्जयित्वा प्रौष्ठपदीं यथा दर्शस्तथैव सा ” ॥ इति । १५

अस्य समूलत्वं विमृश्यम् । ज्योतिःपराशरः

“विवाहे विहिते मासांस्त्यजेयुर्द्वादशैव हि । सपिण्डाः पिण्डनिर्वापं मौञ्जीबन्धे षडेव हि ” ॥ इति ।

कचित्प्रतिप्रसवमप्याह स एव “महालये गयाश्राद्धे मातापित्रोः क्षयेऽहनि ।

“यस्य कस्यापि मर्त्यस्य सपिण्डीकरणे तथा । कुतोद्वाहोऽपि कुर्वीत पिण्डनिर्वपणं सदा ” ॥ इति ।

अपिण्डके स्वधावाचनमपि प्रतिषेधति वृद्धशातातपः

२०

“पिण्डनिर्वापरहितं यत्तु श्राद्धं विधीयते । स्वधावाचनलोपोऽत्र...” ॥ इति ।

इति पिण्डदाननिषेधकालः ।

अथ श्राद्धदेशाः । विष्णुधर्मोत्तरे

“दक्षिणाप्रवणे देशे तीर्थादौ वा गृहेऽपि वा । भूसंस्कारादिसंयुक्ते श्राद्धं कुर्याद्विचक्षणः ” ॥

दक्षिणाप्रवणे दक्षिणतोऽवनते । भूसंस्कारो मार्जनलेपनादिः । शङ्खः

२५

“गोगजाश्वादिजुष्टेषु कुत्रिमायां तथा भुवि । न कुर्याच्छ्राद्धमेतेषु पारक्याशुचिभूमिषु ” ॥

कुत्रिमायामट्टालिकादौ । पारक्यासु परगृहीतासु । ताश्च गोष्ठारामादयो न पुनस्तीर्थादिस्थानानि ।

तथा चादित्यपुराणे

“अटवी पर्वताः पुण्या नदीतीराणि यानि च । सर्वाण्यस्वामिकान्याहुर्न हि तेषु परिग्रहः ” ॥ इति ।

“श्राद्धस्य पूजितो देशो गया गङ्गा सरस्वती । कुरुक्षेत्रं प्रयागं च नैमिषं पुष्करं तथा ” ॥ २०

व्यासः—“पुष्करेऽप्यश्वं श्राद्धं जपहोमतपांसि च । महोदधौ प्रयागे च काश्यां च कुरुजाङ्गले ” ॥ इति

ब्रह्माण्डपुराणे श्राद्धकल्पे चतुर्दशेऽध्याये

“त्रिशङ्कोर्वर्जयेद्देशं सर्वं द्वादशयोजनम् । उत्तरेण महानद्या दक्षिणेन च कैकटम् ॥

“देशैश्चैशङ्कनो नाम वर्ज्यो वै श्राद्धकर्मणि” ।

सर्वकर्मणि इति कचित्पाठः । महानदी फल्गुस्तस्यास्तीरे प्रत्येकं द्वादशयोजनानि कैकटमित्यर्थः ।

इति श्राद्धदेशः ।

अथ श्राद्धाधिकारिणः । शङ्खकात्यायनौ

५ “पितुः पुत्रेण कर्तव्या पिण्डदानोदकक्रिया । पुत्राभावे तु पत्नी स्यात्पत्न्यभावे तु सोदरः” ॥

पुत्रग्रहणं पौत्रप्रपौत्रयोरुपलक्षणम् । यथाह विष्णुः

“पुत्रः पौत्रः प्रपौत्रो वा भ्राता वा भ्रातृसन्ततिः । सपिण्डसन्ततिर्वाऽपि श्राद्धार्हा नृप जायते” ॥ इति ।

मनुः ( १।१८० ) “पुत्रप्रतिनिधीनाहुः क्रियालोपान्मनीषिणः” ॥ इति ।

पुत्रप्रतिनिधीन् दत्तकादीन् । क्रियालोपात्क्रियालोपभयादित्यर्थः । औरसादीन् द्वादशपुत्रानुपक्रम्य

१० याज्ञवल्क्योऽपि ( व्य. १३२ ) “पिण्डदोऽशहरश्चैषां पूर्वाभावे परः परः” इति ।

अत्र यद्यपि ‘पुत्राभावे तु पत्नी स्यात्पत्न्यभावे तु सोदरः’ इत्यौरसपुत्राभावे पत्नी तदभावे सोदर इति क्रमः प्रतीयते तथापि पुत्रपदस्य याज्ञवल्क्यवचसा द्वादशविधपुत्रोपलक्षणत्वेनौरसपुत्रपत्नीक्रमेऽवश्यं बाधिते सकृत्प्रवृत्तायाः किमवगुण्ठनेनेतिन्यायेन ‘पुत्रः पौत्रः प्रपौत्रो वा’ इति विष्णुक्तयोः पौत्रप्रपौत्रयोरपि द्वादशविधपुत्रोत्तरं पत्न्याश्च

१५ पूर्वं निवेशः । पत्न्यभावे तु दुहिता । ‘अपुत्रस्य तु या पुत्री साऽपि पिण्डप्रदा भवेत्’ इति ऋष्यशृङ्गोक्तेः । अत्र यद्यपि ‘पुत्राभावे तु पत्नी स्यात्’ इत्यनेन पुत्राभावे पत्न्याः ‘अपुत्रस्य तु या पुत्री’ इत्यनेन दुहितुरधिकारप्रतीतिः पुत्राभावे पत्नीकन्ययोर्नियामकाभावेन विकल्पप्रसक्तिः तथापि ‘योऽर्थहरः स पिण्डदायी’ ( १५।३९ ) इति विष्णुनोक्तस्य धनग्रहणवत्त्वस्य पिण्डदातृविशेषणस्यापीदृशविषये नियामकत्वाङ्गीकारेण वक्ष्यति । धनग्रहणाधिकारश्च ‘पत्नी

२० दुहितरश्चैव’ इत्यादिना पूर्वं पत्न्यास्तदभावे दुहितुः स्पष्ट एव । इदं चार्थहरत्वं सर्वेषां श्राद्धाधिकारिणां विशेषणम् । तथा सत्यविभक्तासंसृष्टसोदरसत्त्वे पत्न्या धनग्रहणेऽनधिकाराच्छ्राद्धेऽप्यनधिकारः स्यात् । स्याच्च दुहितृसत्त्वे तत्पुत्रादीनां मातृधनेऽनधिकाराच्छ्राद्धेऽनधिकार इति । न चेष्टापत्तिः ।

“पुत्राभावे तु पत्नी स्यात्पत्न्यभावे तु सोदरः । पुत्रेषु विद्यमानेषु नान्यं वै कारयेत्स्वधाम्” ॥

२५ इत्यादिवचनैः पत्नीपुत्रयोरेवाधिकारस्येष्टत्वात् । दुहित्रभावे दौहित्रः । तथा च स्मृतिसङ्ग्रहे “पुत्रः कुर्यात्पितुः श्राद्धं पत्नी तु तदसन्निधौ । धनहार्यथ दौहित्रस्तद्भ्राता चाऽथ तत्सुतः” ॥ चशब्दाद्दुहिता ।

“भ्रातुः सहोदरो भ्राता कुर्याद्वाहादि तत्सुतः । ततस्त्वसोदरो भ्राता तदभावे तु तत्सुतः” ॥

दौहित्रो ज्येष्ठ इत्यर्थः । तद्भ्राता कनिष्ठ इत्यर्थः । यत्तु ‘भ्रातृशब्देनासोदरभ्रातृव्याख्यानं तदा-

३० चारविरोधात्तत्सुतशब्देन च दौहित्रसपत्नभ्रातृसुतग्रहणेन भ्रातृपुत्रादौ सत्यत्यन्तविप्रकृष्टस्य क्रियाप्रसक्तेरुपेक्षणीयम् । अत्र यद्यपि धनहारिण एव दौहित्रस्याधिकारः प्रतीयते तथापि केवलोऽपि कुर्यात् । तथा च भविष्यत्पुराणे

“यथा व्रतस्थोऽपि सुतः पितुः कुर्यात्क्रियां नृप । उदकाद्यां महाबाहो दौहित्रोऽपि तथाऽर्हति” ॥ इति ।

यथा व्रतस्थः सुतः पितुः क्रियां कुर्यादेवमधनहरोऽपि दौहित्रो मातामहस्य कुर्यादित्यर्थः ।

३५ व्यवहितभ्रातृपुत्रस्यप्यभावे पिता । ततो माता । तदुक्तं तत्रैव



“उत्सन्नबान्धवं प्रेतं पिता भ्राताऽथवाऽग्रजः । जननी वाऽपि संस्क्रुयान्महदेनोऽन्यथा भवेत् ” ॥

इह क्रमो न विवक्षितः । तद्वोधकस्याशब्दादेरभावात् । यस्तु कातीयनिषेधः

“ अपुत्रायाः पतिर्दद्यात्सपुत्राया न तु क्वचित् । न पुत्रस्य पिता दद्यान्नानुजस्य तथाऽग्रजः ” ॥

इति स स्नेहविशेषाभावे बोध्यः

“ अपि स्नेहेन कुर्यात्तां सपिण्डीकरणं विना । गयायां तु विशेषेण ज्यायानपि समाचरेत् ” ॥ ५

इति बौधायनोक्तेः । मातुरभावे स्नुषादयः । तथा च द्वैतनिर्णये स्मृतिसङ्ग्रहे

“ पत्नी भ्राता च तत्पुत्रः पिता माता स्नुषा तथा । भगिनी भागिनेयश्च सपिण्डः सोदकस्तथा ॥

“ असन्निधाने पूर्वेषामुत्तरे पिण्डदाः स्मृताः ” ॥ इति ।

भागिन्यां विशेषः कात्यायनोक्तः

“अनुजा वाऽग्रजा वाऽपि भ्रातुः कुर्वीत संस्क्रियाम् । ततस्त्वसोदरास्तद्वत्क्रमेण तनयास्तयोः” ॥ इति । १०

तदभावे मातृसपिण्डो मातुलादिः । तदुक्तं विष्णुपुराणे ( ३।१३।३१-३२ )

“ तेषामभावे पूर्वेषां समानोदकसन्ततिः । मातृपक्षस्य पिण्डेन सम्बद्धा याजनेन वा ।

“कुलद्वयेऽपि चोत्सन्ने स्त्रीभिः कार्या नृप क्रिया । तत्सङ्घातगतैर्वाऽपि कार्या प्रेतस्य संस्कृतिः” ॥

तदभावे शिष्यार्विगाचार्याः । यथाह गौतमः (२।६।१३-१४) “पुत्राभावे सपिण्डा मातृसपिण्डाः

शिष्याश्च दद्युस्तदभावे ऋत्विगाचार्यौ तदभावे जामाता सखा च क्रमेण ” ।

१५

तदुक्तं मार्कण्डेये

“सख्युरुत्सन्नबन्धोश्च सखा च श्वशुरस्य च । जामाता स्नेहतः कुर्यादसिद्धं पैतृमेधिकम् ” ॥ इति ।

तदभावे स्त्रीहारी धनहारी च । ‘स्त्रीहारी धनहारी च कुर्यात्पिण्डोदकक्रियाम्’ इति काष्ण्णाजिनि-  
वाक्यात् ।

“ पितुः पुत्रेण कर्तव्या पिण्डदानोदकक्रिये”त्यत्र पुत्रशब्देनौरसादिद्वादशविधपुत्रग्रहणं तथा २०

पत्नीशब्देनापि सकलविवाहोद्वाग्रहणमपि प्रतिभाति । जामात्रभावे स्त्रीहारी तदभावे धनहारी ।

यद्यपि तयोः क्रमबोधकमथशब्दादि नास्ति तथापि पाठक्रमादेव पूर्वं स्त्रीहारी ततो धनहारी

काष्ण्णाजिनिवाक्यात्\* । ‘यश्चार्थहरः स पिण्डदायीति’ ( विष्णुः १।५।३९ ) विष्णवापस्तम्ब-

स्मरणाच्च । धनहारी यदि न करोति तदा राज्ञा कारणीयः । सोऽपि सजातीयः ।

तदुक्तं मार्कण्डेयपुराणे ( अ. २।७।२२-२३ ) “ सर्वाभावे च नृपतिः कारयेत्तस्य रिक्थतः ॥ २५

“ सजातीयैर्नरैः सम्यक् दाहायाः सकलाः क्रियाः । सर्वेषामेव वर्णानां बान्धवो नृपतिर्यतः ” ॥

अयं चात्र क्रमः । प्रथममौरसः पुत्रः । स त्वनुपनीतोऽपि कुर्यात् । अन्ये तूपनीता एव

“नाभिव्याहारयेद्ब्रह्म यावन्मौञ्जी निब्रध्यते\* । मन्त्राननुपनीतोऽपि पठेदेवैक औरसः ” ॥

इति सुमन्तुस्मृतेः । ब्रह्म वेदः । अनुपनीतं विशिनष्टि स एव

“ अनुपेतोऽपि कुर्वीत मन्त्रवत्पैतृमेधिकम् । यद्यसौ कृतचूडः स्याद्यदि च स्याच्चिवसरः ” ॥ इति । ३०

यत्तु ‘ कृतचूडस्तु कुर्वीत उदकं पिण्डमेव च । स्वधाकारं प्रयुज्जीत वेदोच्चारं न कारयेत् ’ इति

व्याघ्रप्रचेतसोवचनम् । यत्तु

“ कृतचूडोपनीतस्तु पित्रोः श्राद्धं समाचरेत् । उदाहरेत्स्वधाकारं न तु वेदाक्षराण्यसौ ” ॥

इति स्मृत्यन्तरं तत्प्रथमवर्षकृतचूडविषयम् । यत्तु मनुवचनम् ( २।१७।१-१७२ )

“ न ह्यस्मिन्पुज्यते कर्म किञ्चिदामौञ्जिवन्धनात् । नाभिव्याहारयेद्ब्रह्म स्वधानिनयनादृते ” ॥ इति । ३५

तत्तृतीयवर्षकृतचूडविषयम् । यत्तु नव्यैर्व्याघ्रवचनं मन्त्रवचनविरोधादनादृतमित्युक्त्वा प्रथमवर्षकृतचूडविषयव्याख्यानमपि उक्तमुमन्त्रवचने 'यदि च स्यान्नित्यत्सरः' इति पृथगुपादाना-  
द्वर्षत्रयात्पूर्वमपि कृतचूडस्य मन्त्रवदधिकारावगमादयुक्तमित्युक्तं तदयुक्तम् । विधेयकर्तृ-  
विशेषणद्वयस्यापि विवक्षितत्वेन त्रिवर्षकृतचूडस्यैव मन्त्रवत्पठेऽधिकारात् । त्रिवत्सरत्वस्य पृथ-  
५ गुपादानं तु प्रथमादिवर्षव्यावृत्त्यर्थमिति स्पष्टमेव । प्रथमवर्षस्याप्याग्निदानं समन्त्रक्रमन्यदमन्त्र-  
क्रमम् । तथा च कात्यायनः

“असंस्कृतेन यत्नाच्च ह्यग्निदानं समन्त्रक्रमम् । कर्तव्यमितरत्सर्वं कारयेदन्यमेव हि ” ॥ इति ।  
अत्र कारयेदिति मन्त्रपाठपरं न त्वौर्ध्वदेहिकपरम् । यद्वाऽज्ञातपरम् । अत एव

“यज्ञेषु मन्त्रवत्पत्नी कर्म कुर्याद्यथाविधि । तथौर्ध्वदेहिके सा हि मन्त्रार्हा धर्मतः स्मृता ” ॥

० इति स्कान्दे सामान्यतो मन्त्रवदधिकारः सङ्गच्छते । अग्निदानेऽप्यकृतचूडस्य नाधिकारः

“पुत्रः स्वोत्पत्तिमात्रेण संस्कुर्वाहणमोचनात् । पितरं नाब्दिकाञ्चौलपितृमेधेन कर्मणा ” ॥

इति सुमन्तुकेः । कालादर्शे च स्पष्टमुक्तम् “चौलादायाब्दिकादर्वाङ् न कुर्यात्पैतृमेधिकम्” ॥ इति ।

एतादृशौरसपुत्राभावे तु पुत्रिकादयः । तदभावे पौत्रस्तदभावे प्रपौत्रः । यदा तु दत्तकपुत्रौरस-

पौत्रयोः समवायस्तदा तु दत्तक एव कुर्यात् । गौणस्यापि तस्य पुत्रशब्देन ग्रहणात् । तदभावे पत्नी ।

१५ तेदभाव रिक्थग्राही दौहित्रः । यदि रिक्थग्राही न भवति तदा 'पत्न्यभावे तु सोदरः' इति वाक्यात्सोदरः

कनिष्ठः । ततस्त्वस्तुतस्तदभावेऽसोदरः । ततस्तस्तुतस्तदभावेऽरिक्थग्राही दौहित्रः । रिक्थग्रहाभावे

उत्कृष्टदौहित्रस्य सोदरादीनां बद्धक्रमत्वेन मध्ये निवेशासंभवाद्गन्ते निवेशः । यस्तु स्मृति-

सङ्ग्रहायैवाक्ये भ्रातृपुत्रोत्तरं पितुः पाठः स दौहित्रस्य रिक्थग्राहित्वेऽत्र निवेशाभावादुपपन्नो

२० नावश्यं भ्रातृपुत्रोत्तरमरिक्थग्राहिणं दौहित्रं बाधते । ततस्तत्पुत्रस्ततो यदि स्नेहस्ततो ज्येष्ठभ्रातृ-

पितरौ क्रमेणाधिकारिणौ । ततो माता । मातुरभावे स्नुषा । ततः क्रमेण ज्येष्ठकनिष्ठे भगिन्यौ ।

ततस्तत्पुत्रः । ततो मातुलादिः । ततः सपिण्डाः समानोदकाः प्रत्यासत्तिक्रमेण । ततः शिष्यार्विजौ ।

तदभावे सखा । तदभावे जामाता । अत्र 'कुलद्वयेऽपि चोच्छिन्ने स्त्रीभिः कार्या नृप क्रिया'

इति वाक्ये स्त्रीग्रहणं भार्यापरमभिप्रेत्य मातुलाद्यभावे आसुरादिविवाहोदा क्रियाकारिणीति

२५ लिखितस्कान्दवचनम् । न चेदं ब्राह्मविवाहोदापरमिति वाच्यम्

“यज्ञेषु मन्त्रवत्पत्नी कर्म कुर्याद्यथाविधि । तथौर्ध्वदेहिके सा हि मन्त्रार्हा धर्मतः स्मृता” ॥

इत्यादिवचनैस्तस्याः समन्त्रकर्मणो विधानात् । किंच । 'पुत्राभावे तु पत्नी स्यादेत्यनेन

तस्याः पुत्राभावे विधानेन सर्वाभावे विधानासंभवाच्च । किञ्च । यथा 'पितुः पुत्रण कर्तव्या

पिण्डदानोदकक्रिया' इत्यत्र पुत्रशब्देनौरसादिद्वादशविधपुत्रग्रहणं तथा पत्नीशब्देनापि

३० सकलविवाहोदाग्रहणमपि प्रतिभाति । जामात्रभावे स्त्रीहारी । तदभावे धनहारी । यद्यपि तयोः

क्रमबोधकमथशब्दादि नास्ति तथापि पाठक्रमादेव पूर्वं स्त्रीहारी ततो धनहारी । दायाभावेऽपि

पुत्रादयः कुर्वीरन्नेव । तदुक्तं मार्कण्डेयपुराणे

“पुत्रो भ्राता च तत्पुत्रः पत्नी माता तथा पिता । वित्ताभावेऽपि शिष्यश्च कुर्वीरन्नौर्ध्वदेहिकम्” ॥

पुत्रग्रहणं द्वादशविधपुत्रोपलक्षणम् । भ्रातृग्रहणं सोदरासोदरोपलक्षणम् । धनहारीति वाक्यं

३५ पूर्वोक्तेष्वपि नियामकम् । यदा भ्रात्रोर्दौहित्रयोर्वा मध्ये एको धनग्राही परश्च न तदा धनग्राह्येक-

कुर्यादिति । यत्तु गुरुचरणैर्ज्येष्ठस्यान्धपङ्गवादेरधनहारित्वात्कनिष्ठस्य तद्धारित्वेन क्रियादिप्रसङ्ग इत्युक्तं तदिष्टापत्या परिहर्तुं शक्यम् । नन्वेवं ज्येष्ठस्य संसृष्टिनो धनहारित्वात्कनिष्ठस्यासंसृष्टिनोऽ धनहारिणः क्रियानधिकारः प्रसज्येतेति चेत् । प्रसज्यतां नाम । तस्मिन् भ्रातृत्वं धनहारित्वं चेति निमित्तद्वयासाङ्गात् । तत्र क्रियाभेदेन कर्तव्यवस्था विष्णुपुराणे उक्ता ( ३।१३।३४-३८ )

“पूर्वाः क्रिया मध्यमाश्च तथा चैवोत्तराः क्रियाः । त्रिप्रकाराः क्रिया ह्येतास्तासां भेदान् शृणुष्व मे ॥ ५

“आद्याहाद्वादशाहात्तु याः क्रिया मध्ययोगतः । पूर्वास्ता मध्यमा मासि मास्येकोद्दिष्टसंज्ञिताः ॥

“प्रेते पितृत्वमापन्ने सपिण्डीकरणादनु । क्रियन्ते याः क्रियाः पित्र्याः प्रोच्यन्ते ता नृपोत्तराः ॥

“पितृमातृसपिण्डैस्तु समानसलिलैस्तथा । तत्सङ्घातगतैश्चैव राज्ञा वा धनहारिणा ॥

“पूर्वाः क्रिया मध्यमाश्च पुत्राद्यैरेव चोत्तराः । दौहित्रैर्वा नरश्रेष्ठ कार्यास्तत्तनयैस्तथा ” ॥ इति ।

अस्यार्थः । एवं पूर्वासु राजान्तानां कर्तृत्वम् । मध्यमासु पुत्राद्यानाम् । आद्यशब्देन १० पौत्रप्रपौत्रयोरपि । उत्तरासु पुत्रप्रभृतिभ्रातृसंतत्यन्तानां दौहित्रतत्तनयानामपीति । वा शब्दोऽप्यर्थः । एवं च

“एकादशाद्याः क्रमशो ज्येष्ठस्य विधिवत्क्रियाः । कुर्यादेकैकशः श्राद्धमाब्धिकं तु पृथक्पृथक्” ॥ इति ।

अनेनाप्यैकार्थ्यं भवति । तत्सङ्घातगतैरेकसार्थान्तर्गतैः । ‘राज्ञा वा धनहारिणे’त्यत्र भार्कण्डेयपुराणवाक्ये सजातीयैस्तस्य रिक्ततः कारयेदिति प्रयोजककर्तृत्वावगमादिहापि १५ तथैवाङ्गीकार्यम् । न च राजसजातीये मृते साक्षात्कर्तृत्वं विजातीये तु प्रयोजककर्तृत्वमिति वाच्यम् । एकस्मिन् शब्दे वैरूपापत्तेरिति । सपिण्डीकरणे तु पुत्रसङ्गावे तदसन्निधानेऽपि स एवाधिकारीति स एव कुर्यात्

“श्राद्धानि षोडशादत्वा कुर्यान्न तु सपिण्डनम् । प्रोषितावसिते पुत्रः कालादपि चिरादपि ” ॥

इति वायुपुराणे प्रोषितस्यापि पुत्रस्यैवाधिकारप्रतिपादनात् । यत्तु कचिदग्रन्थे इदं च २० प्रेतश्राद्धसहितं सपिण्डीकरणमसंन्यासिनां पुत्रादिभिः कर्तव्यमित्यत्रादिशब्देनान्येषामपि कर्तृत्वं प्रतिभाति तत्पुत्रासङ्गावे न तु तदसन्निधौ । अनेन च वायुपुराणस्थेन विशेषविधिना ‘पुत्राभावे तु पत्नी स्यात्’ इत्यादि सामान्यशास्त्रं सपिण्डीकरणविषये बाध्यते । तद्वाधनं विनाऽस्य गत्यन्तराभावात् । पुत्रेष्वापि ज्येष्ठ एव कुर्यात् ‘एकादशाद्याः क्रमशो ज्येष्ठस्य विधिवत्क्रियाः’ इति मदनरत्ने प्रचेतोवाक्यात् । षोडशश्राद्धेष्वापि तस्यैवाधिकारः ‘श्राद्धानि षोडशापाद्य विदधीत २५ सपिण्डताम्’ इति समानकर्तृत्वस्मरणत्वात् । ‘मध्यमाः पुत्राद्यैरेव च’ इत्यत्राद्यग्रहणं पौत्रादिप्राप्त्यर्थम् । तच्च ज्येष्ठादिनाशे न त्वसन्निधाने वायुपुराणे प्रोषितग्रहणात् । यान्यपि

“काश्यादिषु गयायां च प्रेतकार्यं तु यत्कृतम् । सपिण्डैरसपिण्डैर्वा पुत्रैरेव कृतं भवेत् ” ॥

इत्यादीनि वाक्यानि तान्यनाकराणि । साकरत्वेऽपि तीर्थमेवं प्रशस्तं यत्र येनकेनापि श्राद्धे कृते पुत्रकर्तृकश्राद्धफलं भवतीति प्रशंसार्थं न तु सपिण्डीकरणं कर्तव्यमित्येवंपरम् । ३० नन्वेवं ज्येष्ठस्यैवाधिकारे

“यवीयसा कृतं कर्म प्रेतशब्दं विहाय तु । तज्जयायसाऽपि कर्तव्यं सपिण्डीकरणं पुनः ” ॥

१ कर्म कुर्याद्यथाविधि । तथौर्ध्वदेहिके सा हि मंत्रार्हा धर्मतः स्मृते ” त्यादि २ द्वाशपाठः ।

२ द्वयसङ्गावादिति सर्वत्र पाठः । २ यनईकयअव-यत्तु ‘एकादशाद्याः क्रमशो ज्येष्ठस्य विधिवत्क्रिया । कुर्यादेकैकशः श्राद्धमाब्धिकं तु पृथक् पृथक्’ इति प्रचेतोवचनं तदसंनिहितज्येष्ठपुत्रस्यैवाधिकारं बोधयति ।

इति वाक्ये प्रेतशब्दनिषेधानुपपत्तिः । त्वदुक्करीत्या कनिष्ठस्यानधिकारादनधिकारिणा च कुतेन सपिण्डीकरणेन प्रेततानपायात् । जातायां च प्रेतत्वनिवृत्तौ पुनरावृत्तिविधानवैयर्थ्यात् । अतः कथमेतद्वाक्योपपत्तिरिति चेदुच्यते । पूर्वलिखितमदनरत्नवचनेन ज्येष्ठस्यैवाधिकारः सिद्धः स यदि कनिष्ठ आहिताग्निर्वृद्धिर्वापस्थिता तदाऽपीद्यते । तथा हि

“ नासपिण्ड्याग्निमान्पुत्रः पितृयज्ञं समाचरेत् । न पार्वणं नाभ्युदयं कुर्वन्न लभते फलम् ” ॥

इति सपिण्डीकरणं विना पिण्डपितृयज्ञानधिकारात्पिण्डपितृयज्ञस्य च श्रौतसपिण्डीकरणेन बाधासंभवात् साग्निकस्य कनिष्ठस्यावश्यकर्तव्यत्वात्तादृशं प्रति सपिण्डीकरणं विधीयते । तेनैव च प्रेतत्वनिवृत्तिरूपे फले जाते ज्येष्ठस्य पुनरावृत्तिः केवलं वचनात् । न च ज्येष्ठं प्रत्येवेदं विधानं भवति न कनिष्ठं प्रतीति वाच्यम्

- २ “ यजमानोऽग्निमान् राजन् प्रेतो वाऽप्यग्निमान्भवेत् । द्वादशाहे तदा कार्यं सपिण्डीकरणं सुतैः ” ॥ इत्यनेनैव तं प्रति प्राप्तत्वादिदं कनिष्ठं प्रत्येव पिण्डपितृयज्ञप्रयुक्तं सपिण्डीकरणं विधीयते । पत्न्यादीन् प्रति त्वेवमनन्यथासिद्धवचनाभावाच्चाधिकारः । एवं च यद्यपि तैर्ब्रह्मादिना कुतं तदा ज्येष्ठो यथाविध्येवार्चयेन्न प्रेतशब्दव्यागेनेति । यद्वा ऋद्धिकामानां पुत्राणां पृथक् पृथक्सपिण्डीकरणमुक्तं तत्र यदि कनिष्ठेन काम्यं तत्कुतं तदा तेनैव प्रेतत्वनिवृत्तौ प्रेतशब्दं विहायेति पुनर्विधानं युक्तमेव । वृद्धौ तु येन केनापि कुते नावर्तनीयम् । तथा च लघुहारीतः

“ भ्राता वा भ्रातृपुत्रो वा सपिण्डः शिष्य एव वा । सहपिण्डक्रियां कृत्वा कुर्यादभ्युदयं ततः ” ॥ इति ।

अत्र यस्य कस्यापि सगोत्रसपिण्डस्य सपिण्डनं तत्पुत्रे प्रोषितेऽपि व्यवहितोऽपि सपिण्डः कुर्यादिति केचित् । युक्तं तु यस्याभ्युदयिकश्राद्धान्तर्गतदेवताभूतस्य सपिण्डनं विना न तन्निर्वहति तस्यैवेह वाक्ये सपिण्डनं विधीयते । आकाङ्क्षितविधानात् । अन्यथा भिन्नजातीयगुरोरपि सपिण्डनं

- ० शिष्येण कार्यं स्यात् । मासिकानामप्यपकर्षः पुनरपकर्षणं च ज्ञेयम् ।

“ सपिण्डीकरणाद्वर्गपकृष्य कृतान्यपि । पुनरप्यपकृष्यन्ते वृद्ध्युत्तरानिषेधनात् ” ॥

इति शाठ्यायनस्मरणात् । अत्र यद्यपि वृद्ध्युत्तरानिषेधनादिति हेतुस्तथापि ‘ सव्यं हि मनुष्याः प्रथममज्जे ’ इतिवदप्राप्तत्वादिभिः कल्पनीयः । कात्यायनेनापि स्पष्टीकृतः ‘ निर्वर्त्य वृद्धितन्त्रं तु मासिकानि न तन्त्रयेत् ’ इति । वृद्धिं कृत्वा मासिकानि न कुर्यादित्यर्थः । तथा च

- १५ कनिष्ठे साग्निके पिण्डपितृयज्ञार्थं कामनया तु तिष्ठसौ वा ज्येष्ठत्वमात्रापवादः । वृद्धौ तु पुत्रस्थापीति निर्णयः । ननु पुत्रयभावे दौहित्रसत्त्वे पत्न्या अनधिकारः प्रसज्येतेति चेन्न । ‘ पुत्राभावे तु पत्नी स्यादित्यस्मिन् ‘ दौहित्रैवा नरश्रेष्ठ ’ इत्यनेन बाधितेऽपि ‘ अपुत्रा पुत्रवत्पत्नी पुत्रकार्यं समाचरेत् ’ इत्यनेनाधिकारिणी । न च ‘ पुत्राभावे तु ’ इत्यनेनेदमेकार्थं तस्य नाशासाभिधयोः प्रवृत्तत्वात् । ‘ अपुत्रा ’ इत्यस्य चासांनिध्येऽप्रवृत्तेः । अपुत्रायाः पत्न्याः पतिरौर्ध्वदैहिकं कुर्यात् ।

- ३० अतः पुत्राभावे पत्नी तदभावे दौहित्रः । एवं पितृव्यादीनामपि । यथाह जातूकर्ण्यः

“ पितृव्यभ्रातृमातृणामपुत्राणां तथैव च । मातामहस्यापुत्रस्य श्राद्धादि पितृव्यमेव ॥

पितृवदित्यावश्यकत्वार्थं न तु पार्वणविधानार्थमिति हेमाद्रिः । मातृपदं सपत्नमातृपरम् ।

“ पितृव्यभ्रातृपुत्राणामेकोद्दिष्टं न पार्वणम् ” इति कात्यायनोक्तेः । भ्रातुरपि ज्येष्ठस्यैव ।

यथाह मनुः

“प्रतिसंवत्सरं कार्यं मातापित्रोर्मृतेऽहनि । पितृव्यास्याप्यपुत्रस्य भ्रातुर्ज्येष्ठस्य चैव हि ” ॥ इति ।

अत्रिरपि

“भ्रात्रे भगिन्यै पुत्राय श्वशुरे मातुलाय च । पितृव्यगुरवे श्राद्धमेकोद्दिष्टं न पार्वणम् ” ॥

एकवचनं छान्दसम् । न चैवममावास्यादिष्वपि श्राद्धप्रसक्तिरिति वाच्यम् । पूर्वलिखितजातृकर्ण्य-  
वाक्यस्य क्षयाहं प्रकृत्य पाठात् । अतश्च क्षयाहश्राद्धमावश्यकं नान्यत् । दौहित्रस्य ५  
त्वमावास्यादौ मातामहश्राद्धमावश्यकमेव

“पितरो यत्र पूज्यन्ते तत्र मातामहा अपि । अविशेषेण कर्तव्यं विशेषान्नरकं व्रजेत् ” ॥

इति धौम्योक्तेः । एवं पित्रादीनां पार्वणं पितृव्यादीनामेकोद्दिष्टमेव । दाक्षिणात्यास्तु पितृव्यभ्रातृ-  
सापत्नमात्रादिश्राद्धे पार्वणमाचरन्ति । तत्र मूलं पितृवादिति पार्वणत्वस्याप्यतिदेश इति  
केचित् । वस्तुतस्तु

१०

“पितृव्यभ्रातृमातृणां ज्येष्ठानां पार्वणं भवेत् । एकोद्दिष्टं कनिष्ठानां दम्पत्योः पार्वणं मिथः ” ॥

इति श्राद्धदीपकालिकाधृतचतुर्विंशतिमतवचनाज्ज्येष्ठानां पार्वणं कनिष्ठानामेकोद्दिष्टम् । एवं  
च पूर्वोक्तात्रिकात्यायनवचसी कनिष्ठपितृव्यादिपरे । यत्तु

“भ्रातुर्ज्येष्ठस्य कुर्वीत ज्येष्ठो भ्राताऽनुजस्य च । दैवहीनं तु तत्कुर्यादिति धर्मविदब्रवीत् ” ॥

दैवहीनमेकोद्दिष्टं कार्यम् ।

१५

‘अनाद्यगर्भज्येष्ठोऽपि भ्राता सद्भिर्निगद्यते । ऋते सपिण्डनात्तस्य नैव पार्वणमाचरेत् ” ॥ इति  
तथा “प्रतिसंवत्सरं कार्यमेकोद्दिष्टं नरैः स्त्रियाः ” ।

तथा “सपिण्डीकारणादूर्ध्वमेकोद्दिष्टं विधीयते । अपुत्राणां च सर्वेषामपत्नीनां तथैव च ” ॥

इति पृथ्वीचन्द्रोदयमात्रधृतवृद्धपराशरशातातपमार्कण्डेयप्रचेतोवचसामाचारतो व्यवस्थेति  
साप्यतिदेश इति तु सर्वं शिवम् ।

२०

### अथ गौणपुत्राणां विशेषः ।

तत्र “दत्तौरसेतरेषां तु पुत्रत्वे न परिग्रहः ” । इति कल्लिनिषिद्धेषु पाठात् दत्तातिरिक्ता  
गौणाः पुत्रा निषिद्धाः । दत्तकस्तु द्विविधः । केवलो ब्यामुष्यायणश्च । दानकाले दातृप्रतिगृहीतृभ्या-  
मावयोरसाविति संविदोऽकरणे केवलः । तत्करणे ब्यामुष्यायणः । तत्र केवलः प्रतिग्रहीतुरेव  
श्राद्धादि कुर्यान्न जनकस्य । ‘पुत्रं प्रतिग्रहीष्यन्’ इत्यादिके प्रतिग्रहविधौ भाव्याकाङ्क्षायां २५  
जन्यपुंस्त्वारूयस्य पुत्रत्वस्य भाव्यत्वसंभवाच्छ्राद्धादिपुत्रकार्यप्रयोजकं प्रतिग्राह्यगतमहर्द्धं भाव्य-  
मङ्गीकर्तव्यम् ।

“गोत्ररिक्थे जनयितुर्न भजेद्दन्निमः सुतः । गोत्ररिक्थानुगः पिण्डो व्यपैति ददतः स्वधा ” ॥

इति मनुक्तेश्च ( ९।१४२ ) । दन्निमो दत्तकः । गोत्ररिक्थे अनुगच्छतीति गोत्ररिक्थानुगः ।

प्रायस्तत्समानयत इति यावत् । पिण्डं सापिण्ड्यम् । स्वधा श्राद्धम् । विवेचयिष्यते चेदं व्यव- ३०

हारमयूखे । ब्यामुष्यायणस्य श्राद्धे विशेषमाह देवलः

“ब्यामुष्यायणका द्युर्द्वाभ्यां पिण्डोदके पृथक् । षण्णां देयास्तु षट् पिण्डा एवं कुर्वन्न मुह्यति ” ॥

आपस्तम्बः “यदि द्विपिता स्यादेकैकस्मिन्पिण्डे द्वौ द्वावुपलक्षयेत् ” । इदमापस्तम्बपरम् ।

पिण्डशब्दश्च श्राद्धोपलक्षणम् । अत एव प्रवराध्याये “द्वे श्राद्धे कुर्यादेकश्राद्धं वा



पितृनुद्दिश्यैऋषिण्डे द्वावनुकीर्तयेत् । प्रतिग्रहीतारं चोत्पादयितारं चातृतीया त्पुरुषात् ” ॥ इति ।  
व्यामुप्यायणपुत्रस्य पिण्डभेदे अमावास्यायामेकः पित्रे द्वौ द्वावितरयोरिति पञ्च । व्यामुप्यायण-  
पौत्रस्य प्रपितामह एव द्वौ पिण्डौ इति चत्वारः । केचित्त्वेकस्मिन्पिण्डे द्वौ द्वाविति कुण्ड-  
गोलकपरं वर्णयन्ति तत्तु न स्मृत्यन्तरसंवादि । शूद्रानुपेतयोरप्यमावास्यादिश्राद्धेऽधिकारो

५ भास्ये “ अमावास्याष्टकाकृष्णपक्षे पञ्चदशीषु च ” । इत्युक्त्वा

“ एतच्चानुपनीतोऽपि कुर्यात्सर्वेषु पर्वसु । श्राद्धं साधारणं नाम सर्वकामफलप्रदम् ॥

“ शूद्रोऽप्यमन्त्रवत्कुर्यादनेन विधिना बुधः ” । इति ।

अमावास्याष्टकादौ होमस्तु पाण्यादिषु लौकिकाग्नौ वा कार्यः । इदं तु श्राद्धविवेकेऽलेखि ।  
केषुचित्पुराणपुस्तकेषु नोपलभ्यते ।

० जीवत्पितृकस्यापि कचिदधिकारो मैत्रायणीयपरिशिष्टे

“ उद्वाहे पुत्रजनने पित्र्येष्ट्यां सौमिके मखे । तीर्थे ब्राह्मण आयाते षडेते जीवतः पितुः । ” इति ।

उद्वाहे द्वितीयादौ । प्रथमे पितुरेवाधिकारः । ‘ नान्दीश्राद्धं पिता कुर्यादाद्ये पाणि-  
ग्रहे पुनः । अत ऊर्ध्वं सुतः कुर्यात्त्रयमेव तु नान्दिकम् ’ इति मदनरत्नधृतस्मृत्यन्तरात् ।

सौमिके इति सोमयागकर्माङ्गश्राद्धस्य तार्तीयसवनिकपिण्डदानस्य चोपलक्षणार्थम् । उपलक्षणं  
५ चैतज्जीवत्पितृकाधिकारिककर्माङ्गाभ्युदयिकमात्रस्य । अन्यथाऽऽधानाङ्गे तस्मिन्नाधिकारो दुर्घटः  
स्यात् । काम्येऽधिकारविधेः प्रयोगविध्यनुसारित्वादान्ततः काम्य आधानेऽप्यसौ दुर्घटः स्यात् ।  
श्रुतसोमयागान्यथानुपपत्त्यैवाधानेऽसौ कल्प्यत इति चेत्सत्यम् । ‘ यागेनापूर्वं कृत्वा स्वर्गं  
कुर्यात् ’ इतिवच्छ्रुतानुपपत्तिमूलकशब्दकल्पनामपेक्ष्य ‘ सौमिके मख ’ इत्यत्र लघ्वीयस्या लक्षणयै-  
वाधिकारसमर्थनं ज्यायः । षडिति न परिसङ्ख्या । अत एव

२० “ आन्वष्टक्यं गयाप्राप्तौ सत्यां यच्च मृतेऽहनि । मातुः श्राद्धं सुतः कुर्यात्पितर्यपि च जीवति । ”  
इत्यन्वष्टकादावाधिकारः सङ्गच्छते । मैत्रायणीयपरिशिष्टेऽपि

“ महानदीषु सर्वासु तीर्थेषु च गयामृते । जीवत्पिताऽपि कुर्वीत श्राद्धं पार्वणधर्मवत् ” ॥ इति ।

‘ गयामृते ’ इति तदुद्देश्यकवैधयात्रापूर्वकश्राद्धपर्युदासार्थम् । अवैधगमने तु पितुर्देवता  
उद्दिश्य श्राद्धं कार्यमेव । तत्रापि मृतमातृकश्चेत्पितृपत्नीत्वेन तामुद्दिश्य पिण्डादि दत्त्वा

२५ मातृत्वेनाप्युद्दिश्य दद्यात् ‘ गयां प्रसङ्गतो गत्वा मातृश्राद्धं समाचरेत् ’ इतिवाक्यादिति  
केचित् । तत्त्वं तु ‘ गयामृते ’ इति पर्युदस्तं गयाश्राद्धं जीवत्पितृकस्य मृतायां  
मातरि तदुद्देश्यकमेव प्रतिप्रसूयते । वाक्ये तथैव श्रवणात् । पर्युदासवाक्ये यात्रानुपादानेन  
तत्पूर्वकश्राद्धपर्युदासे मानाभावाच्च । ‘ गयां प्रसङ्गतो गत्वा ’ इति तु पित्राद्युद्देश्यकगयायात्रायां  
जीवत्पितृकं प्रत्यप्राप्तेःनुवादकमेव । एष एव च कालादर्शस्मृतिर्द्विपणादीनामप्याशयः । अत्र

३० देवता आह कात्यायनः

“ वृद्धौ तीर्थं च संन्यस्ते ताते च पतिते सति । येभ्य एव पिता दद्यात्तेभ्यो दद्यात्स्वयं सुतः ” । इति

‘ ताते सति ’ इति वृद्धितीर्थसंन्यस्तपतितपदैः प्रत्येकं सम्बध्यते । तत्राप्याद्याभ्यां वैयधि-  
करण्येनोत्तराभ्यां सामानाधिकरण्येन ‘ वृद्धौ तीर्थं च ’ इत्यनेकनिमित्तसमावेशे वाक्यभेदापत्तेः ।

‘ अर्धमन्तर्वेदिमिनोत्यर्द्धं बहिर्वेदि ’ इत्यन्तर्वेदिबहिर्वेदिपदे इव सन्धिदेशस्य ‘ जातपुत्रः कृष्ण-

केशोऽग्नीनादधीत ” इति जातपुत्रादिपदानां वयोविशेषस्य वृद्धितीर्थपदे जीवत्पितृकस्याधिकारिकश्राद्धमात्रोपक्षलके । उक्तप्रकारेण तेष्वपि जीवत्पितृकस्याधिकारस्य समर्थितत्वात्तेषां देवताकाङ्क्षासङ्गत्वात् । जीवत्सन्त्यस्तपतितपितृकस्य तु दर्शश्राद्धादावप्यधिकारः । उत्तरार्द्धेन पितृदेवता एवैनं प्रत्युपदिश्यन्ते । अत एव जीवत्पितृकस्य मातरि मातामहे च मृतेऽपि न स्वानिरूपितमातृमातामहपार्वणयोः प्राप्तिः । किं तु पितृनिरूपितयोरेव । पितामहेऽपि जीवति तन्निरूपिता एव देवताः । पौत्रस्य पितृनिरूपितत्वसम्बन्धेनैतद्वचनादेव प्राप्तेः । ‘अत्र ह्येवावपन्ति’ इतिवदेवकारेण शब्दतस्तासां परिसंख्यातत्वात् । सुमन्तुहारीतौ

“जीवत्पितरि वै पुत्रः श्राद्धकालं विवर्जयेत् । येभ्यो वाऽपि पिता दद्यात्तेभ्यो दानं प्रचक्षते” इति  
“पितुः पितृभ्यो वा दद्यात्सपितेत्यपरा श्रुतिः” ॥

गर्भाधानपुंसवनसीमन्तोन्नयनजातकर्माद्यपत्यसंस्कारेषु त्वाश्वलायनानां प्रतिप्रसूयन्ते १०  
प्रयोगपरिजाते आश्वलायनगृह्यपरिशिष्टे ‘जीवत्पिता सुतसंस्कारेषु मातृमातामहयोस्तस्यां जीवन्त्यां मातामहस्य कर्मात्’ इति । अनयोरन्यतरजीवने तु पितृनिरूपितः स वर्ग इत्युभयोर्जीवने तु वर्गत्रयमपि पितृनिरूपितमेव । ये त्वेतद्वचसा स्वीयमातृमातामहपार्वणे एव भवतो न पितृपार्वणमित्याहुः । तन्न । अग्निहोत्रे मान्त्रवाणिकामिसूर्ययोः पृष्ठभावेन प्रजापतिविधाविव तयोः ‘पितरो यत्र पूज्यन्ते तत्र मातामहा अपि’ इति पितृप्राप्तेर्मातामहप्राप्ता- १५  
वुपजीव्यत्वेन तद्वाधायोगान्मानाभावाच्च । यत्तु कौण्डिन्यः

“दर्शश्राद्धं गयाश्राद्धं श्राद्धं चापरपक्षिकम् । न जीवत्पितृकः कुर्यात्तिलैः कृष्णैश्च तर्पणम्” ॥ इति तत्प्रतिनिधीभूयैतानि श्राद्धानि न कुर्यादित्यर्थः । एतेन

“अष्टकादिषु संक्रान्तौ मन्वादिषु युगादिषु । चन्द्रसूर्यग्रहे पाते स्वेच्छया पूज्ययोग्यतः ॥  
“जीवत्पिता नैव कुर्याच्छ्राद्धं काम्यं तथाऽखिलम्” ॥ २०

इति क्रतुवचोऽपि व्याख्यातम् । एतैर्वाक्यैर्जीवत्पितृकाधिकारिकविधिप्राप्तश्राद्धनिषेधे तु ‘न तौ पशौ करोति’ इतिवद्विकल्पापत्तिः । किञ्च जीवत्संन्यासपतितपितृकयोरपि निषेधप्रवृत्तेः श्राद्धाधिकाराभावेन तत्र देवताविधेरनुपपत्तिः । ननु भवत्पक्षे तयोः कथं श्राद्धेऽधिकारः ? ‘वृद्धौ तीर्थे च’ इति कातियेनैव देवताविशिष्टश्राद्धविधौ दार्शिकाद्यपेक्षया कर्मान्तरापत्तिः । एतौ प्रति विशिष्टविधिरितरजीवत्पितृकं प्रति विवाहादिश्राद्धे देवतामात्रविधिरिति वैरूप्यापत्ति- २५  
श्चेति चेच्छृणु सर्वेऽप्यमावास्याष्टकादिश्राद्धविधयो जीवत्पितृकमृतपितृकसाधारण्येनैव प्रवर्तन्ते । तत्र जीवति पितरि दर्शश्राद्धप्रधानपित्रादिपार्वणदेवताभावादभ्युदितेष्टावुपांशुयागवर्तुष्यते । एतस्यैवानुवादकम्

“सपितुः पितृकृत्येषु अधिकारो न विद्यते । न जीवन्तमतिक्रम्य किञ्चिद्दद्यादिति श्रुतिः” ॥

इति कातीयम् । वैधदेवताप्राप्तौ तु पुनः प्रवर्तन्ते । मृते पितरि पितामहे प्रपितामहे च ३०  
जीवति तु प्रकारमाह विष्णुः (७५-१) ‘पितरि जीवति यः श्राद्धं कुर्याद्येषां पिता कुर्यात्तेषां कुर्यात्पितरि पितामहे च जीवति नैव कुर्याद्यस्य पिता प्रेतः स्यात्स पित्रे पिण्डं निधाय पितामहा-  
त्पराभ्यां द्वाभ्यां दद्याद्यस्य पिता महामहश्च प्रेतौ स्यातां स ताभ्यां पिण्डौ दत्त्वा पितामहपिता-  
महाय दद्याद्यस्य पितामहः प्रेतः स्यात्स तस्मै पिण्डं निधाय प्रपितामहात्पराभ्यां द्वाभ्यां दद्याद्यस्य  
पिता प्रपितामहश्च प्रेतौ स्यातां स ताभ्यां पिण्डौ दत्त्वा पितामहपितामहाय दद्यात् । ३५

“ मातामहानामप्येवं श्राद्धं कुर्याद्विचक्षणः । मन्त्रोहेन यथान्यार्यं शेषाणां मन्त्रवर्जितम् ” ॥  
 इति मातामहादीनामेकद्वित्रिषु जीवत्सु एवं पितृपार्वणवदित्यर्थः । मात्रादिष्वप्येवं न्यायसाम्यात् ।  
 ‘ मन्त्रोहेन ’ इत्यादि व्याख्यास्यत ऊहप्रकरणे । स्त्रीणामपि पूर्वमहादानकन्योद्वाहादिप्रधानेऽ-  
 धिकारात्तदङ्गे नान्दीश्राद्धेऽप्यसौ स्पष्ट एव । तत्र जीवद्भर्तृकायाः पूर्ववत्तमहादानादिषु ताव-  
 त्पुरुषस्येव स्वीयमातृपितृमातामहपार्वणानीति । भर्तृसन्निधानेन तस्याः कन्योद्वाहे स्वीया भर्तृर्वा  
 पार्वणत्रयदेवताः । अयं च विकल्पः ‘ स्वपितृभ्यः पिता दद्यात् ’ इति श्लोकव्याख्यानेन  
 नान्दीश्राद्धप्रकरणे स्पष्टीभविता । विधवायास्तु पुत्राभावे तद्वदेव श्राद्धाधिकारः । तस्याः  
 “ अपुत्रा पुत्रवत्पत्नी पुत्रकर्म समाचरेत् ” इति वचनात् । पुत्रवदिति वतिना प्रकरणानुरोधा-  
 च्छ्राद्धक्रियातुल्यतोक्त्या पुत्रकर्तृकश्राद्धवदेव देवताः । उद्देश्यत्वं तु पित्रादीनां भर्तृत्वादिना  
 तन्मातामहानां पितृत्वादिना यं प्रति येन रूपेण संबन्धिता तं प्रति तेनैव रूपेणोद्देश्यत्वात् ।  
 अत एव स्तुतिदर्पणे

“ स्वभर्तृप्रभृतित्रिभ्यः स्वपितृभ्यस्तथैव च । विधवा कारयेच्छ्राद्धं यथाकालमतन्द्रिता ” ॥ इति ।  
 तथैव त्रिभ्य एवेत्यर्थः । इदं च षट्दैवत्यदर्शश्राद्धादिविषयम् । अत्र ‘ स्वपितुरपुत्रपौत्रत्व  
 एव तत्पार्वणम् ’ इति द्विवोदासीये । तत्र । अपुत्राणामेवेति विशेषवचनाभावात् । स्वपितरि  
 जीवति द्वारलोपात्तत्पार्वणलोप एव । मृतश्वश्र्वादेस्तु श्वश्र्वादिपार्वणमपि कृताकृतमिति नवदैवत्यम् ।  
 केचिन्मृतमातृकायाः स्वमात्रादिपार्वणमपीति द्वादशदैवत्यमाहुः । अपरे स्वमातामहपार्वणेन  
 पञ्चदशदैवत्यम् । अपरे स्वमातामह्यादिपार्वणेन सहाष्टादशदैवत्यम् । तत्राप्याद्यधजीवने  
 द्वारलोपोप इति च । एतत्रयमपुत्रविषयं युक्तमिति पितामहचरणाः । यत्तु स्तुतिसंग्रहे  
 “ चत्वारः पार्वणाः प्रोक्ता विधवायाः सदैव हि ।

“ स्वभर्तृश्वशुरादीनां मातापित्रोस्तथैव च । ततो मातामहानां च श्राद्धदानमुपक्रमेत् ” ॥ इति ।  
 तथा “ श्वश्रूणां च विशेषेण मातामह्यास्तथैव च ” इति एतन्मूलं मृग्यम् ।  
 श्वश्र्वादिमात्रादिपार्वणयोरकरणे भर्तृपितृपार्वणयोरेव यथायोग्यं सपत्नीकानामिति वाच्यम् ।  
 अन्येषां तु यथासंभवमेकोद्दिष्टानीति । इदं च महालयादिश्राद्धविषयम् । यत्तु  
 “ भर्तुः श्राद्धं तु या नारी मोहात्पार्वणमाचरेत् । न तेन तृप्यते भर्ता कुत्वा तु नरकं व्रजेत् ” ॥  
 इति वचनं तत्क्षयाह एकोद्दिष्टप्रशंसार्थं न तु सर्वथा पार्वणप्रतिषेधार्थमिति दिक् । इति श्राद्धा-  
 धिकारिणः ।

### अथ कालदेशकर्तृणामैक्ये ।

तत्र प्रसङ्गावापविचारः । तत्राङ्गप्रधानानां तुल्यत्वेनागृह्यमाणविशेषत्वे भिन्नप्रयोगविधि-  
 परिगृहीतानामपि कर्मणां प्रधानानामङ्गानां च तन्त्रेणानुष्ठानम् । यथा संक्रान्तियुगाद्विषयीपात-  
 श्राद्धानाम् । न च सौर्याचित्रादिष्वपि तथापात्तिः प्रधानभेदात् । न चाङ्गानामेव दर्शपूर्णमासयोरिव  
 तथास्तु । द्वयोरपि प्रयोगप्राशुभावभक्तेन वैगुण्यापातात् । दर्शपूर्णमासयोस्तु ‘ पौर्णमास्यां पौर्ण-  
 मास्या यजेत ’ ‘ अमावास्यायाममावास्यया यजेत ’ इति वाक्याभ्यां प्रतित्रिकं प्रयाजाद्यङ्गानां  
 तन्त्रतेति तथाहि ‘ अनयोर्वाक्ययोर्विधेयकालगतैकवचनस्योपादेययागगतसाहित्यस्य च विवक्षितत्वा-  
 च्चूतीयान्तत्वेन च साङ्गभावनोपादानादेकस्यां पौर्णमास्याममावास्ययां च साङ्गानि



सहितानित्रीणि त्रीणि प्रधानानि कार्याणीत्यर्थप्रतीतिः । साहित्यस्य च स्वरूपतः प्रधानेऽसंभवा-  
दङ्गद्वारा तदुपपत्तिरिति युक्ता तन्त्रता । न तु भिन्नप्रयोगविधिपरिगृहीतेषु चित्रासौर्यादिषु  
तथा किञ्चित्प्रमाणमस्ति प्रयोगप्राशुभावभङ्गबोधकम् । येषु त्वमावास्यासङ्क्रान्त्यादिनिमित्तकेषु  
श्राद्धेषु प्रधानानामङ्गानां चात्पत्त्वबाहुल्यकृतं विशेषग्रहणं तेषु महतात्पस्य प्रसङ्गेन सिद्धिः ।  
यथा अमाश्राद्धेन सङ्क्रान्तियुगादिमन्वादिव्यतीपातश्राद्धानाम् । तत्र सर्वेषां तन्त्रिणां सङ्कल्प-  
वाक्ये उल्लेखः । 'सङ्क्रान्तियुगादिश्राद्धं तन्त्रेण करिष्ये' इति । प्रसङ्गे तु महतान्त्रवर्तोऽमा-  
श्राद्धादेरेवोल्लेखः । न प्रसङ्गिनः सङ्क्रान्त्यादिश्राद्धस्य । एतेनामासङ्क्रान्तिव्यतीपातश्राद्धानां  
तन्त्रेण सङ्कल्पं वदन् हेमाद्रिरपास्तः । अमाश्राद्धस्य महत्त्वेन विशेषग्रहणात्प्रसङ्ग एवात्रोचितः ।  
यत्तु कालादर्शे युगादिश्राद्धेन मन्वादिश्राद्धेन च दर्शश्राद्धस्य सिद्धिरुक्ता

“ नित्यदार्शिकयोश्चोदकुम्भमासिकयोरपि । दार्शिकस्य युगादेश्च दार्शिकालभ्ययोगयोः ॥ १०

“ दार्शिकस्य च मन्वादेः संपाते श्राद्धकर्मणाम् । प्रसङ्गादितरस्यापि सिद्धेरुत्तरमाचरेत् ॥” इति ।  
तत्र । दार्शिकस्य बहुलविधानत्वेन तेनैव युगादिमन्वादिश्राद्धसिद्धेर्युक्त्वात् । कचिद्देवताभेदेन  
तन्त्रापवादमाह स एव

“ नित्यस्य चोदकुम्भस्य दर्शमासिकयोरपि । नित्यस्य चाब्दिकस्यापि दार्शिकाब्दिकयोरपि ॥

“ युगाद्याब्दिकयोश्चापि मन्वाद्याब्दिकयोरपि । प्रत्याब्दिकेषु चालभ्ययोगेषु विहितस्य च ॥ १५

“ संपाते देवताभेदाच्छ्राद्धयुग्मं समाचरेत् ॥” इति ।

अत्र नित्यदर्शयुगादिमन्वाद्यलभ्ययोगश्राद्धेषु सप्तनीकाः पितरो देवताः । उदकुम्भ-  
मासिकाब्दिकेषु त्वपत्नीका इति देवताभेद इत्याशयः । यत्र त्वान्वष्टक्यादौ नवदैवत्यविधाना-  
न्मासिकाब्दिकयोस्तु केवलानामेव पित्रादीनां देवतात्वं तन्त्रान्वष्टक्यादिना मासिकाब्दिकयोरपि  
प्रसङ्गतः सिद्धिः । नन्वस्त्वयं प्रसङ्गः सपिण्डकेन दार्शिकेन तु तदभावाङ्गकस्य सक्रान्त्यादि- २०  
श्राद्धस्य न प्रसङ्गो विरोधादिति चेन्न । पिण्डदानादीनां पर्युदासेन तदभावस्य सक्रान्त्यादावङ्गत्वा-  
भावेन विरोधाभावात् । न च पिण्डदानप्राप्तिः प्रकृतौ

“ अयनद्वितये श्राद्धं विषुवद्वितये तथा । संक्रान्तिषु च सर्वासु पिण्डनिर्वपणादृते ॥

इत्यादिनिवर्तकवाक्यं तु विकृताविति सन्निधानाभावादेकवाक्यत्वाभावेन पर्युदासाभावात्

‘ न तौ पशौ करोति ’ इतिवन्निषेधाङ्गीकारेण विकल्प इति वाच्यम् । पिण्डदानप्राधान्यस्य प्राक्- २५

प्रतिपादितत्वेन सक्रान्तौ श्राद्धं कार्यमित्यादिविधिनैव तत्प्राप्तौ निषेधसन्निधानेन पर्युदासोपपत्तेः ।

यदा त्वेकपुत्रजननोत्तरं स्नानादौ क्रियमाणे द्वितीयपुत्रोत्पत्तिस्तदा जातकर्मभेदेऽपि वृत्तिश्राद्धं

तन्त्रेण । अगृह्यमाणविशेषत्वात् । यत्र तु निमित्तपौर्वापर्यं नैमित्तिकयोर्वा विरोधस्तत्र निमित्तक्रमानु-

रोधेन नैमित्तिकानि कार्याणि । तथा च कात्यायनः

“ द्वौ बहूनि निमित्तानि जायेरन्नेकवासरे । नैमित्तिकानि कार्याणि निमित्तोत्पत्त्यनुक्रमात् ॥” इति । ३०

पतिथिथावन्वारूढायाः पत्न्याः क्षयाहश्राद्धं तन्त्रेणेति निर्विवादम् । तत्र ब्राह्मणपिण्डयो-

रैव्यमिति हेमाद्र्यनुसारिणः । ‘ ब्राह्मणपिण्डयोर्भेदः । विश्वेदेवादीनां त्वारादुपकारकाणां तन्त्रता ’

इति माधवप्रयोगपरिजातकारादयः । भिन्नतिथावन्वारूढाया भिन्नमेव श्राद्धमिति निबन्ध-

काराः । पतिथिविव वैश्वदेवाद्यारादुपकारकाङ्गतन्त्रता । ब्राह्मणभोजनपिण्डदानयोः पार्थक्य-

मित्येव दाक्षिणात्यानुष्ठानम् । युक्तं चैतत् “ या समारोहणं कुर्याद्भर्तृचित्या पतिव्रता ।

“ तां मृताहनि संप्राप्ते पृथक्पिण्डे नियोजयेत् । प्रत्यब्दं च नवश्राद्धं युगपत्तु समापयेत् ” ॥

इति भृगुक्तेः । मृताहनि मासिके संप्राप्ते पृथक्पिण्डे नियोजयेत् । चकारात्प्रत्यब्दं वार्षिकेऽपीत्यर्थः

“ एकचित्वां समारूढौ दम्पती निधनं गतौ । पृथक् श्राद्धं तयोः कुर्यादोदनं च पृथक् पृथक् ” ॥

इति गार्ग्योक्तेश्च । अत्रत्यश्राद्धशब्दस्य ब्राह्मणभोजनपिण्डदानरूपप्रधानवचनत्वात्तन्मात्र-  
पृथक्त्वोक्त्याऽन्येषामाराधुपकारकाङ्गानां तन्त्रता । ओदनपदं पिण्डदानलक्षकमिति हेमाद्रिः ।  
तन्न । श्राद्धपदेनैव प्रधानभूतपिण्डदानोपादानसिद्धेः ।

“ मृताहनि समासेन पिण्डनिर्वपणं पृथक् । नवश्राद्धं तु दम्पत्योरन्वारोहण एव तु ” ॥

इति लौगाक्षिवाक्येऽपि सामान्यतस्तिथिभेदे तदभेदे वाऽन्वारोहणे सति दम्पत्योः मृततिथि-

निमित्तके श्राद्धे समासो विधीयते । अविशेषप्रवृत्तस्यैकतिथिगतानुगमनमात्रविषयत्वरूपसंज्ञोच्चे

प्रमाणाभावात् । लघुभूतमृताहश्राद्धत्वरूपोद्देश्यतावच्छेदकसंभवे गुरुभूतैकदिनमृताहश्राद्धत्वरूपस्या-

युक्तत्वाच्च । न च भिन्नतिथिनिमित्तिकयोरेकाहाप्राप्तेः कथं तत्र साहित्यविधिरिति वाच्यम् ।

अभ्युदितेष्टौ ‘ सह श्रपयति ’ इति वाक्ये सहत्वमात्रविधौ दध्यंशे श्रपणस्याप्राप्तस्यार्थादाक्षेपवत्

साहित्यविधानान्यथानुपपत्त्यैककालताक्षेपात् । न चैककालताक्षेपे विनिगमनाविरहात्पत्नी-

मृताह एव भर्तुः श्राद्धं स्यादिति वाच्यम् । अन्वारूढाया भर्तृमरणसमकालीनमरणप्रतिपाद-

कार्थवादैः संदिग्धार्थनिर्णयात् । अथवा

“ यस्य न श्रूयते वार्ता यावद्वादशवत्सरम् । कुशपुत्रकदाहेन तस्य स्यादवधारणम् ” ॥

इत्यत्र दाहदिने आहार्यमरणनिश्चयवद्भर्तृमृताहे मरणमाहार्यमर्थवादेभ्यः । वस्तुतस्तु

‘ श्रव्यन्ता प्रायणीया सन्तिष्ठते ’ इत्यत्र प्रथमोपस्थितेराद्यशंयुवाकान्तत्ववद्भर्तृमृततिथेः प्राथम्या-

त्तत्रैव साहित्यम् ।

ननु मृताहनीति वाक्ये पिण्डनिर्वपणमिति विवक्षितत्वात् पिण्डसमास एवाऽऽपदि विधीयते

न तु श्राद्धसमास इति चेन्न । नवश्राद्धमिति श्राद्धपदोपादानेन पिण्डनिर्वपणपदस्यापि श्राद्ध-

परत्वेन भृगुगार्ग्यवाक्यसमानार्थकत्वस्यैवोचितत्वात् ।

“ एकचित्वां समारूढ्य मृतयोरेकवर्हिषि । पित्रोः पिण्डान्पृथग्दद्यात्पिण्डं त्वापत्सु तत्सुतः ” ॥

इत्यग्निस्मृतिवाक्यं त्वापत्परम् । इदं च समासविधानमाब्धिकविषयमिति हेमाद्रानु-

सारिणः । तन्न । ‘ तां मृताहनि संप्राप्ते पृथक्पिण्डे नियोजयेत् । प्रत्यब्दं च ’ इत्यत्र मृताहनी-

त्यस्य मासिकपरत्वेन गोबलीवर्दन्यायेन च सर्वविषयत्वात् । नवश्राद्धमात्रं तु पृथक् लौगाक्षि-

वाक्यात् । एतद्विरुद्धम् ‘ नवश्राद्धं युगपत्तु समापयेत् ’ इति भृगुवाक्यं त्वापत्परमग्नि-

स्मृतिवाक्यवत् । विस्तरस्तु तातचरणकृते द्वैतनिर्णये बोध्यः । काष्ठाजिनिः

“ पित्रोः श्राद्धे समं प्राप्ते नवे पशुषितेऽपि वा । पितृपूर्वं सुतः कुर्यादन्यत्रासत्तियोगतः ” ॥

पशुषिते चिरन्तने । अन्यत्र मातृपितृव्यतिरिक्तविषये ।

अथ ग्राह्यद्रव्याणि ।

तत्र मनुः ( ३।२६७; २७२ )

“ तिलैर्वर्हियैर्मर्षैरद्भिर्मूलफलेन वा । दत्तेन मासं प्रायन्ते विधिवत्पितरो नृणाम् ॥

“कालशाकं महाशल्काः खड्गं लोहाऽऽमिषं मधु । आनन्त्यायैव कल्प्यन्ते मुन्यन्नानि च सर्वशः ॥”  
कालशाकं कालिका । महाशल्कः शल्यकः । मत्स्या इत्यन्ये । खड्गो गण्डकः । लोहो रक्त-  
च्छागः । कृष्ण इति हेमाद्रिः । लोहपृष्ठनामा शकुनिरित्यन्ये । मधु माक्षिकं । मुन्यन्नानि  
नीवारादीनि । तथा ( ३।२५७ )

“मुन्यन्नानि पयः सोमो मांसं यच्चानुपस्कृतम् । अक्षारलवणं चैव प्रकृत्या हविरुच्यते ॥” ५

अनुपस्कृतमविकृतमप्रतिषिद्धं च । अक्षारलवणमूषरमृत्तिकाकृतालवणाद्भिन्नम् ।

प्रचेताः “कृष्णमाषास्तिलाश्चैव श्रेष्ठाः स्युर्यवशालयः ।

“महायवा ग्रीहियवास्तथैव च मधूलिकाः । कृष्णाः श्वेताश्च लोहाश्च ग्राह्या स्युः श्राद्धकर्मणि ॥”

मधूलिकाः यावनालविशेषाः शालिविशेषा वेति हेमाद्रिः ।

अग्निः “अगोधूमं च यच्छ्राद्धं कृतमप्यकृतं भवेत् ।”

१०

ब्रह्मपुराणे ( अ. २२०।१५४-१५५ ) “यवैर्वीहितिलैर्माषैर्गोधूमैश्चणकैस्तथा ।

“संतर्पयेत्पितृन्मुद्गैः श्यामाकैः सर्षपद्रवैः । नीवारैर्हैरिद्यामाकैः प्रियङ्गुभिरथार्चयेत् ॥”

सर्षपा गौराः । मार्कण्डेये ( अ. २९।९; १० )

“नीवाराः पौष्कराश्चैव वन्यानां पितृतृप्तये । प्रियङ्गवः कोविदारा निष्पावाश्चात्र शोभनाः ॥”

पौष्कराः पद्मबीजानि । निष्पावा वट्याः । विष्णुधर्मोत्तरे

१५

“गोधूमैरिष्टुभिर्मुद्गैः सतीनैश्चणकैरपि । श्राद्धेषु दत्तैः प्रीयन्ते मासमेकं पितामहाः ॥”

सतीनाः कलायाः ।

## अथ वर्ज्यानि ।

### वायुपुराणे

“अकृताग्रयणं धान्यजातं वै परिपाटलाः । राजमाषानणूंश्चैव मसूरांश्च विवर्जयेत् ॥” २०

परिपाटलाः स्थूला राजमाषाः । तानेवाणूंश्च । षड्विंशन्मते

“कृष्णधान्यानि सर्वाणि वर्जयेच्छ्राद्धकर्मणि । न वर्जयेत्तिलांश्चैव मुद्गान्माषांस्तथैव च ॥”

भरद्वाजः “मुद्गाढकीमाषवर्जं द्विदलानि न दद्यात् ॥ आढकी तुवरी । सुमन्तुः “बीजपूरान्

माषांश्च न दद्यात् ॥ बीजपूरकं मातुलिङ्गं । माषाः राजमाषाः । चतुर्विंशतिमते

“कोद्रवा राजमाषाश्च कुलत्था वरकास्तथा । निष्पावाश्च विशेषेण पञ्चैतास्तु विवर्जयेत् ॥” २५

वरका वनमुद्गाः । निगमः

“यावनालानपि तथा वर्जयन्ति विपश्चितः । तैलमप्यापादि प्राज्ञाः संप्रयच्छन्ति याज्ञिकाः ॥”

तैलमपि वर्जयन्ति । आपदि तूभयमपि प्रयच्छन्ति इत्यन्वयः । षड्विंशन्मते “वर्ज्या

मर्कटकाः श्राद्धे ॥” इति । मर्कटका लङ्काः । वर्जयेदित्यनुवृत्तौ । मरीचिः “कटुकानि च

सर्वाणि विरसानि तथैव च” । कटुकानि पिप्पल्यादीनि । शङ्खः “लोहिताश्च वृक्षनिर्यासान् ३०

श्राद्धकर्मणि वर्जयेत् ॥”

महाभारते “अश्राद्धेयानि धान्यानि कोद्रवाः पुलकास्तथा ॥ पुलकास्तुच्छधान्यानि ।

याद्वे “कोद्रवोद्दालवरककुसुंभमधुकातसीः ॥”

एतानि नैव दैयानि इति । मधुकं ज्येष्ठीमधु । वर्ज्यान्यधिकृत्य मात्स्ये “ कोद्रवोद्दालवरक-  
कपित्थमधुक्रातसीः ” । वैष्णवे च “ मसूरक्षारवार्ताककुलत्थशणशिवः ” ॥ शिशुः सौभाग्यनः ।  
ब्रह्माण्डे

“ सर्वश्राद्धेऽञ्जनं पुष्पं कुसुमं राजसर्षपाः । वर्ज्यं चापक्रियं सर्वं निशि यत्त्वाहृतं जलम् ” ॥

५ अञ्जनपुष्पमञ्जनद्रुमपुष्पम् । मार्कण्डेयः “ वर्ज्याश्राभिषवा नित्यं शतपुष्पं गवेधुकम् ” ।

अभिषवाः संधानानि । कौर्मै “ आढकीकोविदारांश्च पालंभयां मरिचं तथा ” ॥

वर्जयेत् इति । कोविदारः कांचनारः । मरिचान्यार्द्राणि न शुष्काणीति हेमाद्रिः । पालङ्क्या  
मुकुन्दाख्यो गन्धद्रव्यविशेषः ।

अथ ग्राह्यफलानि । शंखः ‘ आम्रान्पालेवतानिक्ष्व मृद्वीकाभव्यदाडिमान् ॥

१० “ विदार्याश्च भरुण्डांश्च श्राद्धकाले प्रदापयेत् । दद्याच्छ्राद्धे प्रयत्नेन शृंगाटविसकेलुकान् ” ॥  
पालेवतं जम्बीरानुकारि । मृद्वीका द्राक्षा । भव्यं कर्मरङ्गम् । विदार्यान् भूकूष्माण्डीकन्दान् ।  
भरुण्डाः काश्मीरे प्रसिद्धाः । शृङ्गाटकं जलजं त्रिकंटकम् । विसं पद्मिनीमूलम् । केबुकं कवकम् ।  
ब्राह्मे ( अ. २२०।१५६-१५८ )

“ आम्रमाप्रतकं बिल्वं दाडिमं बीजपूरकम् । चीणाकं लकुचं जंबुं भव्यं भूतं तथाऽऽरुकम् ॥

१५ “ प्राचीनामलकं क्षीरं नालिकेरं परूषकम् । नागरं च सखर्जूरं द्राक्षा नीलकपित्थकम् ॥

“ पटोलं च प्रियालं च कर्कन्धूबदराणि च । वैकंकतं वत्सलं च एवार्वारुकाणि च ।

“ एतानि फलजातीनि श्राद्धे देयानि यत्नतः ” ॥

आम्रातकं कपीतफलम् । चीणाकमेवार्रुकानुकारि । लकुचं लकुचफलम् । भूतं कर्णाटदेशे  
प्रसिद्धम् । आरुकमारण्यैवार्रुकम् । प्राचीनामलकं पानीयामलकम् । क्षीरं राजादनफलम् । परूषकं

२० कोङ्कणे प्रसिद्धम् । पटोलं स्वाडुपटोलीफलम् । प्रियालं चारवृक्षफलम् । कर्कन्धूबदरीफलम् ।  
वैकंकतं सुवद्रुमफलम् । वत्सकं कूटजफलम् । एवार्ः स्वाडुकर्कटी । वारुकानि वारुकीफलानि ।  
तथा

“ कालशाकं तन्दुलीयं वास्तुकं मूलकं तथा । शाकमारण्यकं चैव दद्यात्पुष्पाण्यमूनि च ” ॥

तन्दुलीयोऽल्पमारिषः । वास्तुकं कटवास्तुकम् । मूलं कन्दम् ।

२५ तथा

“ दाडिमं मागधी चैव नागरार्द्रकतिन्तिणीः । आम्रातकं जीरकं च कुम्बरं च नियोजयेत् ” ॥

मागधी पिप्पली । नागरं शुण्ठी । कुम्बरं कुस्तुम्बरम् ।

कौर्मै—“ बिल्वामलकमृद्वीकपनसाम्रातदाडिमम् । भव्यं पारावताक्षोदखर्जूरामफलानि च ॥

“ कसेरुं कोविदारं च तालकंदस्तथा विसम् । मासं शाकं दधि क्षीरं चुञ्चुर्वैत्रांकुरस्तथा ॥

३० “ कटूफलं काङ्गुणी द्राक्षा लकुचं मोचमेव च ” ।

पारावतं पालेवतम् । तालकन्दस्तालमूलीकन्दः । चुञ्चुश्चचुरिति प्रसिद्धः । मोचकं कदलीफलम् ।

अथ वज्यानि । वायुपुराणे

“ लशुनं गृञ्जनं चैव पलाण्डुं पिण्डमूलकम् । पिप्पली मरिचं चैव पटोलं बृहतीफलम् ॥

“ बांशं करीरं सुरसमर्जकं भूस्तृणानि च । अवेदोक्ताश्च निर्यासा लवणान्यूखराणि च ॥

“ श्राद्धकर्मणि वज्यानि याश्च भार्या रजस्वलाः ” ॥

पिण्डाकृतिमूलं पिण्डमूलकम् । पिप्पल्य आर्द्रा न शुष्काः । तथा मरिचं च । सुरसं ५  
निर्गुण्डीपत्रम् । अर्जकं श्वेतकुबेरकपत्रम् । भूस्तृणो भूतिकार्यः शाकः । विष्णुः ( ७९-१२ )

“ न प्रत्यक्षं लवणं दद्यात् ” इति । ब्राह्मे

“ सैन्धवं लवणं चैव तथा मानससंभवम् । पवित्रे परमे ह्येते प्रत्यक्षे अपि नित्यशः ” ॥

विष्णुः ( ७९-१७ ) ‘ भूस्तृणशिशुसर्षपकूष्माण्डालाबुवार्ताकपालङ्क्यातण्डुलीयक-  
कुसुम्भमहिषीक्षीराणि वर्जयेत् ’ इति । शिशुः सौभाजनः । रक्तपुष्पः न श्वेतपुष्पः । सर्षपो १०  
राजसर्षपो न गौरः । अलाबु तुम्बीफलं वर्तुलम् । वार्ताकं क्षुद्रवार्ताकीफलम् । उशनाः

“ नालिकाशणछत्राककुसुम्भालाबुविड्भवान् । कुम्भीकम्बुकवृन्ताककोविदारांश्च वर्जयेत् ॥

“ वर्जयेद्गृञ्जनं श्राद्धे काञ्जिकं पिण्डमूलकम् ” ॥ करंजं च इति । ‘ छत्राकं शतपुष्पा ’  
इति हेमाद्रिः । कवकमित्यन्ये । कुम्भी श्रीपर्णिका । कंबुकं वृत्तमालाबु । वृन्ताकं  
श्वेतम् । ‘ कण्डूरं श्वेतवृन्ताकं कुम्भाण्डं च विवर्जयेत् ’ इति देवलोक्तेः । कण्डूरं १५  
प्रावृषेणीफलम् । कुम्भाण्डं वृत्तालाबुसदृशम् । काञ्जिकमारनालम् । करंजं नक्तमालफलम् ।

भारद्वाजः

“ नक्तोद्धतं तु यत्तोयं पल्वलाम्बु तथैव च । शैल्यं तु कूष्माण्डफलं वज्रकन्दश्च पिप्पली ॥

“ कुलत्थशणजीराणि करम्भाणि तथैव च । अब्जादन्यद्रक्तपुष्पं शिशुः क्षारस्तथैव च ॥

“ एतानि नैव देयानि सर्वस्मिन् श्राद्धकर्मणि ” ॥

वज्रकन्द आरण्यसूरणः । जीरकं कृष्णजीरकम् । करम्भाणि दधिसक्तवः । क्षारो २०  
यवक्षारादिः । ब्राह्मे

“ गृञ्जनं चुक्रिकां चुक्रं गाजरं पोतिकां तथा । डिङ्गुग्रगन्धा पनसं भूनिम्बं निम्बराजिके ॥

“ कुस्तुम्बरं कलिङ्गोत्थं वर्जयेदम्लवेतसम् ” ॥

गृञ्जनं लशुनानुकारी सूक्ष्मनालः कन्दविशेषः इति विज्ञानेश्वरः ( पृ. ४९ पं. २३ ) । श्वेतकन्दः

पलाण्डुविशेषः । गृञ्जनम् इति श्राद्धप्रकरणे माधवः । प्रायश्चित्तप्रकरणे तु गृञ्जनं पत्रविशेषः । २५  
यदीयं चूर्णं गायकाः कण्ठशुद्धयर्थं भक्षयन्ति इति । तत्र

“ गन्धाकृतिरसैस्तुल्यं गृञ्जनं तु पलाण्डुना । सूक्ष्मनालाग्रपत्रत्वाद्विद्यते तु पलाण्डुतः ” ॥

इति वाग्भट्टीयटीकायां हेमाद्रौ बाष्पचन्द्रवचनं विनिगमकम् । यत्तु हेमाद्रिः

गृञ्जनं गाजरम् इति । माधवोऽपि प्रायश्चित्तप्रकरणे मूलविशेषो वा गाजरापरपर्यायः इति व्याचष्टे  
तदनेन गृञ्जनगाजरयोः पृथगुपादानेनापास्तम् । यत्तु हिङ्गुनो ग्राह्यत्वमुक्तमादित्यपुराणे ३०

“ मधूकं रामठं चैव कर्पूरं मरिचं गुडम् । श्राद्धकर्मणि शस्तानि सैन्धवं त्रपुसं तथा ” ॥ इति

तद्विहितप्रतिषिद्धत्वाद्वैकल्पिकमानुकल्पिकं वेति ज्ञेयम् । रामठं हिङ्गुः । एवमन्येष्वपि

विहितप्रतिषिद्धेषु । मनुः ( ५।६ )

“लोहितान् वृक्षनिर्यासान् व्रश्चनप्रभवांस्तथा । शेलुं गव्यं च पीयूषं प्रयत्नेन विवर्जयेत्” ॥

शेलुः श्लेष्मातकः । अनिर्दशाहं पयः पीयूषम् ॥

### अथ आद्धे मांसविचारः ।

५ तत्र कचिच्छ्राद्धाङ्गत्वेन श्रुतं नित्यम् । कचित्तु फलार्थत्वेन श्रुतम् ‘मांसं वार्ध्वाणसस्य च’ इति । तत्र व्यवस्थोक्ता मनुना

“मुन्यन्नं ब्राह्मणस्योक्तं मांसं क्षत्रियवैश्ययोः । मधु प्रधानं शूद्रस्य सर्वेषां चाविरोधि यत्” ॥ इति ।

अत्र हि ‘सप्तदश वैश्यस्य सामिधेन्यः’ इतिवत् ‘क्षत्रियवैश्ययोरेव मांसम्’ इति वचन-  
व्यक्त्या ब्राह्मणस्य आद्धे न मांसदानम् । सर्वेषां मांसदानविधीनां क्षत्रियवैश्यपरत्वात् । न च  
१० मुन्यन्नमेव ब्राह्मणस्य मांसमेव क्षत्रियवैश्ययोरिति वचनव्याक्तिः । सर्ववर्णानां मुन्यन्नादिद्रव्यनियमे-  
नान्यद्रव्यप्रतिपादकानां वाक्यानामानर्थक्यप्रसङ्गात् । न च प्रधानशब्दस्य पूर्वत्रानुषङ्गः ।  
प्रमाणाभावात् । यदि हि ‘या ते अग्नेरजाशया’ ‘इषकपयूजं द्विपदी’ इत्यादिवदनुषङ्गं विना  
साकाङ्क्षं स्यात् यदि वा ‘चित्पतिस्त्वा पुनातु वाक्पतिस्त्वा पुनातु देवस्त्वा सविता पुनातु’  
इत्यत्रेव तेनैव पदेनाग्रे ‘वसोः सूर्यस्य राश्मिभिः’ इत्यस्येवान्वयः स्यात्तदानुषङ्गः । न त्वेवमिहो-

१५ भयमप्यस्तीति नानुषङ्गः । अतः पूर्वोक्तैव व्यवस्था युक्ता ।

ननु अस्तु नामैवं व्यवस्था । तथापि काम्यमांसदानं केन वार्येत । अङ्गीकृतमेव हि वैश्यं  
प्रत्यपि ‘एकविंशतिसामिधेन्यनुवचनम्’ इति । सत्यम् । अस्तु नामैवं कृतयुगादिषु । कलौ  
तु सर्ववर्णानां मांसं प्रतिषिद्धमेव । तथा ह्युक्तं आद्धदीपकलिकामदनपारिजातयौगिगमे  
“अक्षता गोपशुश्रूषैव आद्धे मांसं तथा मधु । देवरात्र सुतोत्पत्तिः कलौ पञ्च विवर्जयेत्” ॥ इति ।

२० बृहन्नारदीये द्वाविंशोऽध्याये समुद्रयानस्वीकारः इत्युपक्रम्य मध्ये “मांसदानं तथा  
आद्धे वानप्रस्थाश्रमस्तथा” इत्युक्त्वा ‘एतान् धर्मान् कलियुगे वर्ज्यानाहुर्मनीषिणः’ इत्युक्तम् ।  
न च ‘आद्धे मांसम्’ इति आद्धार्थस्यैव प्रतिषेधो न फलार्थस्येति वाच्यम् । एतादृशव्यवस्थायां  
मानाभावात् । किंच । एतस्य वाक्यस्य सर्ववर्णान्प्रति प्राप्तेस्तत्र च ब्राह्मणस्य नित्यमांसाभावेन  
काम्यमांसनिषेधपरत्वम् क्षत्रियवैश्ययोस्तु आद्धार्थप्रतिषेधपरत्वम् इति वैरूप्यापत्तिः । अतः

२५ आद्धसम्बन्धि मांसं यस्य येन रूपेण प्राप्तं तत्सर्वमत्र प्रतिषिध्यते ‘दीक्षितस्येव दीक्षितो न जुहोति’  
इत्यादिना नित्यानामग्निहोत्रादीनां काम्यानां चतुर्होतृहोमादीनां प्रतिषेध इति ।  
बृहत्पराशरेणाप्युक्तम्

“यस्तु प्राणिवधं कृत्वा मांसेन तर्पयेत्पितृन् । सोऽविद्वांश्चन्दनं दग्ध्वा कुर्यादङ्गारविक्रयम् ॥

“क्षिप्त्वा कूपे यथा किञ्चिद्वालः प्राप्तुं तदिच्छति । पतत्यज्ञानतः सोऽपि मांसेन आद्धकृतथा” ॥ इति ।

३० इदमप्येकमूलकल्पनालाषवात्कलिपरमेव । अन्ययुगपरत्वे मांसविधीनां सर्वेषामानर्थक्यात् । तथा  
भागवतसप्तमस्कन्धे पञ्चादशध्याये

“न दद्यादामिषं आद्धे न चाद्याद्धर्मतत्त्ववित् । मुन्यन्नैः स्यात्परा प्रीतिर्यथा न पशुर्हिसया” ॥ इति ।

यथा मुन्यन्नैः तथा न पशुर्हिसयेति । अत्र दानभक्षणयोर्निषेधः कलावेव । अन्यथा ‘यथाविधि-  
नियुक्तस्तु यो मांसं नात्ति मानवः’ इत्यादीनामानर्थक्यं स्यात् । अत एव शास्त्रार्थे स्थितेऽपि ये



केचन स्मृतिर्जमन्या मांसभक्षणलोलुपाः श्राद्धे मांसं ददति तान्

“ गवयस्य तु मांसेन तृप्तिर्मासान्दशैव तु ।

“ मासानेकादश प्रीतिः पितॄणां माहिषेण तु । गव्ये तु दत्ते श्राद्धेषु संवत्सरमिहोच्यते ” ॥

इत्यादिव्यासवाक्यमालोक्य श्राद्धे गोमांसं ददतः स्वतन्त्रात् को वारयेदिति दिक् ।

अथ कुशानिरूपणम् । तेषामुत्पत्तिः शतपथश्रुतौ ‘या वै वृत्राह्नीभत्समाना आपो घन्वदमन्त उदार्यन्ते दर्भा अभवन् यद्मन्यं उदार्यन्तस्माद्दर्भास्ता हैताः शुद्धा मेध्या आपोऽवृत्राभिक्षरिताः यद्दर्भाः’ इति । अवृत्राभिक्षरिता वृत्रेण कालुष्यमप्रापिताः । गोभिल्लः

“ कुशमूले स्थितो ब्रह्मा कुशमध्ये तु केशवः । कुशाग्रे शङ्करं विद्यात्सर्वे देवाः समन्ततः ” ॥

विधिमाह कौशिकः

“ शुचौ देशे शुचिर्भूत्वा स्थित्वा पूर्वोत्तरामुखः । ॐकारेणैव मन्त्रेण कुशाः स्पृश्या द्विजोत्तमैः ” ॥ १०  
उत्पाटनमन्त्रः

“ विरञ्चिना सहोत्पन्न परमेष्ठिनिसर्गज । नुद सर्वाणि पापानि मम स्वस्तिकरो भव ” ॥  
तमेव मन्त्रमभिधाय स्मृत्यन्तरे

“ एवं मन्त्रं समुच्चार्य ततः पूर्वोत्तरामुखः । हुंफट्कारेण मन्त्रेण सकृच्छित्वा समुद्धरेत् ” ॥  
कालानाह हारीतः

“ मासे नभस्यमावास्या तस्यां दर्भोच्चयो मतः । अयातयामास्ते दर्भा नियोज्याः स्युः पुनःपुनः ” ॥  
अयातयामा उपयुक्ता अभ्यपवादां विहायान्यत्र प्रयोज्याः । यत्तु गृह्यपरिशिष्टे

“ दर्भाः कृष्णाजिनं मन्त्रा ब्राह्मणा हविरग्रयः । अयातयामान्येतानि नियोज्यानि पुनः पुनः ” ॥

इति सामान्यवचनं तत्पूर्वकालगृहीतविषयम् । पवित्रे मार्कण्डेयः

“ सपवित्रेण हस्तेन कुर्यादाचमनक्रियाम् । नोच्छिष्टं तत्पवित्रं तु भुक्तोच्छिष्टं तु वर्जयेत् ” ॥ २०  
आचमनाङ्गत्वमाह कात्यायनः

“ सपवित्रः सदर्भो वा कर्माङ्गे पितृकर्मणि । अशून्यं तु करं कृत्वा सर्वत्राचमनं चरेत् ” ॥

पवित्रशब्देन ग्रन्थिमत् । सर्वकर्माङ्गत्वं शातातपेनोक्तम्

“ जपे होमे तथा दाने स्वाध्याये पितृकर्मणि । सव्यापसव्यौ कुर्वीत सपवित्रौ करौ बुधः ” ॥ इति ।

अत्रिः

“ ब्रह्मयज्ञे जपे चैव ब्रह्मग्रन्थिर्विधीयते । भोजने वर्तुलः प्रोक्त एवं धर्मो न हन्यते ” ॥ इति ।

‘द्विगुणिकृतानां दर्भशिखानां पाशः प्रदक्षिणमर्धावेष्टनं विधाय पश्चाद्भागेन यदा प्रवेश्यते तदा वर्तुलो ग्रन्थिः स एव यदा प्रादक्षिण्येन समवेष्टनं विधाय पुरोभागेन प्रवेश्यते तदा ब्रह्मग्रन्थिः’ इति हेमाद्रिः । पवित्रलक्षणं कात्यायनेनोक्तम्

“ अनन्तर्गर्भितं साग्रं कौशं द्विदलमेव च । प्रादेशमात्रं विज्ञेयं पवित्रं यत्रकुत्रचित् ” ॥ ३०

तत्प्रकारमापस्तम्ब आह ‘समौ साग्रौ दर्भौ प्रादेशमात्रौ पवित्रे कुरुते पवित्रे स्थौ वैष्णवी वःयुर्वा मनसा पुनात्विति तृणं काष्ठं वाऽन्तर्धाय छिनत्ति न नखेन’ इति । पवित्रदर्भसङ्ख्या गारुडे “ सप्तभिर्दर्भपिञ्जलैः कुर्याद्ब्राह्मं पवित्रकम् ।

“ पञ्चभिः क्षत्रियस्यैव चतुर्भिस्तु तथा विशः । द्वाभ्यां शूद्रस्य विहितमन्तराणां तथैव च ” ॥ ३५



## मार्कण्डेयस्तु

“चतुर्भिर्दर्भपिञ्जलैर्ब्राह्मणस्य पवित्रकम् । एकैकन्यूनमुद्दिष्टं वर्णे वर्णे यथाक्रमम् ॥

“सर्वेषां वा भवेद्वाभ्यां पवित्रं ग्रन्थितं न वा । त्रिभिस्तु शान्तिके कार्यं पौष्टिके पञ्चभिरतथा ॥

“चतुर्भिश्चाभिचाराख्यं कुर्वन्कुर्यात्पवित्रकम् ” । इति । दर्भलक्षणमाह कौशिकः

५ “सप्तपत्राः शुभा दर्भास्तिलक्षेत्रसमुद्भवाः । अप्रसूनाः स्मृता दर्भाः प्रसूनास्तु कुशाः स्मृताः ॥

“समूलाः कुतपाः प्रोक्ताश्छिन्नाग्रास्तृणसंज्ञिताः ” ॥

अथ तिलनिरूपणम् । मत्स्यपुराणे

“विष्णोर्देहसमुद्भूताः कुशाः कृष्णास्तिलास्तथा । धर्मस्य रक्षणायालमेतत्प्राहुर्दिवौकसः ” ॥

सत्यव्रतः

१० “जर्तिलास्तु तिलाः प्रोक्ताः कृष्णवर्णा वनोद्भवाः । जर्तिलाश्चैव ते ज्ञेया अकुष्ठोत्पादिताश्च ये” ॥

आपस्तम्बः

“अटव्यां ये समुद्भूता अकुष्टाः फलितास्तथा । ते वै श्राद्धे पवित्राः स्युस्तिलास्ते न तिलास्तिलाः ” ॥

अत्राकुष्ठभूमौ जाताः जर्तिलाः प्रशस्ततराः । तदभावे क्षेत्रोत्पन्नास्तेषाम् ‘अपशवो वा अन्ये गोअश्वेभ्यः पशवो गोअश्वाः’ इतिवत्-प्रशंसार्थः प्रतिषेधः ।

१५ पुष्पाण्याह वृद्धमनुः

“शुक्लाः सुमनसः श्रेष्ठास्तथा पद्मोत्पलानि तु । गन्धरूपोपपन्नानि ऋतुकालोद्भवानि च ” ॥

वर्ज्यान्याह स एव

“जपादिकुसुमं झिण्ट रूपिका सकुरण्टिका । पुष्पाणि वर्जनीयानि श्राद्धकर्मणि नित्यशः ” ॥

रूपिकाऽर्कपुष्पम् ।

२० “उग्रगन्धीन्यगन्धीनि दुष्टान्यपि च वर्जयेत् । चंदनागुरुणी चोभे तथैवोशीरपञ्चकम् ॥

“तुरुष्कं गुग्गुलुं चैव घृताक्तं युगपद्देहेत् । घृतं न केवलं दद्याद्दुष्टं वा तृणगुग्गुलम् ” ॥ इति ।

‘तुलसीपत्राण्यपि देयानि’ इति स्मृत्यर्थसारे ।

अथार्घपात्राणि । हारीतः ‘कांस्यपार्णराजतताम्रपात्राण्यर्घोदकधारणानि सर्वाण्युपकल्प्यानि’ ।

वैजवापः “खादिरौदुम्बराण्यर्घपात्राणि श्राद्धकर्मणि । अर्थाश्ममृन्मयानि स्युरपि पर्णपुटास्तथा” ॥

२५ इति । पर्णपुटा यज्ञियवृक्षपर्णानिर्मिताश्चमसाकुतयः । यत्तु कात्यायनेन ‘मृन्मयवर्ज्यानि वा विद्यन्ते’ इत्युक्तं तदन्यलाभे मृन्मयनिषेधार्थं नात्यन्तिकनिवृत्त्यर्थमिदं हेमाद्रिः ।

अपक्वमृन्मयनिषेधार्थमित्यन्ये । विकल्पार्थमित्यपरे । मत्स्यपुराणे पर्णमयपात्रमभिधायोक्तम्

“जलजं वाऽपि कुर्वीत तथा सागरसंभवम् । सौवर्णं राजतं ताम्रं पितृणां पात्रमुत्तमम्” ॥ इति ।

“राजतैर्भाजनैर्देयमपि वा रजतान्वितैः ” । इति च । पात्रविशेषेण फलविशेषो ब्रह्मवैवर्ते

३० “पालाशे ब्रह्मवर्चस्वमश्वत्ये राज्यभागिता । सर्वभूताधिपत्यं च प्लक्षे नित्यमुदाहृतम् ॥

“पुष्टिः प्रजाश्च न्यग्रोधे बुद्धिः प्रज्ञा धृतिः स्मृतिः । रक्षोघ्नं च यशस्यं च काश्मर्याः पात्रमुच्यते ॥

“सौभाग्यमुत्तमं लोके मधुके समुदाहृतम् । फल्गुपात्रेण कुर्वाणः सर्वान्कामानवाप्नुयात् ” ॥

फल्गुः काकोडुंवरिका ।

“ परां द्युतिमथार्कं च प्राकाम्यं च विशेषतः । ब्रित्वे लक्ष्मीस्तपो मेधा नित्यमायुष्यमेव च ॥

“ वर्षत्यजस्रं तत्रैव पर्जन्यो वेणुपात्रतः । एतेषां लभते पुण्यं सौवर्णे राजतेऽपि वा ” ॥

पुण्यं फलम् । अत्र च योगसिद्धयधिकरणन्यायेन पर्यायेणैव फलप्राप्तिर्न युगपदिति ।

इत्यर्षपात्रनिर्णयः ॥

५

अथ भोजनपात्राणि । वायुपुराणे

“ पात्रं वै तैजसं दद्यान्मनोज्ञं श्राद्धभोजने । राजतं काञ्चनं चैव दद्याच्छ्राद्धेषु यः पुमान् ॥

“ दत्त्वा च लभते दाता प्रार्थान्यं धनमेव च ” ।

व्यवस्थामाहात्रिः “ भोजने हैमरौप्याणि दैवे पित्र्ये यथाक्रमम् ” ।

हारीतः “ राजतकांस्यपर्णताम्रपात्राणि ब्राह्मणभोजनार्थानि महान्ति । भोजनार्थोपकल्पितसर्वाङ्ग- १०  
धारणपर्याप्तं महत्त्वं ग्राह्यम् । कांस्ये विशेषमाहात्रिः “ पञ्चाशत्पलिकं कांस्यं व्यधिकं  
भोजनाय वै ” ॥ इति । वाराहे

“ अन्यान्यपि तु पात्राणि दारुजान्यपि जानता । यथोपपन्नं कार्याणि मृन्मयानि न तु क्वचित् ॥

“ नायसान्धपि कुर्वीत पैत्तलानि न चैव हि । न च सीसमयानीहशस्यन्ते त्रपुजान्यपि ” ॥ इति ।

अंगिराः ‘ न जातीकुसुमानि दद्यान्न कदलीपत्रम् ’ इति ॥ इति भोजने भाजनविधिः । १५

अथ श्राद्धे प्रशस्ता ब्राह्मणाः । वसिष्ठः ( ११।१६-१७ ) ‘ पितृभ्यो दद्यात्पूर्वेद्यु-  
ब्राह्मणान् संनिपात्य यतीन् गृहस्थान् साधून् परिणतवयसोऽविकर्मस्थान् श्रोत्रियानशिष्यान् नन्ते-

वासिनः ’ इति । अन्तेवासी शुश्रूषकः । कात्यायनः ‘ स्नातकानेके यतीन् गृहस्थान् साधून्वा

श्रोत्रियान् वृद्धाननवधानसकर्मस्थानभावेऽपि शिष्यान्सदाचारान् ’ इति । मनुः ( १।१४५ )

“ यत्नेन भोजयेच्छ्राद्धे बह्वचं वेदपारगम् । शाखान्तगमथाध्वर्युं छन्दोगं वा समाप्तिगम् ” ॥ इति । २०

वा शब्दोऽपि स्थाने । शातातपः

“ भोजयेद्यथर्वाणं दैवे पित्र्ये च कर्मणि । अनन्तमक्षयं चैव फलं तस्येति वै श्रुतिः ” ॥

अत्र केचित् ‘ यथा कन्या तथा हविः ’ इति कन्यासाधर्म्येण स्वशास्त्रीयमेव श्राद्धे  
नियोजयन्ति । तत्र । कन्यायामिव स्वशास्त्रीयनियमे मानाभावात् । वचनं तु कुलीननियमपरं

युक्तमिति । बृहस्पतिः

२५

“ यद्येकं भोजयेच्छ्राद्धे छन्दोगं तत्र भोजयेत् । ऋचो यजूंषि सामानि त्रितयं तत्र विद्यते ” ॥

यमशातातपौ

“ छन्दोगं भोजयेच्छ्राद्धे वैश्वदेवे च बह्वचम् । पुष्टिकर्मणि वाऽध्वर्युं शान्तिकर्मण्यथर्वणम् ” ॥

ब्रह्मवैवर्ते

“ विप्रान् गृहस्थान् वेदार्थविदो निरामिमानिनः । पत्नीपुत्रसमायुक्तान् श्राद्धकर्मणि भोजयेत् ” ॥ ३०

नन्दिपुराणे “ चत्वार आश्रमाः पुण्याः श्राद्धे दैवे तथैव च ” ॥ इति ।

कूर्मपुराणे

“ असमानप्रवरको ह्यसगोत्रस्तथैव च । असम्बन्धी च विज्ञेया ब्राह्मणाः श्राद्धसिद्धये ” ॥

यमः

“ नक्षत्रतिथिपुण्याहान् मुहूर्तान्मङ्गलानि च । न निर्दिशन्ति ये विप्रास्तैर्भुक्तं ह्यक्षयं भवेत् ” ॥ ३५

अथानुकल्पः । ब्रह्माण्डपुराणे

“अलामे संति भिक्षूणां भोजयेद्ध्यानिनः शुभान् । असंभवेऽपि तेषां वै नैष्ठिकान् ब्रह्मचारिणः ॥

“तदभावेऽप्युदासीनं गृहस्थमपि भोजयेत्” ॥ भिक्षवो यतयस्ते च त्रिदण्डिन एव भोज्याः इति हेमाद्रिः । अत्र मानं तु चिन्त्यम् । ध्यानिनो वानप्रस्थाः । गारुडे

५ “उदासीनेष्वलब्धेषु भोज्याः सम्बन्धिनोऽपि हि । मातुलश्यालयाज्यत्विक्शिष्याचार्यादयोऽपि च” ॥  
गौतमः ( १५।२०२१ ) ‘ शिष्यांश्चैके सगोत्रांश्च । भोजयेदूर्ध्वं त्रिभ्यो गुणवतः ’ । चद्वयेन याज्यसमानार्थेयग्रहणम् । मनुः ( ३।१४८ )

“मातामहं मातुलं च स्वस्तीयं श्वशुरं गुरुम् । दौहित्रं विट्पतिं बन्धुमुत्विग्याज्यांश्च भोजयेत्” ॥

१० विट्पतिर्जामाता इति हेमाद्रिः । अतिथिरिति मेधातिथिमाधवा । गार्ग्यः

“नैकगोत्रे हविर्दद्याद्यथा कन्या तथा हविः । अभावे ह्यन्यगोत्राणामेकगोत्रांस्तु भोजयेत् ॥

“असमप्रवराभावे समानप्रवरानपि” ॥ बौधायनः ( २।८।४ ) “तस्मादेवंविधं सपिण्डमप्याशयेत्” ॥ इति ।

तत्र विशेषमाह गौतमः ( १५।२१-२२ ) ‘भोजयेदूर्ध्वं त्रिभ्यो गुणवन्तम्’ इति । अत्रिः

१५ “पिता पितामहो भ्राता पुत्रो वाऽथ सपिण्डकः । न परस्परमर्हाः स्युर्न श्राद्धे ऋत्विजस्तथा ॥

“ऋत्विक्पुत्रादयो ह्येते सकुल्या ब्राह्मणाः स्मृताः । वैश्वदेवे नियोक्तव्या यद्येते गुणवत्तराः” ॥

इत्यनुकल्पः । शातातपः

“सन्निष्कृष्टमधीयानं ब्राह्मणं यस्त्वतिक्रमेत् । भोजने चैव दाने च दहत्या सप्तमं कुलम्” ॥

भविष्यत्पुराणे “अतिक्रान्ते न दोषोऽस्ति निर्गुणं प्रति कर्हिचित्” । महाभारते

२० “गायत्रीमात्रसारोऽपि ब्राह्मणः पूजितः खग । गृहासन्नो विशेषेण न भवेत्पतितः स चेत्” ॥

भविष्यत्पुराणे

“यस्त्वासन्नमतिक्रम्य ब्राह्मणं पतितादृते । दूरस्थं भोजयेन्मूढो गुणाढ्यं नरकं व्रजेत्” ॥

महाभारते

“यदि स्यादधिको विप्रो दूरे वृत्तादिभिर्वृतः । तस्मै यत्नेन दातव्यमतिक्रम्यापि सन्निधौ” ॥

२५ अथ वज्र्या ब्राह्मणाः । वायुपुराणे “न भोजयेदेकगोत्रान्समानप्रवरांस्तथा” ।

मनुः ( ३।१३८ ) “नारिं न मित्रं यं विद्यात्तं श्राद्धे भोजयेद्विजम्” । ब्रह्माण्डे

“न भोज्या योनिंसंबद्धा गोत्रसम्बन्धिनस्तथा । मन्त्रान्तेवासिसंबद्धा श्राद्धे विप्राः कदाचन” ॥

ब्रह्मवैवर्ते

“शिष्याश्च ऋत्विजो याज्याः सुहृदः शत्रवस्तथा । श्राद्धे तु श्वशुरः श्यालो न भोज्या मातुलादयः” ॥

३० कौर्मै “यस्य वेदश्च वेदी च विच्छिद्येते त्रिपौरुषम् । स वै दुर्ब्राह्मणो नार्हः श्राद्धादिषु कदाचन” ॥

याज्ञवल्क्यः ( आ. २२२-२२४ )

“रोगी हीनातिरिक्ताङ्गः काणः पौनर्मवस्तथा । अवकीर्णी कुण्डगोलौ कुनसी श्यावदन्तकः ॥

“भृतकाध्यापकः कृषिः कन्यादूष्यमिशस्तकः । मित्रशुक् पिशुनः सोमविक्रयी परिविन्दकः ॥

३५ “मातापित्रोर्गुरोस्त्यागी कुण्डाशी वृषलात्मजः । परपूर्वापतिः स्तेनः कर्मदुष्टाश्च निन्दिताः” ॥ इति ।

“ दाराग्निहोत्रसंयोगं कुरुते योऽग्रजे स्थिते । परिवेत्ता स विज्ञेयः परिवित्तिस्तु पूर्वजः ” ॥ इति ।  
प्रपंचितं चेदं संस्कारमयूखे । तथा “ कुशीलवोऽवकीर्णी च वृषलीपतिरेव च ” ॥ इति । वर्ज्य इत्यर्थः ।

विष्णुः ( ९३।७ ) “ न वार्यपि प्रयच्छेत बिडालव्रतिके द्विजे ” ॥ ब्रह्मपुराणे

“ भोक्तुं श्राद्धे न चार्हन्ति दैवोपहतचेतसः । षण्ढो मूकश्च कुनस्वी खल्वाटो दन्तरोगवान् ॥

“ श्यावदन्तः पूतिनासः छिन्नाङ्गश्चाधिकाङ्गुलिः । गलरोगी च गडुमान् स्फुटिताङ्गश्च सज्वरः ॥ ५

“ खञ्जतूवरमण्ठाश्च ये चान्ये हीनरूपिणः ” ।

गलरोगी गण्डमाली । गडुमान् कुब्जः । यौवनेष्वजातश्मश्रुस्तूवरः । मण्ठा वक्रजङ्घाः । स्कान्दे

“ काणाः कुण्ठाश्च मण्ठाश्च मूकान्धवधिरा जडाः । कुनस्वाः कुष्ठिनश्चैव दुर्नग्ना विद्धमेहनाः ॥

“ अतिदीर्घा अतिह्रस्वा अतिस्थूला भृशं कृशाः । निर्लोमा नातिलोमानो गौराः कृष्णा अतीवये ॥

“ एतान्विवर्जयेद्विप्रान् प्राज्ञः श्राद्धेष्वश्रोत्रियान् ” ।

१०

दुर्नग्ना दुश्चर्मणाः । विद्धमेहना विद्धशिश्ना इति हेमाद्रिः । मरीचिः

“ अविद्धकर्णः कृष्णश्च लम्बकर्णस्तथैव च । वर्जनीयः प्रयत्नेन ब्राह्मणः श्राद्धकर्मणि ” ॥

लम्बकर्णं वर्णयति गोभिलः

“ हनुस्थलादधः कर्णौ लम्बौ तु परिकीर्तितौ । व्यङ्गुलत्र्यङ्गुलौ शस्तौ तेन शातातपोऽब्रवीत् ” ॥

पूर्वोक्तसर्वापवादमाह सुमन्तुः

१५

“ काणाः कुण्ठाश्च मण्ठाश्च दुश्चर्मणः कचैर्विना । सर्वे श्राद्धे नियोक्तव्या मिश्रिता वेदपारगैः ” ॥

काश्यपेन तु मिश्रणे विशेष उक्तः “ काणादीन् भोजयेद्दैवे श्राद्धे दाने तु वर्जयेत् ” ।

तथा “ न ब्राह्मणं परीक्षेत दैवे कर्मणि धर्मवित् । पित्र्ये कर्मणि संप्राप्ते प्रयत्नेन परीक्षयेत् ” ॥ इति ।

कालिकापुराणे

“ अनाश्रमी तु यो विप्रो जटी मुण्डी वृथा च यः । वृथा काषायधारी यः श्राद्धे तं दूरतस्त्यजेत् ॥ २०

“ चिकित्सका देवलका वृथा नियमधारिणः । सोमविक्रयिणश्चैव राजन्नार्हन्ति केतनम् ” ॥

केतनं श्राद्धीयनिमन्त्रणम् ॥

“ होतारो वृषलाक्षा ये पृषलाध्यापकास्तथा । तथा वृषलशिष्याश्च श्राद्धे नार्हन्ति केतनम् ॥

“ अनग्रयश्च ये विप्रा मृतनिर्यातकाश्च ये । स्तेनाश्च पतिताश्चैव राजन्नार्हन्ति केतनम् ” ॥

सौरपुराणे

२५

“ अङ्गवङ्गकलिङ्गांश्च सौराष्ट्रान् गुर्जरांस्तथा । आभीरान्कोङ्कणांश्चैव द्राविडान्दक्षिणापथान् ॥

“ आवन्त्यान्मागधांश्चैव ब्राह्मणांस्तु विवर्जयेत् ” ॥ इति ।

अथ विभक्तयो निर्णयन्ते । नागरखण्डे

“ विभक्तिरहितं श्राद्धं क्रियते यद्विपर्ययात् । अकुतं तद्विजानीयात्पितृणां नोपतिष्ठति ॥

“ तस्मात्सर्वप्रयत्नेन ब्राह्मणेन विजानता । विभक्तिभिर्यथोक्ताभिः श्राद्धं कार्यं त्रिभिः सदा ” ॥ ३०

विपर्ययाद्भ्रान्तेः । तिसृभिरिति एकोद्दिष्टे आवाहनाभावेन द्वितीयाया अमावात्तिसृणां श्राद्धमात्रसम्बन्धामिप्रायम् ॥

व्यासः “ चतुर्थी त्वासने नित्यं संकल्पे च विधीयते । प्रथमा तर्पणे प्रोक्ता सम्बुद्धिमपरे जगुः ” ॥

नित्यमित्यस्य संकल्प इत्यनेन सम्बन्धः । आसने षष्ठ्या अपि वक्ष्यमाणत्वात् । धर्मः

“ वृच्छाक्षय्यासने षष्ठी चतुर्थी चासने मता । अर्ध्यावनेजनं पिण्डं तथा प्रत्यवनेजनम् ॥

३५

“सम्बुद्धयेतानि कुर्वीत सर्वशास्त्रविशारदः” ॥

पृच्छा ब्राह्मणानुज्ञाग्रहणार्थं श्राद्धारम्भे प्रश्नवाक्यम् । भृशुः

“आसने तु भवेत्पृष्ठी तथैवाक्षय्यपृच्छयोः । आवाहने द्वितीया स्यादेष शास्त्रविनिश्चयः ॥

“गन्धं माल्यं च धूपं च दीपमन्नं सदक्षिणम् । अपृथक्त्वेन दातव्यं चतुर्थ्या भूतिमिच्छता” ॥

५ अत्रासने चतुर्थीषष्ठ्योर्यथाशास्त्रं व्यवस्थितो विकल्पः । एता एव विभक्तयो गोत्रपदे शर्मपदे च योज्याः । स्त्रीलिङ्गेऽपि विभक्त्यन्तपदप्रयोगः प्रदर्शितो नागरखण्डे

“मातमन्त्रे तथा मातुरासने कल्पने क्षणे । गोत्रे गोत्रायै गोत्रायाः प्रथमाद्या विभक्तयः ॥

“देवि देव्यै तथा देव्या एवं मातुश्च कीर्तयेत्” ।

गोभिलोऽपि—“गोत्रायाश्चासने कुर्याद्गोत्रे चैवार्घ्यपिण्डयोः ॥

१० “गोत्रायाश्चाक्षय्यकाले गोत्रायै त्याग एव च । गोत्रामावाहने कुर्यात् स्त्रीलिङ्गे तु न संशयः” ॥

अथ सव्यापसव्यनिर्णयः—चतुर्विधं कर्म । किञ्चित्पिण्डयैकसम्बन्धित्वात्पिण्डयं यथा स्वधानिनयनादि । किञ्चिद्देवैकसम्बन्धित्वाद्देवं । यथा विश्वेदेवाः प्रीयन्तामिति वाचनम् । किञ्चिदुभयसम्बन्धादुभयात्मकं यथा पाकप्रोक्षणादि । किञ्चिच्च देवपितृसम्बन्धरहितत्वाल्लौकिकमेव यथा स्वागतप्रश्नादि ।

तत्र पिण्डमुभयात्मकं च प्राचीनावीतिना कार्यमित्याह मनुः ( ३।२७९ )

१५ “प्राचीनावीतिना सर्वमपसव्यमतन्द्रिणा । पिण्डमा निधनात्कार्यं विधिवद्भपाणिना” ॥

अपसव्यमप्रदक्षिणं । निधनं समातिः । अत्र पिण्डे विहितं प्राचीनावीतं देवपितृसाधारणेऽपि कर्मणि भवति । विप्रतिषिद्धप्रधानाप्रधानधर्मसमवाये प्रधानधर्मस्य बलीयस्त्वात् । देवं तूपवीतिनैव कार्यम् । तदुक्तं नागरखण्डे

“एवं सर्वाः क्रियाः कार्या दैविक्यः सव्यपूर्विकाः । पितृव्यश्चापसव्येन मुक्त्वैकं स्वस्तिवाचनम्” ॥

२० स्वस्तिवाचनं ‘स्वस्तीति ब्रू’ इति प्रैषः । रागतः प्राप्तपुरुषार्थभोजनाश्रितनिरामिषत्वादि-नियमस्य कर्मार्थत्वेऽपि भोजनस्य प्राधान्याद्यज्ञोपवीतमेव । अथवा पिण्डत्वेन प्राप्तस्य प्राचीनावीतस्य ‘कृतापसव्यः पूर्व्युः पितृपूर्वं निमंत्रयेत्’ इत्यनेन संकल्पप्रभृतिनिमन्त्रणे पुनर्विधानात्तत्पूर्वकृत्यनिरामिषभोजनादौ प्राचीनावीतं परिसङ्ख्यायते अतो यज्ञोपवीतम् । देशकालसंकीर्तनादि युष्मदनुज्ञया करिष्य इति वाक्यं प्राचीनावीती उच्चारयेत् ।

२५ प्रचेताः

“अपसव्यं ततः कुर्याज्जत्वा मन्त्रं तु वैष्णवम् । गायत्रीं प्रणवं चापि ततः श्राद्धमुपक्रमेत्” ॥

ततः ब्राह्मणोपवेशनोत्तरं प्राणायामं कृत्वा उपक्रमेत् संकल्पयेत् इति हेमाद्रिः । नीवीबन्ध-श्चापसव्येन । ‘पितृदेवत्या वै नीवीः’ इति श्रुतेः । बृहस्पतिः “ऋजून्सव्येन वै दद्याद्देवे दर्मान्प्रदक्षिणम्” । एतच्च सव्यमाच्छादनान्तेषु देवपदार्थेषु । अत एव वैश्वदेविकाच्छादनान्तं

३० पदार्थकाण्डमुक्त्वाऽऽह याज्ञवल्क्यः ( आ. २३२ )

“अपसव्यं ततः कृत्वा पितृणामप्रदक्षिणम् । द्विगुणांस्तु कुशान्दत्वा ह्युशन्तस्त्वेष्टुचा पितृन्” ॥

‘आवाहयेत्’ इति वक्ष्यमाणेन सम्बन्धः । एतच्चापसव्यं दर्मासनदानाद्याच्छादनान्तम् । अग्नौकरणे तु कात्यायनानामनुज्ञाभ्यर्थनात्प्रभृति प्राचीनावीतित्वम् । आश्वलायनानां तु अनुज्ञा-भ्यर्थनात्प्रभृति तदुत्तरभाविपदार्थप्रभृति वा प्राचीनावीतित्वम् । अथवा सर्वेषामेवादितः प्राचीना-

वीतित्वं यज्ञोपवीतित्वं वा । हुतशेषप्रतिपत्तिस्तु प्राचीनावीतिनैव कार्या इत्याह शौनकः

“ हुत्वाऽग्नौ परिशिष्टं तु पितृपात्रेष्वनन्तरम् । निवेद्यैवापसव्येन परिवेषणमाचरेत् ” ॥

अत्रापसव्येनेत्यस्य न परिवेषणेन सम्बन्धः ।

“ अपसव्येन यस्त्वन्नं ब्राह्मणेभ्यः प्रयच्छति । विष्टामश्नन्ति पितरस्ते च सर्वे द्विजोत्तमाः ” ॥

इति कार्ष्णाजिनिवचनात् । पात्रालम्भनाङ्गुष्ठनिवेशनास्रत्यागभोजनप्रेषाः सव्येन दैवे ५  
पित्र्ये त्वपसव्येन । अतिथेः सर्वं यज्ञोपवीतेन । भोजनप्राक्कालीनः गायत्रीमधुमत्यादिजप-  
श्चापसव्येन “ कृतापसव्यः कुर्वीत मुक्त्वाऽयं त्वश्रतां जपः ” इति वृद्धशातातपवचनात् ।  
अपोशानार्थमुदकदाने तु यज्ञोपवीतम् । पित्र्यत्वाभावात् । भुज्जानेषु पित्र्यसूक्तजपोऽप्युपवीतिना ।  
तथा च मरीचिः

“ प्रदक्षिणं शिवा आपो जपाशीः स्वस्तिवाचने । विप्रेषु दक्षिणादानं षट् सव्येन प्रचक्षते ” ॥ १०

प्रदक्षिणं विसर्जनानन्तरं ब्राह्मणप्रदक्षिणीकरणम् । ‘ शिवा आपः ’ इतिमन्त्रेण क्रियमाणं  
कर्म । अदृष्टार्थे मन्त्रोच्चारणं जपः । आशीः ‘ दातारो नोभिवर्द्धन्तामि ’ त्यादिका । ‘ स्वस्ति  
भवन्तो ब्रुवन्तु ’ इति स्वस्तिवाचनम् । साङ्गं विकिरदानमपसव्येन । ‘ तृप्ताः स्थ ’ इति प्रश्नः  
शेषान्नविनियोगश्च दैवपित्र्यसाधारण्यादपसव्येन । साङ्गं पिण्डदानमपसव्येन “ अपसव्येन  
दर्भेषु पिण्डा देयास्त्रयस्तु वै ” इति कार्ष्णाजिनिवचनात् । सुप्रोक्षितमस्त्विति श्राद्धदेशप्रोक्षणं १५  
कर्मैकसम्बन्धात्प्राचीनावीतिनैव । अत्र कर्कः “ आचान्तेषूदकपुष्पाक्षतदानं तच्च दैवपूर्वं  
ततोऽपसव्यं पित्र्ये केचित्तु सव्येनेच्छन्ति तत्र दानसंयोगात् ‘ पिण्डपितृयज्ञवहुपचारः पित्र्ये ’  
इति च दर्शनादिति ” तत्पूर्वोक्तमरीचिवचनविरोधात्पित्राद्युद्देशमन्तरेण क्रियमाणत्वाच्चोपेक्ष्यम् ।  
अक्षय्योदकं दैवे सव्येन पित्र्ये चापसव्येन । ‘ अधोराः पितरः ’ इत्याद्युपवीतेन । आशीः सव्येन  
‘ जपाशीः स्वस्तिवाचनम् ’ इति मरीच्युक्तेः । स्वघावाचनं तु साङ्गं पित्र्यत्वात्प्राचीनावीतेन । २०  
पात्रस्थैर्धसंस्त्रवमोचनं न्युञ्जपात्रोत्तानाकरणं च प्राचीनावीतिना । तदाहात्रिः

“ अपसव्यं ततः कृत्वा पिण्डपार्श्वं समाहितः । क्षिप्त्वा दर्भपवित्राणि मोचयेत्संस्त्रवांस्ततः ” ॥ इति ।  
पिण्डार्थं कल्पिते देशे इत्यर्थः । जमदग्निः

“ सर्वं कर्मापसव्येन यत्किञ्चिदिह कीर्तितम् । विहाय दक्षिणामेकां तथा विप्रविसर्जनम् ॥

“ अपसव्यं तु तत्राह मात्स्ये तु भगवान्मुने ” ॥ इति । २५

इदं च व्यवस्थितम् । ब्राह्मणानामानन्त्यर्थत्वपक्षे सव्येन । पितृभ्य एव दानमिति  
पक्षेऽपसव्येन । विश्वेदेवाः प्रीयन्तामित्युपवीतेन । भोजनपात्रचालनं दैवे सव्येन पित्र्येऽपसव्येन ।  
स्वस्तिवाचनं तूपवीतेन मरीचिवचनात् । विसर्जनं प्रदक्षिणीकरणं च सव्येनेत्युक्तम् ।  
अनुव्रजनमपसव्येन । ब्राह्मणदत्तपुष्पाक्षतग्रहणादि ‘ अद्य मे सफलं जन्म ’ इत्यादि च उच्छिष्टो-  
द्घासनं च लौकिकत्वादुपवीतेन । यजमानऋतृकस्य पत्न्यै पिण्डदानस्य पितृसम्बन्धराहित्या- ३०  
दुपवीतेन । ‘ पिण्डास्तु गोअविप्रेभ्यः ’ इत्यादिका प्रतिपत्तिस्तु पित्र्यत्वात्प्राचीनावीतिनेति दिक् ॥

अथ विप्रनिमन्त्रणादि कौर्मे

“ श्वो भविष्यति हि श्राद्धं पूर्वयुरभिपूजयेत् । असंभवे परेयुर्वा ब्राह्मणांस्तान्निमन्त्रयेत् ” ॥ इति ।



## नागरखण्डे

“पूर्वेद्युः सायमासाद्य संयुतानां द्विजन्मनाम् । गृहं गत्वा शुचिर्भूत्वा संयतांस्तान्निमन्त्रयेत् ” ॥

यमः “ प्रार्थयित प्रदोषान्ते भुक्तानशयितान् द्विजान् ” । इति निमन्त्रिणं स्वयमेव कार्यम् ॥

‘ दाता विप्रान्निमन्त्रयेत् ’ इति हेमाद्रौ देवलोक्तेः । असंभवे तु पुत्रादयोऽपि । ‘ स्वयं शिष्योऽ-

यथा सुतः ’ इति तत्रैव बृहस्पत्युक्तेः । कांश्चिन्निषेधति नारायणः

“ अमोज्यं ब्राह्मणस्यान्नं क्षत्रियाद्यैर्निमन्त्रितम् । तथैव क्षत्रियादीनां वृषलेन निमन्त्रितम् ” ॥

यमः

“ अमोज्यं ब्राह्मणस्यान्नं वृषलेन निमन्त्रितम् । तथैव वृषलस्यान्नं ब्राह्मणेन निमन्त्रितम् ” ॥

नागरखण्डे “ कुलाचारसमोपेतान् गृहीत्वा चरणौ ततः ॥

१० “ प्रसादयेच्च सव्येन विश्वेदेवार्चने पुरा । युग्मानेव यथाशक्त्या मन्त्रमेतमुदीरयेत् ॥

“ आगच्छन्तु महाभागा विश्वेदेवास्तनौ तव । भक्त्याहूतो मया चैव त्वं चापि व्रतभागभव ॥

“ एवं युग्मान्समामन्य वैश्वदेवकृते द्विजान् । अयुग्मानपसव्येन पित्रर्थं चाभिमन्त्रयेत् ॥

“ ब्राह्मणांश्च यथाशक्त्या एकैकस्य पृथक् पृथक् । एकैकं वा त्रयाणां वाऽप्येकमेव निमन्त्रयेत् ॥

“ द्विजं मातामहानामप्येष एव विधिः स्मृतः ॥

१५ “ ततः पादौ परिस्पृश्य द्विजस्येदमुदीरयेत् । श्रद्धापूतेन मनसा पितृभक्तिपरायणः ॥

“ पिता मे तव कायेऽस्मिन् तथैव च पितामहः । स्वपित्रा सहितोऽभ्येतु त्वं च व्रतपरो भव ॥

“ एवं पितृन्समाहूय तथा मातामहानथ । सव्यं कृत्वा नमस्कृत्य तान्विप्रान्त्वगृहं व्रजेत् ” ॥

तत्रैव

“ ब्राह्मणानां गृहं गत्वा तान्प्रार्थ्य विनयान्वितः । अमुकस्य त्वया श्राद्धे क्षणो वै क्रियतामिति ॥

२० “ वदेद्भ्युपगच्छेयुर्विप्राश्चैव तथेति च । भूयोऽपि व्याहरेत्कर्ता तं प्राप्नोतु भवानिति ॥

“ द्विजस्तु प्राप्नवानीति विधिरेष निमन्त्रणे ” ॥ प्रचेताः

“ कृतापसव्यः पूर्वेषुः पितृपूर्वं निमन्त्रयेत् । भवद्भिः पितृकार्यं वः संपाद्यं नः प्रसीदत ” ॥

याज्ञवल्क्यः ( आ. २२८ )

२५ “ द्वौ दैवै प्राक् त्रयः पित्र्ये उद्गौकैकमेव वा । मातामहानामप्येवं तन्त्रं वा वैश्वदेविकम् ” ॥

वसिष्ठः ( ११।२७ )

“ द्वौ दैवै त्वथ पित्र्ये त्रीनैकैकमुभयत्र वा । भोजयेत्सुसमृद्ध्याऽपि विस्तरं तु विवर्जयेत् ” ॥ इति ।

विस्तरम् ‘ नवावरान् भोजयेदयुजो वा यथोत्साहम् ’ इति गौतमोक्तम् ( १५।७-८ ) ।

तस्य त्वत्यन्तसमृद्धोऽधिकारीत्यर्थः । अनेकविप्राभावे त्वेकमपि भोजयेत् । ‘ भोजयेद्यथाऽप्येकं

३० ब्राह्मणं पङ्क्तिपावनम् ” इति शंखोक्तेः । अत्र वैश्वदेवप्रकारमाह स एव

“ यथेकं भोजयेच्छ्राद्धे दैवं तत्र कथं भवेत् । अन्नं पात्रे समुद्धृत्य सर्वस्य प्रकृतस्य तु ॥

“ देवतायतने कृत्वा यथाविधि निवेदयेत् । प्रास्येदर्चनं तदग्नौ तु दद्याद्वा ब्रह्मचारिणे ” ॥ इति ।

चतुर्विंशतिमतेऽपि “ विप्राभावे वृथा न स्याद्दद्याद्ग्नौ जलेऽपि वा ” ॥ इति ।

अत्र विशेषो मात्स्ये “ पठन्निमन्त्र्य नियमान् श्रावयेत्पैतृकान् बुधः ।

३५ “ अक्रोधनैः शौचपरैः सततं ब्रह्मचारिभिः । भवितव्यं भवद्भिश्च मया च श्राद्धकारिणा ” ॥ इति ।



जातूकर्णः

“ निरामिषं सकृद्धुक्त्वा भुक्तसर्वजने गृहे । निमन्त्रयीत पूर्वेषुरुपगम्य द्विजोत्तमान् ” ॥

आदित्यपुराणे “ तदहस्तु शुचिर्भूत्वाऽक्रोधनोऽवारितो भवेत् ।

“ अप्रमत्तः सत्यवादी यजमानोऽथ वर्जयेत् । अध्वानं मैथुनं चैव श्रमं स्वाध्यायमेव वा ” ॥

अत्राहःशब्देन निमन्त्रणप्रभृतिभुक्तान्नपरिणामावधिः कालो गृह्यते “ स्यादन्न परिणामान्तं ब्रह्मचर्यं ५

द्वयोस्ततः ” ॥ इति प्रचेतःस्मरणात् । वृद्धमनुः “ निमन्त्र्य विप्रांस्तदहर्वर्जयेन्मैथुनं क्षुरम् ” ॥

क्षुरं क्षुरकर्म । एतच्च नखनिकुन्तनादेरप्युपलक्षणम् इति हेमाद्रिः । जाबालिः

“ ताम्बूलं दन्तकाष्ठं च स्नेहस्नानमभोजनम् । रत्यौषधपराङ्मानि श्राद्धकर्ता तु वर्जयेत् ” ॥

प्रचेताः “ श्राद्धभुक् प्रातरुत्थाय प्रकुर्याद्वन्तधावनम् । श्राद्धकर्ता न कुर्वीत दन्तप्रक्षालनं बुधः ” ॥

विष्णुः ( ७९।१९-२१ ) “ कोपं परिहरेन्नाश्रु पातयेन्न त्वरां कुर्यात् ” । १०

निमन्त्रितद्विजपरित्यागे दोषं प्रायश्चित्तं चाऽऽह नारायणः

“ केतनं कारयित्वा तु यो निर्वासयति दुर्मतिः । ब्रह्महत्यामवाप्नोति शूद्रयो नौ च जायते ॥

“ एतस्मिन्नेनासि प्राप्ते ब्राह्मणो नियतः शुचिः । यतिचान्द्रायणं कृत्वा तस्मात्पापात्प्रमुच्यते ” ॥

केतनमामन्त्रणम् । हारीतः

“ दैवे वा यदि वा पित्र्ये निमन्त्र्य ब्राह्मणं यदि । तर्पयेन्न यथान्यायं स तत्तस्य फलं हरेत् ॥ १५

“ प्रमादाद्विस्मृतं ज्ञात्वा प्रसाधैर्न प्रयत्नतः । तर्पयित्वा विशेषेण सर्वं तत्फलमाप्नुयात् ” ॥

गौतमः ( १५।२३ ) ‘ सद्यःश्राद्धी शूद्रातल्पगस्तत्पुरीषे मासं नयते पितृन् ’ । श्राद्धं

करिष्यमाणं कृतं वाऽस्य विद्यते इति श्राद्धी दाता सद्यस्तत्क्षणमारभ्य । एते च नियमा

आवश्यकः । तदुक्तमग्निपुराणे

“ अमैथुनादयः सर्वे नियमाः श्राद्धकारिणा । अप्रमत्तेन कर्तव्याः प्रमाद्य निरयं व्रजेत् ” ॥ २०

अशक्तावन्येन क्रियमाणे श्राद्धे उमाभ्यामपि कर्तव्याः इत्युक्तं वाराहपुराणे

“ न शक्नोति स्वयं कर्तुं यथा ह्यनवकाशतः । श्राद्धं पुत्रेण शिष्येण तदाऽन्येनापि कारयेत् ॥

“ नियमानाचरेत्सोऽपि विहितांश्च वसुन्धरे । यजमानोऽपि तान् सर्वानाचरेत्सुसमाहितः ॥

“ ब्रह्मचर्यादिभिर्भूमे नियमैः श्राद्धमक्षयम् । अन्यथा क्रियमाणं तु मोषमेव न संशयः ” ॥ इति ।

कात्यायनः “ अनिन्द्येनामन्त्रितो नापक्रामेत् ” । अनिन्द्येन भोज्यान्नेन निमन्त्रितो २५

निमन्त्र्यमाणः नापक्रामेत् न नेच्छेत् । किन्त्वभ्युपगच्छेदेव । तथा च शतपथे ‘ तस्मादुहा

निन्द्यस्य वृत्तो नापक्रामेत् ’ इति । गौतमः ‘ अनिन्द्येनामन्त्रिते शक्तेन न प्रत्याख्यानं

कर्तव्यम् ’ इति । अनेनार्थान्निध्यामंत्रणे भोक्तुमसामर्थ्यं च प्रत्याख्येयमिति गम्यते ।

षड्विंशन्मते

“ विद्यमानधनो विद्वान् भोज्यान्नेन निमन्त्रितः । कथंचिदप्यतिक्रामन्पापः शूकरतां व्रजेत् ” ॥ ३०

अनेन निर्धनस्य बहुदक्षिणादिलामलोमात्कदाचिदतिक्रमे न दोष इति गम्यते ।

कात्यायनः ‘ आमन्त्रितोऽन्यदन्नं न प्रतिगृण्णीयात् ’ । ‘ अन्यदीयश्राद्धोपकृतं तण्डुलादि-

रूपमप्यन्नं न प्रतिगृण्णीयात् ’ इति कर्कः । श्राद्धीयव्यतिरिक्तस्यापि निषेध इत्यन्ये ।

यमः “ अहिंसा सत्यमक्रोधो दूरे च गैमनक्रिया । अभारोद्धनं क्षान्तिः श्राद्धस्योपासने विधिः ” ॥

दूरे सीम्नः परस्तात् । तथा च ब्रह्माण्डपुराणे

“ न सीमानमतिक्रमेच्छाद्द्वार्थं वै निमान्त्रितः । पर्थटन् सीममध्ये तु न कदाचित्प्रदुष्यति ” ॥

यमः “ पुनर्भोजनमध्वानं भाराध्ययनमैथुनम् । सन्ध्यां प्रतिग्रहं होमं श्राद्धभुग्वर्जयेत्सदा ” ॥

‘ होममन्येन कारयेत् ’ इत्याह कात्यायनः

५ “ सूतके च प्रवासे च अशक्तौ श्राद्धभोजने । एवमादिनिमित्तेषु हावयेदिति योजयेत् ” ॥  
अन्यस्य होतुरलामे भविष्यत्पुराण उक्तम्

“ दशकृत्वः पिबेदापो गायत्र्या श्राद्धभुग्विद्वजः । ततः सन्ध्यामुपासीत जपेच्च जुहुयादपि ” ॥

मण्डलमुक्तं मत्स्यपुराणे “ भवनस्याग्रतो भुवि गोमयेनानुलिप्तायां गोमूत्रेण तु मण्डले ” ॥ इति ।

लिप्तायामिति सामान्यतः सर्वकर्माङ्गतया प्राप्तमनूयते । गोमूत्रसहितेन गोमयेन मण्डले कार्यं

३० इति शेषः । शम्भुः “ उदक्प्लवमुदीच्यं स्यादक्षिणं दक्षिणाप्लवम् ” ॥ इति । मण्डलमिति शेषः ।

तत्र ‘ उदीच्यमुदक्प्लवं दैवं दक्षिणं दक्षिणाप्लवं पित्र्यम् ’ इति व्यवस्था । बौधायनः

“ प्रदक्षिणं तु देवानां पितॄणामप्रदक्षिणम् । दैवानामृजवो दर्भाः पितॄणां द्विगुणाः स्मृताः ” ॥ इति ।

शातातपः “ उदङ्मुखस्तु देवानां पितॄणां दक्षिणामुखः ” ॥ कात्यायनः

“ दक्षिणं पातयेज्जानुं देवान्परिचरन्सदा । पातयेदितरज्जानुं पितॄन्परिचरन्सदा ” ॥ इति ।

१५ मण्डलयोर्विशेषमाह शम्भुः

“ उत्तरेऽक्षतसंयुक्तान् पूर्वग्रान्विन्यसेत्कुशान् । दक्षिणे दक्षिणाग्रास्तु सतिलान्विन्यसेद्बुधः ” ॥ इति ।

मात्स्ये “ नाम गोत्रं पितॄणां तु प्रापकं हव्यकव्ययोः ” ॥ इति ।

तथा “ पाद्यं चैव तथा चार्घ्यं दैवमादौ प्रयोजयेत् । शन्नो देवीति मन्त्रेण पाद्यं चैव प्रदापयेत् ” ॥

आदित्यपुराणे

२० “ विप्रौ तु प्राङ्मुखौ तेभ्यो द्वौ तु पूर्वं निवेशयेत् । उत्तराभिमुखान् विप्रान् त्रीन् पितृभ्यश्च सर्वदा ” ॥  
इति ।

सुमन्तुः—“ दर्भपाणिर्द्विराचम्य लघुवासा जितेन्द्रियः । परिश्रिते शुचौ देशे गोमयेनोपलेपिते ॥

“ दक्षिणाप्रवणे सम्यगाचान्तान्प्रयतान् शुचीन् । आसनेषु सदर्भेषु विविक्तेषूपवेशयेत् ” ॥

मरीचिः “ तथा मातामहश्राद्धं वैश्वदेवसमान्वितमाकुर्वीत भक्तिसंपन्नस्तत्र वा वैश्वदेविकम् ” ॥ इति ।

२५ अत्र पितृमातामहपार्वणयोरेकः प्रयोगः पृथग्वा इति पक्षद्वयम् । आद्यपक्षे वैश्वदेविकतन्त्रता  
द्वितीय आवृत्तिः इति माधवादयः । उपवेशनोत्तरं विप्राणां धर्मानाह भृगुः

“ आमन्त्रितो जपेद्दोग्ध्रीमासीनस्तु निषङ्गिणः । भुक्त्वा तु वामदेवं च श्राद्धभोक्ता न दुष्यति ” ॥

आसीन आसन उपवेशितः । दोग्ध्रीम् ‘ उपह्वये सुदुष्याम् ’ इति ‘ हिङ्कृष्णती ’ इति

वा । यत्तु हेमाद्रिः ‘ आब्रह्मन्ब्राह्मण ’ इत्यादीनि यजुष्यपि दोहनपदोपेतानि जपेत् इति ।

३० तत्र । स्त्रीलिङ्गनिर्देशेन ऋच उपादानात् । साऽप्येका काचित् । एकवचनात् । निषङ्गिणस्तु

त्रयः यजुष्यपि तत्र जप्यानि । निषङ्गिणः ‘ इन्द्रहयाम ’ इति । ‘ स इषुहस्तैः ’ इति च ऋक् ।

‘ नमः कुत्स्नवीताय ’ ‘ नमोवञ्चते ’ इत्यादीनि च । गोभिलः

“ आमन्त्रितो जपेद्दोहां नियुक्तस्त्वृषमान् जपेत् । अनिषङ्गांश्च तत्रैव जप्त्वाऽश्रीयात् द्विजोत्तमः ” ॥

ऋषमानि षडङ्गादीनि छन्दोगेषु प्रसिद्धानि । मरीचिः “ पवित्रपाणयः सर्वे ते च मौनव्रता-

न्विताः ” ॥ इति । यमः “ ब्रह्मोद्याश्च कथाः कुर्युः पितृणामेतदीप्सितम् ” ॥ इति । स एव  
“ भिक्षुश्च ब्रह्मचारी च भोजनार्थमुपस्थितः । उपविष्टेष्वथ प्राप्तः कामं तमपि भोजयेत् ” ॥ इति ।  
विप्रोपवेशनोत्तरकृत्यं पुराणे

“ श्राद्धभूमौ गयां ध्यात्वा ध्यात्वा देवं जनार्दनम् । ताभ्यां चैव नमस्कृत्य ततः श्राद्धं प्रवर्तयेत् ” ॥  
‘ वस्वादींश्च पितृन् ध्यात्वा ’ इति वा तृतीयः पादः । तथा  
“ उभौ हस्तौ समौ कृत्वा जानुभ्यामन्तरा स्थितौ । स प्रयतश्चोपविष्टान् सर्वान्पृच्छेद्विज्ञेत्तमान् ” ॥  
श्राद्धं करिष्य इति पृच्छेदित्यर्थः । ततो विप्राः ‘ कुरुष्व ’ इत्यभ्यनुज्ञां ब्रूयुः । एतदनन्तरकृत्यं  
ब्रह्माण्डपुराणे

“ देवताभ्यः पितृभ्यश्च महायोगिभ्य एव च । नमः स्वधायै स्वाहायै नित्यमेव नमो नमः ॥  
“ आद्येऽवसाने श्राद्धस्य त्रिरावृत्तं जपेत्सदा ” ॥ इति ।

१०

अयं च जपः सङ्कल्पोत्तरमाज्ञादानोत्तरं वा कार्यः । शिष्टास्त्वाज्ञोत्तरमेव कुर्वन्ति । ततः  
कर्तव्यं निगमे ‘ अपहता ’ इति तिलान् विकिरेदिति । एतच्च विकिरणं जपात्प्राकार्यमिति केचित् ।  
अनन्तरकृत्यमाह याज्ञवल्क्यः (आ. २२९) “ पाणिप्रक्षालनं कृत्वा विष्टारार्थान् कुशानपि ” इति  
पुराणे “ आसने चासनं दद्याद्दामे वा दक्षिणेऽपि वा । पितृकर्मणि वामे वै दैवे कर्मणि दक्षिणे ” ॥  
दैवे दर्भाः सयवाः ‘ देवानां सयवा दर्भाः ’ इति काठकोक्तेः । ततः सधर्मकं द्वितीयानिमन्त्रण- १५  
मुक्तं संग्रहे । ततः पुनरपो दत्त्वा निमन्त्रयेत् ‘ दैवे क्षणः क्रियतां ’ ततः ‘ तथा ’ इति  
विप्रो ब्रूयात् । ‘ प्राप्तो भवान् ’ इति कर्ता पुनर्ब्रूयात् । ‘ प्राप्तवानि ’ इति विप्रः पुनर्ब्रूयात् ।  
अत्र विशेषः पुराणे “ निरङ्कुष्ठं गृहीत्वा तु विश्वान्देवान् समाह्वयेत् ” ॥

‘ गृहीत्वा ’ इत्यस्यानन्तरं ‘ निमन्त्र्य ’ इति शेषः इति माधवः । आवाहने विशेषमाह यमः  
“ यवहस्तस्ततो देवान् पृष्ट्वाऽप्यावाहनं प्रति । आवाहयेदनुज्ञातो विश्वेदेवास इत्यृचा ॥  
“ विश्वेदेवाः शृणुतेति मन्त्रं जप्त्वा ततोऽक्षतान् । ओषधय इति मन्त्रेण विकिरेत्तु प्रदक्षिणम् ” ॥  
पादादिमस्तकान्तमक्षतानारोपयेदित्यर्थ इति माधवः ।

२०

अत्र श्राद्धभेदेन विश्वेदेवव्यवस्थामाह शङ्खः

“ इष्टिश्राद्धे ऋतुर्दक्षः संकीर्त्यो वैश्वदेविके । नान्दीमुखे सत्यवसू काम्ये च धुरिलोचनौ ॥

“ पुरुरवार्दवौ चैव पार्वणे समुदाहृतौ । नैमित्तिके कामकालावेवं सर्वत्र कीर्तयेत् ” ॥ इति । २५

धुरिलोचनाविति क्वचित्पाठः । अत्रेष्टिश्राद्धशब्देन पारिभाषिकं कर्माङ्गश्राद्धमुच्यते ।  
तच्चाह पारस्करः

“ निषेककाले सोमे च सीमन्तोन्नयने तथा । ज्ञेयं पुंसवने श्राद्धं कर्माङ्गं वृद्धिवत्कृतम् ” ॥ इति ।

निषेको गर्भाधानम् । तथा च ‘ आधानसोमयागनिषेकादित्रयसंस्कारादिभूतश्राद्धे  
ऋतुदक्षौ ’ इति हेमाद्रिमाधवौ । अत्र श्राद्धचरणाः इष्टिश्राद्धशब्देन कर्माङ्गश्राद्धग्रहणे ३०  
प्रमाणाभावाद्वाक्यसाफल्याय भाष्यकारमते पावमानेष्टीनां समप्राधान्यपक्षे आधानाङ्गमेव  
श्राद्धं गृह्यते । तस्यापि कथंचिदिष्टिजन्याहवनीयादिप्रयोज्यत्वेनेष्टिश्राद्धत्वात् । यद्वा  
प्रयोगपारिजाते

“ यस्य जाताः प्रमीयेरन् पुत्रा नैव भवन्ति वा । ऋतुकाले दिने षष्ठे दम्पती समलङ्कृतौ ॥

“ कृत्वाऽभ्युदयिकं श्राद्धं स्वस्तिवाचनपूर्वकम् ” ॥ इत्यादिना विहितपुत्रकामेष्टचङ्गभूतं श्राद्धं गृह्यते । अस्मिन्पक्षे आधानाङ्गश्राद्धे नान्दीमुखवत्सत्यवसू एव विश्वेदेवाः इति युक्तमुत्पश्यन्ति । नैमित्तिकं च नवान्नलाभनिमित्तकम् । ‘ नवान्नलाभे द्वौ देवौ कामकालौ सदैव हि ’ इत्यादित्यपुराणीयेनोपसंहारात् । तेन ‘ नवान्नलाभः ’ इति निमित्ताधिकाराक्रियमाणराहूपरागादीनामुपलक्षणम् ’ इति हेमाद्रिमतं निरस्तम् । ‘ पितृभक्त्या नवान्नभोजनात्पूर्वं क्रियमाणं नैमित्तिकम् ’ इति तु स्मृतिचन्द्रिकायाम् ‘ एकोद्दिष्टं तु यच्छ्राद्धं तन्नैमित्तिकमुच्यते ’ इति परिभाषितत्वेऽपि तस्य देवहीनत्वान्न ग्रहणम् । अत एव सपिण्डीकरणश्राद्धस्यैकोद्दिष्टपार्वणोभयरूपत्वेन विश्वदेवसत्त्वात्तद्ग्रहणमिति केचित् । एकोद्दिष्टस्थाने पार्वणरूपेण क्रियमाणं सांवत्सरिकमित्यापि केचित् । पितृपक्षचतुर्दश्यामेकोद्दिष्टे विश्वदेवसत्त्वात्तस्य ग्रहणमिति तु युक्तं १० प्रतिभाति । आदित्यपुराणे “ अपि कन्यागते सूर्ये काम्ये च धुरिलोचनौ ” ।

‘ कन्यागतसूर्यं निमित्तीकृत्य विहिते भाद्रपदापरपक्षे ’ इति हेमाद्रिः । कन्यासङ्क्रान्ति-निमित्तके एवेति युक्तम् । आसनदानोत्तरं चार्धपात्रासादनं कार्यम् । तदाह याज्ञवल्क्यः ( आ० २३० )

“ यवैरन्ववकीर्याथ भाजने सपवित्रके । शन्नोदेव्या पयः क्षिप्त्वा यवोऽसीति यवांस्तथा ” ॥ इति ।

१५ मात्स्ये “ विश्वान्देवान् यवैः पुष्पैरभ्यर्च्यासनपूर्वकम् । पूरयेत्पात्रयुग्मं तु स्थाप्य दर्भपवित्रके ” । इति अर्घ्यदानमधिकृत्य कात्यायनः—“ सौवर्णराजतौहुंवरसङ्गमणिमयानां पात्राणामन्यतमेषु यानि वा विद्यन्ते पत्रपुटके वा ” इति । यानि कांस्यादीनि । अत्र राजतं पित्र्य एव न दैवे “ शिवनेत्रोद्भवं यस्मादतस्तत्पितृवल्लभम् । अमङ्गलं तद्यत्नेन देवकार्येषु वर्जितम् ” ॥ इति स्मृतेः । प्रतिपात्रं च पवित्रद्वयं स्थाप्यम् । तथा च चतुर्विंशतिमते “ द्वे द्वे शलाके देवानां पात्रे कृत्वा २० पयः क्षिपेत् ” ॥

योगयाज्ञवल्क्यः “ पवित्रे स्थ इति मन्त्रेण द्वे पवित्रे च कारयेत् ” ।

गार्ग्यः “ स्वाहेति चैव देवानाम् ” इति । अर्घ्यपात्रस्थापनेऽसौ मन्त्रो न तु दाने ’ इति । माधवः । स एव “ दत्त्वा हस्ते पवित्रं तु संपूज्यार्घ्यं विनिक्षिपेत् ” ॥ इति ।

याज्ञवल्क्यः—( आ. २३१ ) “ या दिव्या इति मन्त्रेण हस्तेष्वर्घ्यं विनिक्षिपेत् ” । २५ इति । अर्घ्यदानोत्तरकृत्यमाह स एव ( आ. २३१ ) “ दत्त्वोदकं गन्धमाल्यं धूमदानं सदीपकम् ” । अत्र ‘ गन्धादिग्रहणं वाससोऽप्युपलक्षणम् ’ इति माधवादयः ।

एवमासनादीन्वासोन्तान् वैश्वदेविकपदार्थान् काण्डानुसमयेन कृत्वा पित्र्येऽपि तथैव तान् कुर्यात् । तथा च याज्ञवल्क्यः । ( अ. २३२ ) “ अपसव्यं ततः कृत्वा पितृणामप्रदक्षिणम् ” । इति । अत्र ‘ ततः ’ इत्यनेन वैश्वदेविकपदार्थकाण्डोत्तरं पित्रर्चनविधानात् काण्डानुसमयो ३० गम्यते इति माधवादिज्ञानेश्वरादयः । आसनादिदानेति कर्तव्यतामाह स एव ( आ. २३३ )

“ द्विगुणांस्तु कुशान्दत्त्वा ह्युशंतस्त्वेषुचा पितृन् । आवाह्य तदनुज्ञातो जपेदायन्तु नस्ततः ” ॥

पूर्वमनन्तरं चाऽऽपो देयाः । ‘ अपः प्रदाय दर्भान् द्विगुणमुग्रान् । आसनं प्रदाय । अपः प्रदाय ’ इत्याश्वलायनोक्तेः ( ४।७।५-७ ) । कुशैः सह तिला अपि देयाः । तथा च काठके ‘ पितृणां द्विगुणांस्तिलैः ’ इति । सहार्थे तिलैरिति तृतीया । आवाहने तिलविकरणे विशषमाह प्रचेताः “ शिरःप्रभृति पादान्तं नमो व इति पैतृके ” । इति

चतुर्विंशतिमते च

“ अर्घ्यपात्रं विधायैवं ब्राह्मणान् पूजयेत्ततः । विश्वान्देवांस्तु पादादि शिर आदि पितामहान् ” ॥

इति । जपानन्तरं विशेषः पुराणे “ जपेदायन्तु न इति मन्त्रं सम्यगशेषतः ।

“ रक्षार्थं पितृसत्रस्य त्रिःकृत्वः सर्वतो दिशम् । तिलांस्तु प्रक्षिपेन्मन्त्रमुच्चार्यपहता इति ” ॥

अर्घ्यदानाद्याह याज्ञवल्क्यः ( अ. २३४-२३५ )

“ यवार्थास्तु तिलैः कार्याः कुर्यादर्घ्यादि पूर्ववत् । दत्त्वाऽर्घ्यं संस्रवांस्तेषां पात्रे कृत्वा विधानतः ॥

“ पितृभ्यः स्थानमसीति न्युब्जं पात्रं करोत्यथ ” । इति ।

अर्घ्यपात्राणामासादनप्रकारमाह विष्णुः “ दक्षिणाग्रेषु दणिक्षापवर्गेषु चमसेषु त्रिष्वप आसिञ्चेच्छन्नो देवीः ’ इति । अर्घ्यपात्रेषु पवित्रान्तर्हितेषु जलं प्रक्षिप्य तत्र तिला मन्त्रेण प्रक्षेप्याः । तथा चाऽऽश्वलायनः ( ४।७।८ ) ‘ पात्रेषु दर्भान्तर्हितेषु अपः प्रदाय १० शन्नोदेवीरभिष्टय इति मन्त्रितासु तिलानावापति ‘ तिलोऽसि सोमदेवत्यो गोसवे देवनिर्मितः । प्रतः स्वधया पितृनिर्माहोक्तान् प्रीणयाहि नः स्वधा नमः ’ इति । ‘ अस्मादेव सूत्रात् ‘ शन्नो ’ इति मन्त्रोऽभिमन्त्रण एवाऽऽश्वलायनीयानाम् । अन्येषां तु जलप्रक्षेपे करणम् । अर्घ्यपात्राणि पितृसंख्ययैव न तु विप्रसंख्यया । तेन पित्रादीनामेकैकस्यानेकविप्रप्रक्षेऽपि त्रीण्येवार्घ्यपात्राणि ॥ “ स्तीर्त्वा पितृणां त्रीण्येव कुर्यात्पात्राणि धर्मवित् । एकस्मिन्वा बहुषु वा ब्राह्मणेषु यथाविधि ” ॥ १५

इति वैजवापोक्तेः । स्तीर्त्वा कुशानास्तीर्येत्यर्थः । अर्घ्यपवित्राणि कार्याणि । ‘ तिस्रस्तिस्रः शलाकाः स्युः पितृपात्रेषु पार्षणे ’ इति चतुर्विंशतिमतात् । ब्रह्मपुराणे ‘ अर्घ्याः पुष्पैश्च गन्धैश्च ताः प्रपूज्याश्च मन्त्रवित् ’ इति । अर्घ्या आपः । अर्घ्यदानप्रकारमाहाश्वलायनः ( ४।७।१२ ) ‘ ताः प्रतिग्राहयिष्यन्स्वधाऽर्घ्या इति ता आपो ब्राह्मणहस्तेषूदकपूर्वकं दर्भान् प्रदायोदकपूर्वमर्घ्यं दद्यात् ’ इति । ‘ या दिव्या ’ इत्युक्त्वाऽसावेतत्तेऽर्घ्योदकमिति अप उपस्पश्यैव- २० मेवेतरयोः ’ इति । याज्ञवल्क्यः

“ दत्त्वाऽर्घ्यं संस्रवांस्तेषां पात्रे कृत्वा विधानतः । पितृभ्यः स्थानमसीति न्युब्जं पात्रं करोत्यथ ” ॥ इति । एवं विप्रहस्तेष्वर्घ्यं दत्त्वा तेभ्यो हस्तेभ्यः पात्रान्तरेषु च्युतान् तान्संस्रवान् प्रथमेऽर्घ्यपात्रे गृहीत्वा तत्पात्रं न्युब्जमधोमुखं ‘ पितृभ्यः स्थानमसि ’ इति मन्त्रेण कृत्वा तथैव स्थापयेदित्यर्थः । श्रीदत्तस्तु ‘ संस्रवत्यस्मादिति व्युत्पत्त्या पात्रस्थानामपां ग्रहणम् ’ इत्याह । अत्राचारा- २५ व्यवस्था । न्युब्जपात्रस्थापनानन्तरं विशेषमाह वैजवापः

“ तस्योपरि कुशान्दत्त्वा प्रदद्याद्देवपूर्वकम् । गन्धपुष्पाणि धूपं च दीपं वस्त्रोपवीतकम् ” ॥ इति । व्यासः

“ सपवित्रकरो गन्धैर्गन्धद्वारेति पूजयेत् । धूपं तु धूरसीत्युक्त्वा दीपो ज्योतिरिदं च ते ” ॥ यत्तु “ ललाटे पुण्ड्रकं दृष्ट्वा स्कन्धे माल्यं तथैव चानिराशाः पितरो यान्ति दृष्ट्वा च वृषलीपातिम् ” इति ३० तद्वर्तुलामिप्रायमिति हेमाद्रिः । माल्यमपि शिखायां धार्यं न स्कन्धे । विष्णुः “ भूतेन दीपो दातव्यस्तिलतैलेन वा पुनः ” । अत्रिः ‘ युवंवस्त्राणीत्यनेन दद्याद्दासांसि शक्तितः ’ । शातातपः ‘ युवासुवासा इति वस्त्रं दद्याद्भावे यज्ञोपवीतम् ’ इति । अत्र दैवपूर्वकमित्यनेन गन्धादीनां दैवे पित्र्ये च पदार्थानुसमयेनानुष्ठानं गम्यते । ‘ आसनादीनामाच्छादनान्तानां सर्वेषामेव पदार्थानुसमयः काण्डानुसमयो वा ’ इत्युक्तं स्मृत्यर्थसारे माधवीये च ।

अथाग्नौकरणम् । याज्ञवल्क्यः ( अ० २३६ )

“ अग्नौ करिष्यन्नादाय पृच्छेदन्नं घृतप्लुतम् । कुरुष्वेत्यभ्यनुज्ञातो हुत्वाऽग्नौ पितृयज्ञवत् ” ॥

घृतपदेन शाकादिपरिसङ्ख्येति विज्ञानेश्वरः । ‘ पितृयज्ञवत् ’ इत्यनेन अग्निमुपसमाधाय-

- ५ चरुं श्रपयित्वा मेक्षणेनावदाय ‘ सोमाय पितृमते स्वधा नमोऽग्नये कव्यवाहनाय स्वधानमः ’ इति हुत्वा मेक्षणं च जुहुयादित्येतावदतिदिश्यते । ततः शेषमन्नं पितृपात्रेषु दद्यान्न-  
तु वैश्वदेवपात्रेषु ‘ रौप्येषु ’ इत्युक्तत्वात् । अत्रामावास्याश्राद्धे साग्नेर्दर्शयार्गाविहृतदक्षिणाग्नि-  
सद्भावात्तत्रैवाग्नौकरणम् । अन्यश्राद्धेषु तदद्धाधानिनः केवलस्मार्ताग्निमतश्चौपासने । तथा च-  
विष्णुधर्मोत्तरे

- १० “ आहिताग्निस्तु जुहुयादक्षिणेग्नौ समाहितः । अनाहिताग्निश्चौपसदे अग्न्यभावे द्विजेऽप्सु वा ” ॥ इति ।  
आहिताग्निः सर्वाधानी । औपसदो गृह्याग्निः । कात्यायनः

“ अग्नौकरणहोमं तु कुर्यादप्सि वति यन्मतम् । स यदाऽपां समीपे स्याच्छ्राद्धे ज्ञेयो विधिस्तदा ” ॥ इति ।

केचित्तु श्राद्धस्य गृह्यत्वात् ‘ कर्म स्मार्तं विवाहाग्नौ ’ इत्युपदेशेन पितृयज्ञवदित्यतिदेश-  
बाधादक्षिणाग्निः सद्भावेऽप्यौपासन एव ’ इत्याहुः । तन्न । उपदेशस्यौपासनहोमादिषु सावकाशतया-

- १५ विरोधाभावेनान्यगतिकबाधस्यान्याय्यत्वात् । वाचनिकातिदेशस्योपदेशस्य तुल्यत्वाच्च ।  
अपरार्कस्तु ‘ पितृयज्ञवत् ’ इत्यतिदेशसामान्यवचनं ‘ कर्म स्मार्तमि’त्युपदेशसामान्यवचनानु-  
रोधेन दक्षिणाग्न्यतिरिक्तप्राकृतपदार्थविषयम् । अतोर्धाधानेन गृह्यसद्भावे तत्र होमः । अमावे  
तु दक्षिणाग्नौ । तथा च वायुपुराणे

“ आहृत्य दक्षिणाग्निं तु होमार्थं वै प्रयत्नतः । अग्न्यर्थं लौकिके वाऽपि जुहुयात्कर्मसिद्धये ” ॥ इति ।

- २० अत्राग्न्यर्थमित्यनेन गृह्याग्निकार्ये दक्षिणाग्निविधानेन गृह्यभावे दक्षिणाग्निरर्वाध्य इति ।  
तन्न । कार्ये विधौ फलचमसेनेव सोमस्य शरैरिव च कुशानां गृह्याग्निसत्वेऽपि दक्षिणाग्निना  
तद्बाधस्यैवोचितत्वात् । वस्तुतस्तु ‘ अग्न्यर्थमि’त्यनेनैकवाक्योपात्तदक्षिणाग्निकार्य एव लौकिको  
विधीयते इति युक्तम् । यदपि ‘ स्मार्तं कर्म विवाहाग्नौ ’ इत्यस्याबाधाय ‘ आहिताग्निस्तु जुहुयात्’  
इति वचनं सर्वाधानेन गृह्याग्न्यभावे दक्षिणाग्निविधानपरमिति तदप्ययुक्तम् । विशेषविषये-

- २५ उपवादविषये वोत्सर्गशास्त्रस्याप्रवृत्तेः । लौकिकपदेन गृह्याग्निरिव । ‘ न पैतृयज्ञियो होमो  
लौकिकेऽग्नौ विधीयते ’ इत्यसंस्कृतस्य निषिद्धत्वादिति हेमाद्रिः । तन्न । पैतृयज्ञियपदस्य  
पिण्डपितृयज्ञाङ्गभूताग्नौकरणहोमपरत्वात् । तत्र चेदं न्यायप्राप्तस्याग्निप्रतिनिध्यभावस्यानुवादकं  
वायुपुराणादिवचनप्राप्तस्य निषेधकं वा । अनग्निकस्य सर्वाधानिनश्चासंस्कृते लौकिक  
एव । ‘ हस्तेऽग्नौकरणं कुर्यादग्नौ वा साग्निको द्विजः ’ इति पराशरवचनादिति वृत्तिकारादयः ।

- ३० परे त्वेतद्वचनमग्न्यसन्निधानपरमित्याहुः । यत्तु धूर्तस्वामी आपस्तम्बानां मासिश्राद्ध-  
स्यापूर्वत्वेन पितृयज्ञादक्षिणाग्नेरप्राप्तत्वात्स्मार्तस्य वाऽभावेन सर्वाधानिनोऽधिकरणाभावाद्धोमलोप  
इति । तन्न । पितृयज्ञधर्मकत्वाभावेऽपि स्मृतिवचनेन दक्षिणाग्नेः पाणिनौकिकाग्न्यादेश्व प्राप्ति-  
संभवात् । आश्वलायनानाम्

“ अन्वष्टक्यं च पूर्वेषुर्मासि मास्यथ पार्वणम् । काम्यमभ्युदयेऽष्टम्यामेकोद्दिष्टमथाष्टमम् ॥



“चतुर्ष्वीषेषु साग्रीनां वह्नौ होमो विधीयते । पित्र्यब्राह्मणहस्ते स्यादुत्तरेषु चतुर्ष्वपि ” ॥

इति परिशिष्टाद्विहितदक्षिणाग्न्यभावे विहृत्य होमः कार्यः इति हेमाद्रिः । अनेनैव न्यायेन सर्वश्राद्धेषु दक्षिणाग्निविहरणं कर्तव्यमिति युक्तमुत्पश्यामः । मनुः ( ३२१२ )

“अग्न्यभावे तु विप्रस्य पाणावेवोपपादयेत् । यो ह्यग्निः स द्विजो विप्रैर्मन्त्रदर्शिभिरुच्यते ” ॥

अत्राभावो भार्यापरिग्रहाभावेन तदुत्तरकालिकाग्निस्वीकाराभावेन स्वीकृतो च्छेदेन अग्न्यसन्निधानेन च । केचित्तु भार्यापरिग्रहाभावेनैव इति वदन्ति

“अग्न्यभावे तु विप्रस्य पाणौ दद्यात् दक्षिणे । अग्न्यभावः स्मृतस्तावद्यावद्भार्या न विन्दति” ॥

इति गार्ग्योक्तेः । संभवत्येवाग्निसम्बन्धेऽग्न्यभाव इति वक्तुं शक्यमिति मत्वा साग्रेव कदाचिदग्न्यसन्निधाने पाणिविधिः इति जयन्तस्वामी । शूद्रस्यामश्राद्धे ‘तेनाग्नौकरणं कुर्यात्’ इत्यनेनाग्नौकरणविधानात्तं प्रत्येवाग्न्यभावे पाणिविधिरिति केचित् । १० वस्तुतस्तु ‘पाणावेव’ इत्येवकारेण यत्लौकिकाग्निजलाधधिकरणान्तरनिराकरणं तद्भार्यापरिग्रहाभावकृतेऽग्न्यभावे नान्यस्मिन् अन्यत्र तु पाणिरपीति गार्ग्यवचनार्थः । विप्रश्राग्नेयाधिकरणन्यायेन प्रकृत एव । काश्यपः

“अनाग्निको यदा विप्रः श्राद्धं कुर्यात्तु पार्वणम् । अग्नौकरणवत्तत्र होमो देवकरे भवेत् ॥

‘उपवीतस्वाहाकारादिदैविकधर्मेण जुह्वतामिदम्’ इति हेमाद्रिः । देवस्य कर इति समासः । १५ विवक्षितैकवचनत्वादेकस्यैव । तदुक्तं वायुपुराणे

“वैश्वदेवे यदैकस्मिन् भवेयुर्बहवो द्विजाः । तदैकपाणौ होतव्यं स्याद्विधिर्विहितस्तथा ” ॥

स्वधाकारादिपित्र्यधर्मिणां तु कात्यायनः

“पित्र्ये यः पङ्क्तिमूर्द्धन्यस्तस्य पाणावनग्निकः । हुत्वा मन्त्रवदन्येषां तूष्णीं पात्रेषु निक्षिपेत्” ॥

यत्तु हेमाद्रौ

“अग्नौकरणवत्कुर्याद्द्विजातौ वैश्वदेविके । पाणावेव तु तद्दद्यान्न तु पित्र्ये कदाचन ” ॥ इति ।

तद्देवपाणिस्तुत्यर्थम् । अथवा दैवे कृत्वा न पुनः पित्र्ये कर्तव्यमित्येतदर्थम् । यत्र चामावास्या-श्राद्धादिष्वनेकपार्वणतन्त्रता तत्र पार्वणान्तरसाद्गुण्यार्थं भेदेनानुष्ठानम् । ब्राह्मणैक्ये तु तन्त्रेणैव । दैवेऽप्येवमेव । तदाह कात्यायनः “मातामहस्य भेदेऽपि कुर्यात्तन्त्रेण साग्निकः” ॥ इति ।

मत्स्यपुराणे

“अग्न्यभावे तु विप्रस्य पाणावथ जलेऽपि वा । अजकर्णेऽश्वकर्णे वा गोष्ठे वाऽथ शिवान्तिके” ॥

शङ्खः “अप्सु चैव कुशस्तम्बे अग्निं कात्यायनोऽब्रवीत् । रजते च सुवर्णे च नित्यं वसति पावकः” ॥

सौरपुराणे “महादेवस्य पुरतो गोष्ठे वा श्रद्धयाऽन्वितः” ॥ इति ।

स्मृत्यर्थसारे तु ‘पाणिहोमे इधमभिक्षणविप्राभ्यनुज्ञा न सन्ति । पित्र्यविप्रपाणिं परिसमूहपर्युक्ष्य वामेनोपस्तीर्य दक्षिणेनावदाय जुहुयात्’ इति । कर्कस्मृतिचन्द्रिकाकारौ तु ३० विप्रानुज्ञायां विरोधाभावात् अनग्निश्चेदाज्यं गृहीत्वा भवत्सवेवाग्नौकरणमिति पूर्ववत्थास्तु इति शौनकोकेविप्रानुज्ञा ग्राह्या भिक्षणमप्युपादेयमवदानरूपकार्यत्वात् कार्येऽग्न्यस्य विध्यभावाच्च । परिसमूहनपर्युक्षणे तु न भवतः पांशुनिरसनलक्षणदृष्टकार्यस्य लोपान्नियमादृष्टमात्रस्य चाप्रयोजकत्वात् इति न्यायमाह तु । हेमाद्रिस्तु मतद्वयमपि लिलेख न तु किञ्चिन्निर्णय । पाणौ हुतस्य पृथग्भक्षणं निषेधन्ति गृह्यकाराः



“अन्नं पाणितले दत्तं पूर्वमश्रन्त्यबुद्धयः । पितरस्तेन तृप्यन्ति शेषान्नं न लभन्ति ते ॥

“यच्च पाणितले दत्तं यच्चान्यदुपकल्पितम् । एकीभावेन भोक्तव्यं पृथग्भावो न विद्यते” ॥ इति ।

स्मृत्यर्थसारे तु ‘सर्वाधानी दक्षिणाग्रौ जुहुयाद्विप्रपाणौ वा’ इति विकल्पमभिधाय ‘पाणिहुतं तदैव प्राश्याऽऽचम्योपविशेत् । अथवा भाजने क्षिप्त्वाऽऽचम्योपविशेत् । विधुरादिभिरग्निहीनै-

५ हुतं पूर्वं नाश्रीयाद्भोजनकाले एव त्वश्रीयात् । त्यक्ताग्निहुतं तु नाश्रीयादिति ।

अथ परिवेषणम् । परिवेषणं यथालाभं कार्यम् । तदुत्तरकृत्यमाह याज्ञवल्क्यः (आ. २३८)

“दत्त्वाऽन्नं पृथिवीपात्रमिति पात्राभिमन्त्रणम् । कुत्वेदं विष्णुरित्यन्ते द्विजाङ्गुष्ठं निवेशयेत्” ॥

मनुः ‘विष्णो हव्यं च कव्यं च त्रयाद्रक्षेति वै क्रमात्’ । याज्ञवल्क्यः (अ. २३९)

“सव्याहृतिकां गायत्रीं मधुवाता इति तृचम् । जप्त्वा यथासुखं वाच्यं भुञ्जीरंस्तेऽपि वाग्यता” ॥ इति

१० तथा ‘गायत्रीं त्रिः सकृद्वाऽपि जपेद्याहतिपूर्विकाम् । मधुवाता इति तृचं मध्वित्येतत्त्रिकं तथा’ ॥ इति ।

स्मृत्यन्तरे

“सङ्कल्प्य पितृदेवेभ्यः सावित्रीमधुमज्जपः । श्राद्धं निवेद्यापोशनं जुषप्रैषोऽथ भोजनम्” ॥

अथ भोजयितुर्नियमाः । याज्ञवल्क्यः (आ. २४०) “अन्नमिष्टं हविष्यं च दद्याद-

क्रोधनोऽस्वरः” । इष्टं ब्राह्मणानाम् । मनुः

१५ “यद्यद्रोचेत विप्रेभ्यस्तत्तद्दद्यादमत्सरः । ब्रह्मोद्यांश्च कथाः कुर्यात्पितृणामेतदीप्सितम्” ॥ इति ।

निगमः

“अपेक्षितं यो न दद्याच्छ्राद्धार्थमुपकल्पितम् । अधः कुच्छ्रातिकुच्छ्रासु तिर्यग्योनिषु गच्छति” ॥

शङ्खः “श्राद्धे नियुक्तान् भुञ्जानान् न पृच्छेल्लवणादिषु । अच्छिष्टाः पितरो यान्ति पृच्छतो नात्र संशयः” ॥

२० “दातुः पतति बाहुर्बै जिह्वा भोक्तुस्तु भिद्यते” । देवलः

“नाश्रु संपातयेच्छ्राद्धे न जल्पेन्न हसेन्मिथः । न विभ्रंशेन संकुध्येन्नोद्विजेन्नात्र कुत्रचित् ॥

“प्राप्ते हि कारणे श्राद्धे नैव क्रोधं समुच्चरेत् । आश्रितः सिन्नगात्रो वा न तिष्ठेत्पितृसन्निधौ” ॥

आश्रितस्तम्भमित्यादिषु निहितशरीरः । विष्णुः (८१।१-३) ‘नान्नमासनमारोपयेन्न पदा स्पृशे-

न्नावक्षुतं कुर्यात्’ । आसनग्रहणमाधारोपलक्षणम् । ततश्चात्रपात्रमाधारोपरि न स्थापयेदित्यर्थः ।

२५ अथ यजमानजप्यानि । तत्र ऋग्वेदजप्यानि शङ्खलिखितौ ‘दर्भेष्वानीनी मधुवाता ऋचो

जपेत्’ । अमुं च पाठमुपवीत्येव कुर्यात् । ‘कुशपाणिः कुशासीन उपवीती जपेत्ततः’ इति

ब्रह्माण्डात् । मनुः (३।२३२)

“स्वाध्यायं श्रावयेत्पिण्डे धर्मशास्त्राणि चैव हि । आख्यानानीतिहासांश्च पुराणानि खिलानि च” ॥

आख्यानानि सौपर्णादीनि । पौराणानि च रामनलसावित्र्युपाख्यानादीनि । इतिहासो

३० महाभारतम् । खिलानि परिशिष्टानि श्रीसूक्तादीनि । श्रावणानुवृत्तौ मात्स्ये “ब्रह्मविष्णवर्क-

रुद्राणां स्तोत्राणि विविधानि च” । इति ।

श्रावणानुवृत्तौ निगमे 'राक्षोघ्नीः पावमानीरुदीरतामवरमध्वन्नवतश्च मेन्नाच द्वादशा-  
ष्टाक्षरप्रभृतीन्' । राक्षोघ्नीः 'कुणुष्व पाजः' इति पञ्चदश । 'रक्षोहणम्' इति पञ्च-  
विंशतिः 'इन्द्रासोमा तपतम्' इति पञ्चविंशतिः । 'अग्नेर्हंसिन्यत्रिणम्' इति नव । पावमान्यः  
'पुनन्तु मा पितरः' इत्याद्याः षोडशर्चः । 'तरत्समन्दीति वर्गः' । 'पवस्व विश्वचर्षणिः'  
इति द्वात्रिंशद्वचः । 'त्वं सोमासि' इति द्वात्रिंशत् । 'उदीरतामवरः' इति चतुर्दश । ५  
अन्नवतीः 'पितुं नुस्तोषम्' इत्येकादश । हारीतः 'पुनन्तु मा पितर इति षोडश  
पावमानीर्जपेदादितस्त्रीन्' । षोडशानां मध्ये आद्यान् त्रीन् विशेषत इत्यर्थः । प्रचेताः  
"यजूषि चैव रुद्रांश्च राक्षोघ्नी ऋच एव च" । रुद्रान् शतरुद्रियादीन् जपेदिति शेषः ।  
शङ्खलिखितौ 'अप्रतिरथं मध्ये गायत्रीमनुश्राव्य' इति । अप्रतिरथम् 'आशुःशिशान्'  
इति द्वादशर्चम् सामविशेष इति भाष्ये । सौरपुराणे

१०

"धर्मशास्त्रं पुराणानि तथाऽथर्वशिरस्तथा । ऐंद्रं च पौरुषं सूक्तं ब्राह्मणान् श्रावयेत्ततः" ॥ इति ।

'सुरूपकृत्तुमुतये' इत्यादीनि त्रीणि सूक्तानि प्रत्येकं दशर्चानि । 'इन्द्रमिन्द्राथिन'  
इत्यादीनि त्रीणि सूक्तान्येन्द्राणि । मात्स्ये "इन्द्रेणसोमसूक्तानि पावमानीश्च शक्तिः" ॥ इति ।  
ईशसूक्तानि रुद्रसूक्तानि स्पष्टानि । 'स्वादिष्टया' इत्यादीनि चत्वारि सूक्तानि सौम्यानि ।  
भविष्ये

१५

"पावमान्यश्च कूष्माण्ड्यः शुद्धवत्यस्तरत्समाः । राक्षोघ्नानि च सूक्तानि पितृसूक्तान्यथापि वा" ॥ इति  
श्रावयेदिति शेषः । याज्ञवल्क्यः (आ २४०) "आ तुप्तेस्तु पवित्राणि जप्त्वा पूर्वं जपंततः" ॥ इति ।

पवित्राणि पुरुषसूक्तपवमानादीनि । पूर्वं जपः । व्याहृती गायत्री मधुवाता इति तृचः मधु-  
मध्विति त्रिः । तथा 'अग्निमीळे' इति नवर्चम् । 'वायवायाहि' इति च । 'अश्विनाय-  
ज्वरीरिषः' इति द्वादशर्चम् । 'गायन्ति त्वा' इति च । 'इंद्रं विश्वा' इत्यष्टौ ऋचः । २०  
'अस्य वामस्य' इति पञ्चाशद्वचः । सांख्यायनीयास्तु 'अग्निमीळ' इत्यादीन्येकादश  
सूक्तानि । 'न वा उ देवा' इति नवर्चं पठन्ति आचारादिति हेमाद्रिः ।

अथ यजुर्वेदजप्यानि । हारीतः 'अत्र पितर इति यजुर्नमो वः पितर इति यजुः स्मान्तं  
मधुवाता इति तिस्रः पुनन्तु मा पितर इत्यनुवाकः । त्वं सोमं प्रचिकित इति चैषा पित्र्या  
संहिता । एतां जपन् पितृन् प्रीणाति' इति । स्मान्तं 'वसिष्ठा भूयास्म' इत्येतदन्तं यजुः । २५  
बौधायनः "राक्षोघ्नानि च सामानि स्वधावन्ति यजूषि च" ॥ राक्षोघ्नानि देवव्रताख्यानि ।  
स्वधावन्ति 'पितृभ्यः स्वधा पितृभ्यः' इत्यादीनि । मात्स्ये

"तथैव शान्तिकाध्यायं मधुब्राह्मणमेव च । मण्डलब्राह्मणं तद्वत्प्रीतिकारि च यत्पुनः ॥

"विप्राणामात्मनश्चापि तत्सर्वं समुदीरयेत् । भारताध्ययनं कार्यं पितृणां परमं प्रियम्" ॥

शान्तिकाध्यायः 'शन्नोवात' इत्यादिः । 'इयं पृथिवी' इत्यादि मधुब्राह्मणम् । 'यदेत- ३०  
न्मण्डलं तपति' इत्यादि मण्डलब्राह्मणम् । प्रीतिकारि इतिहासाख्यानादि विणावेणुध्वन्या-  
दिकं वा । तथा च ब्राह्मे "वीणावंशध्वनिं चाथ विप्रेभ्यः सन्निवेदयेत्" ॥ इति ।

"अन्यान्यप्याचाराज्जप्यानि' इति हेमाद्रौ ॥

तत्र तैत्तिरीयाणां तावज्जप्यानि । ' दिवो वा ' इत्यादि ' विष्णव ' इत्यन्तानि यजूंषि ।  
 'अग्र उदध' इत्यादि 'वन्यः पञ्चमः' इत्यन्तानि च । 'रक्षोहणो वलगहन' इत्यनुवाकः । 'इन्द्रो वृत्रं  
 हत्वा' इत्यनुवाकः । ' वैश्वदेवेन वै प्रजापतिः ' इत्याद्यनुवाकद्वयम् । ' अयं वा वयः पवत ' ।  
 इत्यनुवाकत्रयम् । ' ऋचां प्राची ' इत्यनुवाकः । ' अमृतोपस्तरणमसि ' इत्याद्यनुवाकपञ्चकम्  
 ५ ' ब्रह्ममेतु मास ' इत्यनुवाकत्रयम् । ' अणोरणीयात् ' इत्यनुवाकः ' मेधां ' इत्यनुवाकः । ' मेधां म  
 इन्द्रो ददातु ' इत्याद्यश्वत्वारोऽनुवाकाः । ' नकंचन ' इत्यादि ' उपनिषत् ' इत्यन्तं सण्डम् ।  
 अथ वाजसनेयिनां जाप्यानि । कात्यायनः " अश्रत्सु जपेव्याहृतिपूर्वा गायत्री सप्रणवां  
 सकृत्त्रिंशं राक्षोघ्नं पुरुषसूक्तमप्रतिरथं पितृमन्त्रानन्यानि च पवित्राणि " ।  
 अथ मैत्रायणीयानाम् । ' इषे त्वा सुभूताय त्वा वायवस्थ देवो वः सविता ' इत्यादयः

१० पञ्चानुवाकाः ।

अथ कठानाम् । ' सोमाय पितृमतेत्याज्यं पितृभ्यो बर्हिषभ्यः ' इत्याद्यनुवाकः । ' उशन्तस्त्वा  
 हवामह ' इत्याद्यनुवाकः । ' न प्राक्त्विन्या पितृयज्ञः ' इत्याद्यनुवाकः ।

अथ छन्दोगजप्यानि ।

गोभिलः " अश्रत्सु जपेत् व्याहृतिपूर्वा सावित्री तस्यां चैव गायत्री पित्र्यां च संहितां  
 १५ मधुच्छन्दसं च स्वर्गे लोके महीयत इह चास्याक्षयं भवति ' । वरतन्तुः ' प्राणायामपूर्वकं  
 पञ्चसत्यान्तं कृत्वा गायत्री सप्रणवां सव्याहृतिं पठेत् ' इति । ' ॐ भूः ॐ भुवः ॐ स्वः ॐ  
 तपः ॐ सत्यं इति पञ्चसत्यान्तं कृत्वा । ' ॐ भूर्भुवः स्वः ' इति सप्रणवव्याहृतिकां गायत्रीं  
 जपेदित्यर्थः । मात्स्ये ' बृहद्रथन्तरं तद्वज्जेषसाम सरौरवम् ' जपेदिति शेषः । गायत्रं बृह-  
 द्रथन्तरादीनि छन्दोगानां प्रसिद्धानि । प्रचेताः ' पुरुषव्रतानि ज्येष्ठसामानि विविधानि  
 २० च ' । पुरुषव्रतानि पुरुषसूक्तगीयमानानि पञ्च सामानि । ब्रह्माण्डे

" आदित्यब्रह्मणोश्चैव विष्णो रुद्रस्य चैव हि । सामानि श्रावयेच्छ्राद्धे तथाऽन्यान्यपि भूरिशः " ॥

आदित्यसामान्यादित्यव्रताख्यान्येकविंशतिः । ब्रह्मसाम ' ब्रह्मजज्ञानं प्रथमम् ' इति प्रस्तावम् ।

विष्णुरुद्रयोः सामनी छन्दोगानां पुष्पग्रन्थे प्रसिद्धे । कौथुमशास्त्रीयैः ' यद्वा उपविश्यति ' इत्यादीनि पञ्चदश सामानि ' असौ वा आदित्य ' इत्यध्यायश्च श्रावणीयः । राणायनीयैर्महा-

२५ नाप्तीसाम शिष्टाचाराच्छ्रावणीयम् ' इति हेमाद्रिः । अथर्ववेदिनां तु ' आ इन्द्रस्य बाह्वः ' इत्यप्रतिरथं सूक्तं ' प्राणाय नमः ' इत्यादीनि त्रीणि सूक्तानि ' सहस्रबाहुः पुरुषः ' इति पुरुष-

सूक्तम् । ' कालो श्वो वहतु सतरश्मिः ' इति कालसूक्तम् । उपनिषदमध्यात्मम् । प्राणाग्नि-

होत्रमहोपनिषदम् । एतत्सर्वसंभवे तु मात्स्ये ' अभावे सर्वविद्यानां गायत्रीजपमारभेत् ' इति ।

अथ पौराणजप्यानि । विष्णुधर्मोत्तरे

३० " देवताभ्यः पितृभ्यश्च महायोगिभ्य एव च । नमः स्वाहायै स्वधायै नित्यमेव नमो नमः ॥

" आद्यावसाने श्राद्धस्य त्रिरावृत्तं जपेत्सदा " ।

तथा " पिण्डनिर्वपणे वाऽपि जपेदेनं समाहितः । पितरस्तृप्तिमायान्ति राक्षसाः प्रद्रवन्ति च " ॥

गारुडे

" यो विष्णुहृदयं मन्त्रं श्राद्धेषु नियतः पठेत् । पितरस्तर्पितास्तेन पयसा च घृतेन च ॥

३५ " चतुर्भिश्च चतुर्भिश्च द्वाभ्यां पञ्चभिरेव च । हूयते च पुनर्द्वाभ्यां स मे विष्णुः प्रसीदतु ॥

“ यस्य स्मृत्या च नामोक्त्या तपोयज्ञक्रियादिषु । न्यूनं संपूर्णतां याति सद्यो वन्दे तमच्युतम् ॥  
 “ आदिमध्यावसानेषु श्राद्धस्य नियतः शुचिः । जप्यं विष्णुहृदयं मन्त्रं विष्णुलोकं समश्नुते ” ॥  
 चतुर्भिरिति शतपथे ‘ आश्रावय ’ इति चतुरक्षरम् । अस्तु श्रौषडिति चतुरक्षरम् । ‘ यज ’ इति  
 द्व्यक्षरम् । ‘ ये यजामहे ’ इति पञ्चाक्षरम् । द्व्यक्षरो ‘ वषट्कारः एष सप्तदश प्रजापतिराधिदैवतम् ’  
 इति । विष्णुधर्मोत्तरे

५

“ अमूर्तानां च मूर्तानां पितॄणां दीप्ततेजसां । नमस्यामि सदा तेषां ध्यायिनां योगचक्षुषाम् ” ॥  
 इत्यादिसप्ताचिस्तोत्रजपोऽप्युक्तः ।

अथ भोक्तृनियमाः । प्रचेताः

“ पीत्वाऽपोशानमश्रीयात्पात्रे दत्तं विगर्हितम् । सर्वेन्द्रियाणां चापल्यं न कुर्यात्पाणिपादयोः ” ॥

मनुः “ अभ्युष्णं सर्वमन्नं स्याद्भुज्जीरश्चैव वाग्यताः । न च द्विजातयो ब्रूयुर्दात्रा पृष्टा हविर्गुणान् ” ॥ १०  
 दात्रेत्यविवक्षितम् । अत्रिः

“ हुङ्कारेणापि यो ब्रूयाद्धस्ताद्वाऽपि गुणान्वदेत् । भूतलञ्चोद्धरेत्पात्रं मुञ्चेद्धस्तेन वा पिबेत् ॥

“ प्रौढपादो बहिःकक्षा बहिर्जानुकरोऽथ वा । अंगुष्ठेन विनाऽश्राति मुखशब्देन वा पुनः ॥

“ पीत्वाऽवशिष्टतोयानि पुनरुद्धृत्य वा पिबेत् । खादितार्द्धं पुनः खादेन्मोदकानि फलानि वा ॥

“ मुखेन वा धमेदन्नं विधीवेद्भोजनेऽपि वा । इत्थमश्वत् द्विजः श्राद्धं दत्त्वा गच्छत्यधोगतिम् ” ॥ १५

बौधायनः

“ पादेन पादमाक्रम्य यो भुङ्क्तेऽनापदि द्विजः । नैवासौ भोज्यते श्राद्धे निराशाः पितरो गताः ” ॥

शङ्खलिखितौ ‘ ब्राह्मणा अन्नं गुणदोषैर्नाभिवदेयुर्नानृतं ब्रूयुः । अन्योन्यं न प्रशंसेयुः ।

अन्नपानं न प्रभूतमिति ब्रूयुरन्यत्र हस्तसंज्ञया । नाधिकं दद्यान्न प्रतिगृह्णीयात् ” ।

वृद्धशातातपः

“ अपेक्षितं याचितव्यं श्राद्धार्थमुपकल्पितम् । न याचते द्विजो मूढः स भवेत्पितृघातकः ” ॥

यत्तु “ कृच्छ्रद्वादशरात्रेण मुच्यते कर्मणस्ततः । तस्माद्विद्वाञ्चैव दद्यान्न याच्नेन च दापयेत् ” ॥

इति मनुवचनं तदनुकल्पितवस्तुविषयम् । मनुः

“ यदेष्टितशिरा भुङ्क्ते यद्भुङ्क्ते दक्षिणामुखः । सोपानत्कश्च यद्भुङ्क्ते तद्वै रक्षांसि भुञ्जते ” ॥

अत एव निषेधादनवकाशे दक्षिणेतरेदिङ्मुखभोजनमनुमतमिति ज्ञायते । बह्वचपरिशिष्टे

“ यच्च पाणितले दत्तं यच्चान्नमुपकल्पितम् । एकीभावेन भोक्तव्यं पृथग्भावो न विद्यते ” ॥

पाणितले दत्तमग्नौकरणान्नम् । निगमः

“ मांसापूपफलेश्वादि दन्तछेदं न भक्षयेत् । ग्रासशेषं न पात्रं स्यात्पीतशेषं तु नो पिबेत् ” ॥

प्रमादादितरेतरस्पर्शे तु कर्तव्यमाह शङ्खः

“ श्राद्धपङ्क्तौ तु भुजानो ब्राह्मणो ब्राह्मणं स्पृशेत् । तदन्नमत्यजन् भुक्त्वा गायत्र्यष्टशतं जपेत् ” ॥ ३०

उशाना

“ भोजनं तु न निःशेषं कुर्यात्प्राज्ञः कथंचन । अन्यत्र दन्नः क्षीराद्वा क्षौद्रात्सक्तुभ्य एव च ” ॥ इति ।

आश्वलायनः ‘ सृष्टदत्तमृध्नुकम् ’ इति । सृष्टं बहुतरम् । ऋध्नुकं ऋद्धिकरमित्यर्थः । उच्छिष्टस्य

दासभागतामाह मनुः ( ३१४६ )

“ उच्छेषणं भूमिगतमजिह्मस्याशतस्य च । दासवर्गस्य तत्पिण्डे भागधेयं प्रचक्षते ” ॥

ततः सर्ववर्णमन्नं गृहीत्वा ‘तृप्ताः स्थ’ इति विप्रान्पृष्ट्वा ‘तृप्ताः स्मः’ इति तैरुक्ते-  
‘शेषमध्यन्नमस्ति किं क्रियताम्’ इति पृष्ट्वा ‘इष्टैः सह भुज्यताम्’ इत्यनुज्ञातः पितृस्थान-  
विप्रोच्छिष्टसन्निधौ दक्षिणाग्रेषु दर्भेषु तिलोदकं प्रक्षिप्य ‘ये अग्निदग्धा’ इत्यनयर्चा तदन्नं  
प्रक्षिप्य विप्रहस्तेषु गण्डूषार्थं सकृत्सकृदुदकं दद्यात् । हेमाद्रौ धर्मः

“ केषांचिद्विकिरः पूर्वं तृप्तिप्रश्नस्तथापरः । प्रश्नः पूर्वमथान्येषां विकिरस्तदनन्तरम् ॥

“ अमृतापिधानात्पूर्वं केषांचिद्विकिरः स्मृतः । अन्येषां तु ततः पश्चाद्विदुषामिति संमतम् ॥

“ गायत्र्यादिजपात्पूर्वं केषांचित्तदनन्तरम् ” ॥

कात्यायनः “ तृप्तान् ज्ञात्वाऽन्नं प्रकीर्य सकृदपो दत्त्वा पूर्ववद्वायत्रीं जप्त्वा मधुमतीर्मधु-

१० मधु इति च तृप्ताः स्थः इति पृच्छति तृप्ताः स्म इत्यनुज्ञातः शेषमन्नमनुज्ञाप्य ” इति । प्रचेताः

‘तृप्ताः स्थ तृप्ताः स्म प्रभूतं प्रभूतमित्युक्तवन्तः’ इति । विष्णुवाञ्छलायनौ

‘संपन्नं पृष्ट्वाऽन्नं विकीर्य’ इति । विष्णुधर्मोत्तरे त्वनयोः प्रश्नोत्तरयोः समुच्चयो जानुपातनं च दर्शितम् ।

“ प्रष्टव्या ब्राह्मणा भक्त्या भूनिविष्टेन जानुना । तृप्ता भवन्तः संपन्नं भवतां कञ्चिदेव तु ॥

“ तृप्ताः स्मेति च तैरुक्ते संपन्नमिति चाप्यथ । दद्यादाचमनं भक्त्या श्रद्धानः समाहितः ” ॥

१५ श्राद्धविशेषे प्रश्नोत्तरविशेषमाह विष्णुः

“ पिण्डे स्वदितमित्येवं वाच्यं गोष्ठेषु सुश्रुतम् । संपन्नमित्यभ्युदये दैवे रोचत इत्यपि ” ॥

हारीतः ‘तृप्ताः स्वदितमिति पृच्छेत्स्वदितमिति प्रत्याहुः स्मृतमिति दैवे त्वायुष्यामिति स्वैरे-  
स्वाचान्तेषु भूमौ विकिरं निनयेत्’ ।

अथाचमनदानम् । विष्णुः ‘उदङ्मुखेष्व्वाचमनमादौ दद्यात्ततः प्राङ्मुखेषु’ इति ।

२० उदङ्मुखेषु पिण्डविप्रेषु । प्राङ्मुखेषु दैवविप्रेषु । हस्तमप्रक्षाल्यैव गण्डूषग्रहणं कर्तव्यम् ।  
अन्यथा दोषमाह मरीचिः

“ हस्तं प्रक्षाल्य गण्डूषं यः पिबेदविचक्षणः । आसुरं तद्भवेच्छ्राद्धं पितृणां नोपतिष्ठते ” ॥

गोभिलः

“ भुक्त्वाऽऽचम्य पदस्तोमान् जपेत्तत्र समाहितः । गोसूक्तं चाश्वसूक्तं च मध्ये तस्य समीनरम् ॥

२५ “ भुक्त्वासन्नः शुचौ देशे वामदेव्यं ततो जपेत् ।

“ एवं सामभिराच्छन्नो भुञ्जानस्तु द्विजोत्तमः । श्राद्धभोजनदोषैस्तु महद्भिर्नोपलिप्यते ॥

“ अन्यथैव हि भुञ्जानो हव्यकव्येष्वमन्त्रवित् । आत्मानमन्नदातारं गमयत्यासुरीं स्थितिम् ” ॥ इति ।

अथ विकिरेतिकर्तव्यता । पाद्ममात्स्ययोः

“ तृप्तान् ज्ञात्वा ततः कुर्याद्विकिरं सार्ववर्णिकम् । सोदकं चान्नमुद्धृत्य सलिलं प्रक्षिपेद्भुवि ” ॥

३० ब्रह्माण्डपुराणे “ उच्छिष्टे सतिलान् दर्भान् दक्षिणाग्रांनिधौपयेत् ” ।

उच्छिष्टे उच्छिष्टसन्निधौ । विष्णुः ‘भुक्तवस्तु ब्राह्मणेषु तृप्तिमागतेषु मामेक्षेष्टा इत्यन्नं  
सतृणमभ्युक्ष्यान्नविकिरणमुच्छिष्टाग्रतः कुर्यात्’ इति । मन्त्रस्तु ‘मामेक्षेष्ट बहुते पूर्तमस्तु  
ब्राह्मणो मे जुषतामन्नान्नं सहस्रधारममृतोदकं मे पुरतस्त्वेतत्परमे व्योमन्’ इति ।  
वैश्वदेविकविकिरमन्त्रमाह गोभिलः

३५ “ असोमपाश्च ये देवा यज्ञभागविवर्जिताः । तेषामन्नं प्रदास्यामि विकिरं वैश्वदेविकम् ” ॥ इति ।

पिण्डविकिरमन्त्रमाह कात्यायनः

“ये अग्निदग्धा येऽनग्निदग्धा जीवा जाताः कुले मम । भूमौ दत्तेन तृप्यन्तु तृप्ता यान्तु परां गतिम् ” ॥

बृहस्पतिः “अनग्निदग्धा ये जीवा येऽग्निदग्धाः कुले मम ” । गोभिलः

“अग्निदग्धास्तु ये जीवा येऽप्यदग्धाः कुले मम । भूमौ दत्तेन तृप्यन्तु तृप्ता यान्तु परां गतिम् ” ॥

उभयत्र भूमौ दत्तेनेति शेषः । पाद्ममात्स्ययोः

‘अग्निदग्धास्तु ये जीवा येऽप्यनग्निदग्धाः कुले मम । भूमौ दत्तेन तृप्यन्तु तृप्ता यान्तु परां गतिम् ” ॥

“येषां न माता न पिता न बन्धुर्न चान्नसिद्धिर्न तथाऽन्नमस्ति ।

“तत्तृप्तयेऽन्नं भुवि दत्तमेतत्प्रयान्तु लोकाय सुखाय ते तु ॥

“येऽस्मत्कुले तु पितरो लुप्तपिण्डोदकाक्रियाः । ये चाप्यकृतचूडास्तु ये च गर्भाद्विनिःसृताः ॥

“येषां दाहो न क्रियते अग्निदग्धाश्च ये परे । भूमौ दत्तेन तृप्यन्तु तृप्ता यान्तु परां गतिम् ” ॥ १०

अपराकै तु

“असंस्कृतप्रमीता ये त्यागिनो याः कुलस्त्रियः । दास्यामि तेभ्यो विकिरं पिण्डं भूमौ जलेन तु ” ॥

इत्यपि मन्त्र उक्तः । विकिरस्य प्रतिपत्तिमाह गौतमः ‘विकिरमुच्छिष्टैः प्रतिपादयेत्’ ।

उच्छिष्टैरिति सहार्थे तृतीया । भार्गवः “पिण्डवत्प्रतिपत्तिः स्याद्विकिरस्येति तौत्वलिः ” ।

इदं चोच्छिष्टसन्निधौ विकिरदाने तैः सह प्रतिपादनम् । पिण्डसन्निधौ चेत्पिण्डवदिति व्यवस्थित- १५

मिति केचित् । पिण्डसन्निधौ विकिरदानमाह धूम्रः

“कपित्थस्य प्रमाणेन पिण्डं दद्यात्समाहितः । तत्समं विकिरं दद्यात्पिण्डान्ते तु षडङ्गुले ” ॥ इति ।

अथ पिण्डदानम् । साङ्ख्यायनगृह्ये ( ४।८।१३ ) ‘भुक्तवत्सु पिण्डान्दद्यात्पुरस्तादेके’ ।

पुरस्तादिति पक्षे ब्राह्मणार्चनानन्तरमाह देवलः

“अथ संगृह्य कलशं सदर्थं पूर्णमम्भसाम् । पुरस्तादुपविश्यैषां पिण्डावापं निवेदयेत् ” ॥ २०

इत्यादिना । अग्नौकरणानन्तरमाह मनुः

“अपसव्यमग्नौ कृत्वा सर्वमावृत्परिक्रमम् । अपसव्येन हस्तेन निर्वपेदुदकं शुचि ॥

“त्रैस्तु तस्माद्विशेषात्पिण्डान्कृत्वा समाहितः ” ॥ इत्यादि ।

आश्वलायनगृह्ये ( ४।८।१२-१३ ) ‘भुक्तवत्स्वनाचान्तेषु पिण्डान्निदध्यादाचान्तेषु

इत्येके’ इति । कात्यायनोऽपि कृतगणदूषेषु सम्यगाचान्तेषु ब्राह्मणेषु पिण्डदान- २५

मुक्त्वाऽह ‘अनाचान्तेषु इत्येके’ इति । केचित्तु ‘भुक्तवत्स्वनाचान्तेष्वेव विकिरं दत्वा स्वधां

वाचयित्वा पिण्डदानं कुर्वन्ति’ । तथा च शङ्खलिखितौ ‘गायत्रीं समनुश्राव्य तृप्तान्

ज्ञात्वा स्वदितमिति पृष्ट्वा शेषमन्नमनुज्ञाप्य कृतादन्नाद्विकिरं कुर्यात्स्वधां वाचयित्वा विष्टरां-

स्त्रीन्निदध्यात्’ इत्यादि । विष्टराः पिण्डाधस्तना दर्भाः । बृहस्पतिना ‘आचान्तेषु पिण्डदान-

मनाचान्तेषु विकिरः’ इत्युक्तम् । आचान्तेष्वपि कुर्वाणाः केचित् अभिरमणानुज्ञावचनस्वधा- ३०

वाचनादिपदार्थमकृत्वैव पिण्डदानं कुर्वन्ति । एतदुत्तरकालतां त्वाह यमः

“आचान्तांश्चानुजानीयादमिवाद्य कृताञ्जलिः । भवन्तो रमन्तामत्र ज्ञात्वाऽनुज्ञातलक्षणम् ॥

“स्वधेति च प्रवक्तव्यं प्रयिन्तां पितरस्तथा । अक्षय्यमन्नदानं तु वाच्यं प्रीतैर्द्विजातिभिः ॥



“ ततो निर्वपणं कुर्यात्पिण्डानां तदनन्तरम् ” ॥ इति ।

हारीतस्तु ‘ वाजेवाजेत्यनुव्रज्येत्यन्तं भोजनोत्तरं तत्तद्भुक्कहविःशेषस्य पिण्डान् पिण्डपितृयज्ञवन्निदध्यात् ’ इत्याह । एते च पिण्डदानकालाः स्वस्वगृह्यानुसारेण व्यवस्थिता ज्ञेयाः । भोजनात्पूर्वकालोत्तरकालत्वयोर्यवस्थामाह लौगाक्षिः

५ “ अप्रशस्तेषु यागेषु पूर्वं पिण्डावनेजनम् । भोजनस्य प्रशस्ते तु पश्चादेवोपकल्पयेत् ” ॥

अप्रशस्तेषु सपिण्डीकरणपूर्ववर्तिषु प्रेतश्राद्धेषु । अवनेजनम् अवाचीनपाणिना निर्वपणम् इति स्मृतिचन्द्रिकाकारः । अवनेजनं दानम् इति हेमाद्रिः । प्रशस्तं सपिण्डीकरणादिश्राद्धम् । इयं व्यवस्था केषांचिदेव । मन्वादिस्मृतिषु मत्स्यादिपुराणेषु च भोजनपूर्वकालतैवोक्ता । स्वगृहे विशेषानुक्तौ तु ‘ आचान्तेष्वेके ’ इति पक्षो ग्रहीतुं न्याय्यः ॥

१० अथ पिण्डदानदेशः । देवलः

“ हुत्त्वैवमग्निं पिण्डानां सन्निधौ तदनन्तरम् । पक्वान्नेन बलिं तेभ्यः पिण्डेभ्यो दापयेद्भिजः ” ॥

अत्राग्नौ होमस्य पिण्डसन्निधानं वदताऽर्थात्पिण्डदानमभ्यग्निसन्निधौ कृतं भवति इति हेमाद्रिः । अग्न्यन्तराभावे तु याज्ञवल्क्यादिवचनेभ्य उच्छिष्टसन्निधौ पिण्डान्दद्यात् । अत्र विशेषमाह व्यासः

१५ “ अरतिमात्रमुत्सृज्य पिण्डांस्तत्र प्रदापयेत् । यत्रोपस्पृशतां वाऽपि प्राप्नुवन्ति न बिन्दवः ” ॥

पारस्करः “ विप्राणां बाहुमात्रेण पिण्डदानं विधीयते ” ॥ ‘ पात्राणाम् ’ इति वा पाठः ।

अत्रिः “ पितृणामासनस्थानादग्रतस्त्रिध्वरतिषु । उच्छिष्टसन्निधानं तन्नोच्छिष्टासनसन्निधौ ” ॥

जातूकर्ण्यः “ व्याममात्रं समुत्सृज्य तत्र पिण्डान्प्रदापयेत् ” ॥

ब्राह्मणभोजनात्पूर्वकालप्रदेयान्पिण्डान् प्रस्तुत्य देशविशेषमाह देवलः

२० “ अभ्यज्य मधुसर्पिभ्यां तान्वपेत्कुशसञ्चये । छायायां हस्तिनश्चैव हस्तदौहित्रसन्निधौ ” ॥

‘ श्राद्धसन्निधौ हस्तिनश्चैव तच्छायायां दौहित्राद्धस्तायन्तरालदेशे वा ’ इत्यर्थः । देवलः

“ अथ संगृह्य कलशं सदर्मं पूर्णमम्भसा । पुरस्तादुपविश्यैषां पिण्डावापं निवेदयेत् ॥

“ ततस्तैरभ्यनुज्ञातो दक्षिणां दिशमेत्य सः ” ॥

कलशसङ्ग्रहस्तु ‘ ततः पानीयकुम्भेन तर्पयेत्प्रथमतः पितृन् ’ इत्यादिना कलशेनैव येषां

२५ कृत्यं विहितं तेषामेवान्येषां त्ववनेजनादिकं श्राद्धीयेनैवोदकेन ।

अत एव तत्सङ्ग्रहमन्तरेणाह शालङ्कायनः

“ पिण्डावापमनुज्ञाप्य यतवाकायमानसः । सतिलेन ततोऽग्नेन पिण्डान्सर्वेण निर्वपेत् ” ॥

अथ पिण्डदानस्थानकल्पना । देवलः ।

“ उपलिप्ते शुचौ देशे स्थानं कुर्वीत सैकतम् । मण्डलं चतुरस्रं वा दक्षिणावनतं महत् ” ॥

३० एतच्च सैकतस्थानकरणं केषांचिदेव । अत एव ‘ उपलिप्ते महीपृष्ठे ’ इति मत्स्यपुराणे

महीपृष्ठमेव पिण्डाधारत्वेन विहितम् । देवलः ‘ एकदर्भेण तन्मध्यमुल्लिखेत्त्रिंशत् तं त्यजेत् ’ ।

तन्मध्यं मण्डलमध्यम् ‘ त्रिः ’ इति मातृमातामहादीनां पिण्डदानपक्षे । अन्यथा सकृदेव ।

“ कण्ठनं पेषणं चैव तथैवोल्लेखनक्रिया । सकृदेव पितृणां स्याद्देवानां तदनन्तरम् ” ॥

इति ब्रह्माण्डपुराणात् । एतच्च स्फ्ये । स्फ्याभावे ‘ वज्रेण वा कुशैर्वाऽपि उल्लिखेत



महीं द्विजः ' इति ब्रह्माण्डपुराणात् । वज्रः स्फ्यः । ' वज्रो वै स्फ्यः ' इति श्रुतेः । तत्रव  
 ' सव्योत्तराभ्यां पाणिभ्यां कुर्यादुल्लेखनं द्विजः ' । सव्यः वामः उत्तरः ययोस्तौ सव्योत्तरौ ।  
 एतच्च सर्वमाग्नेयीदिगभिमुखम् । आश्वलायनेन दक्षिणप्राचीं प्रस्तुत्य ' सर्वकर्माणि तां दिशम् '  
 इत्युक्तत्वात् । ' दक्षिणा दिक् पितृणाम् ' इति श्रुतेः । दक्षिणा दिगपि विकल्पेन । कर्त्ताऽपि  
 सौकर्यादाग्नेय्यभिमुखो दक्षिणाभिमुखो वा । लेखाकरणे मन्त्र उक्तो ब्रह्मपुराणे

५

“ निहन्मि सर्वं यदमेध्यमत्र हताश्च सर्वेऽसुरदानवा मया ।

“ रक्षांसि यक्षाश्च पिशाचसङ्घावा हता मया यातुधानाश्च सर्वे ” ॥

“ एतेन मन्त्रेण सुसंयतात्मा दर्भेण वेदिं विलिखेत्त्रिः ' इति । पिण्डपितृयज्ञे कात्यायनः

‘ दक्षिणेनोल्लिखत्यपहता इत्यपरेण वा ' अग्न्यपेक्षया दक्षिणत्वमपरत्वं च । उल्लिख्य चाभ्युक्षणम् ।

“ तामभ्युक्ष्य ' इत्याश्वलायनवचनात् । उल्लिख्योल्मुकनिधानमाह कात्यायनः

१०

‘ उल्मुकं परस्तात्करोति ये रूपाणि ' इति । आश्वलायनः ' सकृदाच्छिन्नैरवस्तीर्य ' इति ।

‘ अथ सकृदाच्छिन्नान्युपमूलं दितानि भवन्ति ' इति शतपथे । ' यत्समूलं तत्पितृणाम् '  
 इति तु तैत्तिरीये ।

यमः “ विष्टरांस्त्रीन्वपेत्तत्र नामगोत्रसमन्वितान् । अद्भिरभ्युक्ष्य विधिवत्तिलैरभ्यवकीर्य च ” ॥

नामगोत्रसमन्वितान् ‘ अमुकगोत्रस्यास्मत्पितुरमुकशर्मणोऽयं विष्टरः ' इत्युच्चारणपूर्वमित्यर्थः ।

१५

दर्भास्तरणानन्तरमाह देवलः

“ अथ साञ्जलिरुत्थाय स्थित्वा चावाहयेत्पितृन् । पितरो मे प्रसीदन्तु प्रयान्तु च पितामहाः ॥

“ इति संकीर्तयंस्तूष्णीं तिष्ठेत्क्षणमनुश्वसन् । आवाहयित्वा दर्भाग्रैस्तेषां स्थानानि कल्पयेत् ॥

“ तेष्वासीनेषु पात्रेण प्रयच्छेन्मार्जानोदकम् । प्रक्षाल्य विक्रिरेत्तत्र नानावर्णांस्तिलानपि ” ॥ इति ।

दर्भास्तरणानन्तरमाह सुमन्तुः

२०

“ असाववनेनिक्षेवेति पुरुषं पुरुषं प्रति । त्रिस्त्रिरेकेन हस्तेन विदधीतावनेजनम् ” ॥

असाविति गोत्रनाम्नामपि ग्रहणम् ।

“ पिण्डोदकप्रदानं तु नित्यनैमित्तिकेष्वपि । आलप्य नामगोत्रेण कर्तव्यं सर्वदैव हि ” ॥

इति व्यासोक्तेः । कात्यायनेन तु बहिस्तरणात्पूर्वमवनेजनमुक्तम् । अनयोर्विकल्पो

यथाशाखं व्यवस्था वा । इदं चोदकं सतिलमित्याहोशना ' तिलोन्मिश्रेणोदकेनासिच्य ' इति ।

२५

मार्कण्डेयपुराणे “ पितृतीर्थेन तोयं च दद्यात्तेभ्यः समाहितः ” ॥ इति ।

कात्यायनशाखायनगोभिलादिभिस्तु अवनेजनार्थमुदकपात्रमुक्तम् । षट्त्रिंशन्मते

“ सव्यं जानु निपात्यैव भूमौ पिण्डान्प्रयत्नतः । निर्वपेत्पितृतीर्थेन स्वधाकारमुदाहरन् ” ॥

मरीचिः

“ पात्राणां खट्वापात्रेण पिण्डादानं विधीयते । राजतौदुम्बराभ्यां वा हस्तेनैवाथवा पुनः ” ॥ इति ।

३०

खट्वाख्यश्वापदविशेषललाटास्थिसंभवपात्रं खट्वापात्रम् । औदुम्बरं ताग्रमयम् । सव्यपाणिसंयोजनं

शङ्खलिखिताभ्यामुक्तम् “ पिण्डान्निदध्यात्सव्येन पाणिना दक्षिणं पाणिमुपसंयोज्येति ” ।

देवलः ‘ अपसव्यमपाङ्गुष्ठम् ' इति । ब्रह्माण्डपुराणे “ उत्तानेन तु हस्तेन निर्वपेद्दक्षिणा-

मुखः ” । इति ॥

पितृतीर्थावनमनं चाहापस्तम्बः 'सव्यं जान्वाच्यावाचीनपाणिः' इति । उत्तान एवाधरीकृतपितृतीर्थः पाणिरवाचीनः । अवाचीनमेव पराचीनशब्देनाहाश्वलायनः 'तस्यां पिण्डान्निपूणीयात्पराचीनपाणिः' इति । अग्नौकरणात्पूर्वं पिण्डदानपक्षे तदर्थेन चरुणा पिण्डाः 'ततश्चरुमुपादाय सपवित्रेण पाणिना' इत्यादिना देवलेनोक्ताः । अग्नौकरणोत्तरमिति

५ पक्षे तु तच्छेषादित्याह मनुः ( ३१२१५ )

"त्रीस्तु तस्माद्भविःशेषात्पिण्डान् कृत्वा समाहितः । ओदनेनैर्वै विधिना निर्वपेद्दक्षिणामुखः"॥इति ।

भोजनोत्तरकालीने तु कात्यायनः 'सर्वमन्नमेकत उद्धृत्य' इति । सर्वशब्दः प्रकृतान्न-जातिसर्वत्वार्थः । इदं चाग्नौकरणशेषेण मिश्रणीयमित्याहाश्वलायनः 'यद्यदन्नमुपभुक्तं तत्तत्स्थालीपाकेन सह पिण्डार्थमुद्धृत्य पिण्डान्निदध्यात्' इति । यत्तु पठन्ति

१० "माषाः सर्वत्र वै ग्राह्या न ग्राह्यास्त्वग्निपिण्डयोः । ब्राह्मणेषु यथा मद्यं तथा माषोऽग्निपिण्डयोः"॥इति । तन्निर्मूलम् । तेन माषा अपि ग्राह्या एव इति । वायुपुराणे "मधुसर्पिस्तिलयुतान् त्रीन् पिण्डान्निर्वपेद्बुधः" । नात्र मध्वादित्रयनियमः क्रियते । किंवातिशय एव । अत एव तिल-मधुद्वययुक्तता बृहस्पतिनोक्ता "सर्वस्मात्प्रकृतादन्नापिण्डान्मधुतिलान्वितान्" ॥ इति । तिलमात्रयुक्तता तु 'सर्वमन्नमुपादाय सतिलं दक्षिणामुखः' इति याज्ञवल्क्येनोक्ता (आ. २४२) ।

१५ तेन त्रयं न नियतमिति केचित् । वस्तुतस्तु त्रयनियमेऽपि कलौ मधु न देयम् ।

"अक्षता गोपशुश्रूव श्राद्धे मांसं तथा मधु । देवराच्च सुतोत्पत्तिः कलौ पञ्च विवर्जयेत्" ॥ इति श्राद्धदीपकलिकायां निगमोक्तेः ।

अथ पिण्डपरिमाणम् । व्यासः

"द्विहायनस्य वत्सस्य विशत्यास्यं यथासुखम् । तथा कुर्यात्प्रमाणं तु पिण्डानां व्यासभाषितम्" ॥

२० द्विहायनः द्विवर्षः । ब्रह्माण्डपुराणे "त्रीन्पिण्डानानुपूर्व्येण साङ्गुष्ठमुष्टिवर्द्धनात्" ॥ मुष्टौ निवेशिते पिण्डे यथासाङ्गुष्ठमुष्टिवृद्धिर्भवतीत्यर्थः । अङ्गिराः

"कपित्थबिल्वमात्रान्वा पिण्डान्दद्यात्समाहितः । कुक्कुटाण्डप्रमाणान्वा यदि वाऽऽमलकैः समान्" ॥

"नदरेण समान्वाऽपि दद्याच्छ्रद्धासमन्वितः" ॥ इति ।

एषां च शक्तिभेदेन व्यवस्था । व्यवस्थायुक्तानि परिमाणान्याह मरीचिः

२५ "आर्द्रामलकमात्रांस्तु पिण्डान्कुर्वीत पार्वणे । एकोद्दिष्टे बिल्वमात्रं पिण्डमेकं तु कारयेत् ॥

"नवश्राद्धे स्थूलतरं तस्मादपि तु निर्वपेत् । तस्मादपि स्थूलतरमाशौचे प्रतिवासरम्" ॥

अत्राऽऽमलकमात्रनेव पार्वणे इति न नियमः । किंतु आमलकमात्रान्पार्वण एवेति । अतश्चाधिक-परिमाणपिण्डाचारो न विरुध्यते । नवश्राद्धं च स्मृत्यन्तरे

"प्रथमेऽह्नि तृतीयेऽह्नि पञ्चमे सप्तमे तथा । नवमैकादशे चैव तन्नवश्राद्धमुच्यते" ॥ इति ।

३० मैत्रायणीये त्रयाणां यथोत्तरं परिमाणाधिक्यमुक्तम् । पितामहस्य नाम्ना स्थवीयांसं मध्यमम् । प्रपितामहस्य नाम्ना स्थविष्ठं दक्षिणमिति । आवाहनादिपिण्डदानान्तं कर्मोक्त्वाऽऽह याज्ञवल्क्यः । (आ. २४३) "मातामहानामप्येवं दद्यादाचमनं ततः" ॥ एवमित्युक्तवक्ष्यमाणपदार्थातिदेशः । पितृमातामहपार्वण्योश्चैकप्रयोगविधिपरिग्रहात्सहक्रियमाणयोर्मिथः प्रत्यासत्त्यनुग्रहाय पदार्थानामेवानुसमयो न काण्डयोः ।

अनन्तरकृत्यमाह स एव ( आ. २४३ ) “ स्वस्तिवाच्यं ततः कुर्यादक्षय्योदकमेव च ” । इति  
सह सर्ववर्गमन्नमुपादायाग्निसन्निधौ पिण्डान् दद्यात् । तदभावे ब्राह्मणार्थं सार्ववाणिक-  
मन्नमुपादायोच्छिष्टसन्निधौ पिण्डपितृयज्ञकल्पेन पिण्डान् दद्यात् । मातामहानामप्येवमेव वैश्वदेवा-  
वाहनादिप्रदानान्तं कर्म कृत्वा ब्राह्मणानामाचमनं दद्यात् । ततः ‘ स्वस्तीति ब्रूत ’ इति ब्राह्मणान्  
स्वस्ति वाचयेत् । तैश्च ‘ स्वस्ति ’ इत्युक्ते ‘ अक्षय्यमस्त्विति ब्रूत ’ इति ब्राह्मणहस्ते- ५  
षूदकदानं कुर्यात् । ‘ अस्त्वक्षय्यम् ’ इति ते ब्रूयुरित्यर्थः ।

अथ दक्षिणादानम् । तद्विविधम् । विप्रोद्देश्यकं पितृद्देश्यकं च । आद्यमाह देवलः  
“ आचान्तेभ्यो द्विजेभ्यस्तु प्रदद्यादथ दक्षिणाम् ” ॥ इति ।

द्वितीयमाह पारस्करः ‘ हिरण्यं विश्वेभ्यो देवेभ्यो रजतं पितृभ्यः ’ इति । तत्रार्थं  
सव्येन । तथा च जमदग्निः ‘ अपसव्यं कर्म सर्वं दक्षिणादानवर्जितम् ’ इति । द्वितीयं त्वपस- १०  
व्येन । तथा च दक्षिणादानं प्रक्रम्य स एव ‘ अपसव्यं तत्रापि ’ इति । तत्रापि पित्र्य-  
दक्षिणादानेऽपीत्यर्थः । दक्षिणादाने क्रममाह देवलः “ दक्षिणां पितृविप्रेभ्यो दद्यात्पूर्वं ततो द्वयोः ” ।  
द्वयोः द्वाभ्यां वैश्वदेविकब्राह्मणाभ्यामित्यर्थः । दक्षिणा च विप्रगुणानुरोधेन विषमाऽपि देया  
“ एकपङ्क्त्युपविष्टानां विप्राणां श्राद्धकर्मणि । भक्ष्यभोज्यं समं देयं दक्षिणा त्वनुसारतः ” ॥ इति  
स्मृतेः ।

१५

दक्षिणां दत्त्वा स्वधां वाचयिष्ये इत्युक्त्वा तैर्ब्राह्मणैः ‘ वाचयताम् ’ इति प्रत्युक्तः  
‘ पित्रादिभ्यः स्वधोच्यताम् ’ इति वदेत् । ‘ अस्तु स्वधा ’ इति विप्राः । ततो भूमावुदक-  
मासिच्य ‘ विश्वे देवाः प्रीयन्ताम् ’ इति वदेत् । ‘ प्रीयन्तां विश्वे देवाः ’ इति विप्रैरुक्ते  
‘ दातारः ’ इति मन्त्रं जपेत् । पितॄणां न्युब्जं पात्रमुत्तानं कृत्वा ‘ वाजे वाजे ’ इति मन्त्रेण  
पितृपूर्वं विसर्जयेत् । तदेतत्सर्वमाह याज्ञवल्क्यः ( आ. २४४-२४८ )

२०

“ दत्त्वा तु दक्षिणां शक्यता स्वधाकारमुदाहरेत् । वाचयतामित्यनुज्ञातः प्रकृतेभ्यः स्वधोच्यताम् ॥

“ ब्रयुरस्तु स्वधेत्युक्ते भूमौ सिञ्चेत्ततो जलम् । विश्वेदेवाश्च प्रीयन्तां विप्रैश्चोक्त इदं जपेत् ॥

“ दातारो नोऽभिवर्द्धन्तां वेदाः सन्ततिरेव नः । श्रद्धा च नो मा व्यगमद्बहु देयं च नोऽस्तु ” ॥ इति ।

“ इत्युक्त्वोक्त्वा प्रिया वाचः पितृपूर्वं विसर्जयेत् । वाजे वाज इति प्रीतः पितृपूर्वं विसर्जनम् ॥

“ यस्मिंस्ते संस्रवाः पूर्वं पितृपात्रे निवेशिताः । पितृपात्रं तदुत्तानं कृत्वा विप्रान्विसर्जयेत् ॥ ” इति । २५

पिण्डप्रतिपत्तिमाह स एव ( आ. २५७ ) “ पिण्डांस्तु गोजविप्रेभ्यो दद्याद्द्रौ जलेऽपि वा ” ।

पत्न्याः पुत्रकामनायां तु वायुपुराणे “ पत्न्यै प्रजार्थी दद्यात्तु मध्यमं मन्त्रपूर्वकम् ” ॥ इति ।

मन्त्रस्तु मत्स्यपुराणे “ आधत्त पितरो गर्भं मन्त्रं सन्तानवर्द्धनः ” ॥ इति ।

मध्यमपिण्डप्राशनं च केवलं काम्यमेव न नित्यमिति द्वैतनिर्णये तातचरणाः । इतरपिण्ड-  
द्वयं कामनाभावे त्रयमपि गवदौ प्रतिपाद्यम् । बृहस्पतिः

३०

“ अन्यदेशगता पत्नी गर्भिणी रोमिणी तथा । तदा तं जीर्णवृषभश्छागो वा भोक्तुमर्हति ” ॥

तीर्थश्राद्धे प्रतिपत्यन्तरं विष्णुधर्मोत्तरे

“ तीर्थश्राद्धे सदा पिण्डान्क्षिपेत्तीर्थं समाहितः । दक्षिणाभिमुखो भूत्वा पित्र्यादिक् सा प्रकीर्तिता ” ॥ इति ।

उच्छिष्टमार्जने विशेषमाह याज्ञवल्क्यः “ सत्सु विप्रेषु सर्वेषु द्विजोच्छिष्टं न मार्जयेत् ” । इति ।

सस्त्विति अपराहृतोपलक्षणार्थम्

“भृत्यवर्गवृत्तो भुक्ते हव्यं कव्यं स्वगोत्रजैः । आसायं श्राद्धशालायां द्विजोच्छिष्टं न मार्जयेत्” ॥

इति प्रचेतोवचनात् । मात्स्ये

“ततश्च वैश्वदेवान्ते समृत्यः सहबान्धवः । भुञ्जीतातिथिसंयुक्तः सर्वपितृनिषेवितम्” ॥ इति ।

५ श्राद्धशेषभोजनं तु दिवैव कार्यमित्याह जातूकर्ण्यः

“अहन्येव तु भोक्तव्यं कृते श्राद्धे द्विजन्मभिः । अन्यथा ह्यासुरं श्राद्धं परपाके च सेविते” ॥

देवलः

“श्राद्धं कृत्वा तु यो भुक्ते न भुक्तेऽथ कदाचन । देवा हव्यं न गृह्णन्ति कव्यानि पितरस्तथा” ॥

तद्दिने नित्योपवासप्राप्तौ तु श्राद्धशेषावप्राणमेवेत्युक्तं समयमयूखे ।

१०

अर्थ प्रयोगः ।

तत्र कर्ता पूर्वेषुः सद्यो वाऽऽचम्य प्राणानायम्य मासपक्षाद्युल्लिख्य प्राचीनावीती सव्यं जान्वाच्यं अस्मत्पितृपितामहप्रपितामहानां मातामहप्रमातामहवृद्धप्रमातामहानां वाऽमुकामुक-  
शर्मणाममुकगोत्राणां वसुरुद्रादित्यस्वरूपाणां सपत्नीकानां सदैवं सपिण्डमपिण्डं वा पार्ष्णविधिना  
श्वोऽथ वा दर्शश्राद्धमहं करिष्ये’ इति संकल्पयेत् । क्षयाहे अपत्नीकानां पित्रादीनामेव ।

१५ महालये तु यथासंभवं सर्वेषामिति विशेषः । ततः कर्ता दक्षिणं जान्वाच्योपवीत्युदङ्मुखोऽस्म-  
त्पित्रादीनां दर्शश्राद्धादौ विश्वेदेवस्थाने त्वामहं निमन्त्रये इत्येकं द्वौ चतुरो वा प्राङ्मुखान्  
ब्राह्मणान् प्रत्येकं दक्षिणं जानुं स्पृष्ट्वा निमन्त्रये दैवे क्षणः क्रियतामिति ब्रूयात् । ॐ तथेतीतरः  
प्रतिब्रूयात् । ततः कर्ता ‘प्राप्नोतु भवान्’ इति ब्रूयात् । ‘प्राप्नवानि’ इतीतरः । ततः कर्ता  
दक्षिणामुखः सव्यं दक्षिणं वा जान्वाच्यं प्राचीनावीती ‘अस्मिन् दर्शश्राद्धादावस्मत्पितुरमुक-

२० शर्मणोऽमुकगोत्रस्य वसरूपस्य सपत्नीकस्य स्थाने ’ त्वामहं निमन्त्रये इत्युदङ्मुखमेकं त्रीन् नव  
वा ब्राह्मणान् प्रत्येकं सव्यं दक्षिणं वा जानुं स्पृष्ट्वा निमन्त्रयेत् । एवं ‘पितामहस्य रुद्ररूपस्य  
प्रपितामहस्यादित्यरूपस्य’ इति । एवमेव मातामहादीनपि प्रत्येकं निमन्त्रयेत् । ततः ‘पित्र्ये  
क्षणः क्रियताम्’ इति वदेत् । ‘ॐ तथा’ इत्यादि पूर्ववत् । ततः कर्तोपवीती

“अक्रोधनैः शौचपरैः सततं ब्रह्मचारिभिः । भवितव्यं भवद्भिश्च मया च श्राद्धकारिणा ॥

२५ “सर्वायासविनिर्मुक्तैः कामक्रोधविवर्जितैः । भवितव्यं भवद्भिर्नः श्वो भूते श्राद्धकर्मणि” ॥ इति

भवद्भिर्नोऽद्यत इति वा तात् श्रावयेत् । ततो द्विराचम्य पवित्रं धृत्वा सौवर्णराजतसङ्का-  
कुलीयानि वाऽनामिकातर्जनीकनिष्ठिकासु धृत्वा संकल्पपूर्वं श्राद्धाधिकारसिद्ध्यर्थं सहस्रशीर्षेत्यादि-  
पवित्रमन्त्रान् जपित्वा द्विराचम्य विप्राग्रतो ब्रह्मदण्डार्थं सतिलं हिरण्यं कुशं वा निक्षिप्य

“समस्तसम्पत्समवाप्तिहेतवः समुत्थितापत्कुलधूमकेतवः ।

३० “अपारसंसारसमुद्रसेतवः पुनन्तु मां ब्राह्मणपादपांसवः ॥

“आपद्धनध्वान्तसहस्रभानवः समीहितार्थार्पणकामधेनवः ।

“समस्ततीर्थाम्बुपवित्रमूर्तयो रक्षन्तु मां ब्राह्मणपादपांसवः ॥

“विप्रौघदर्शनात्क्षिप्रं क्षीयन्ते पापराशयः । दर्शनान्मङ्गलावाप्तिरर्चनादच्युतं पदम्” ॥

इति तात् स्तुत्वा प्राचीनावीती ‘अमुकश्राद्धं कर्तुं ममाधिकारसम्पदस्तु’ इति भवन्तो

ब्रुवन्तु ' इति तान्संप्राथ्य ' तथास्तु ' इति तैरनुज्ञातो यज्ञोपवीती तिथ्यादि संकीर्त्य दक्षिणा-  
मुखः प्राचीनावीती सव्यं जान्वाच्य तिलान् गृहीत्वाऽस्मत्पित्रादीनां मातामहादीनां च पूर्वोप-  
क्रांतं श्राद्धं युष्मदनुज्ञया करिष्य' इति संकल्प्य ' कुरुष्व ' इति तैरनुज्ञातो ब्राह्मणान्  
' स्वागतम् ' इति दृष्ट्वा तैः ' सुस्वागतम् ' इति प्रत्युक्त उपवीती

“ आगच्छन्तु महाभागा विश्वे देवा महाबलाः । ये अत्र विहिताः श्राद्धे सावधाना भवन्तु ते ” ॥ ५  
इति वैश्वदेविकद्विजान्संप्राथ्य प्राचीनावीती

“ ये मयाऽऽमाचिताः पूर्वं पितरो मातृपक्षजाः । आश्रित्य पितृकार्येषु सावधाना भवन्तु ते ” ॥

इति पितृद्विजान् संप्राथ्योपवीती सर्वान्प्रदक्षिणीकृत्यैकस्मिन्नर्धपात्रे चन्दनयवकुसुमोदकं  
सम्भृत्य ' अर्घ्यमेनम् ' इति सकृत्पठित्वा द्विजपादयोर्निमन्त्रणक्रमेणार्घ्यं निनीयोदङ्मुखो  
द्विराचामेत । ततः श्राद्धपूर्वदेशे दैवे द्विहस्तं दीर्घचतुरस्रमुदकप्लवं मण्डलं गोमूत्रगोमयाभ्यां १०  
कृत्वा तत्र यवान् प्रागग्रं कुशद्वयं च निक्षिप्य तद्वक्षिणतः षडङ्गुलं विहाय प्राचीनावीती पितृर्थं  
चतुर्हस्तं समचतुरस्रं दक्षिणाप्लवं मण्डलं गोमूत्रगोमयाभ्यामेव कृत्वा तिलान्दक्षिणाग्रं कुशत्रयं च  
निक्षिप्योपवीती पितृदैवमण्डलात्पूर्वं प्रत्यङ्मुख उपविश्य देवतार्थब्राह्मणमेकैकं प्राङ्मुखमुपवेश्य  
पवित्रकरो निमन्त्रणक्रमेण गन्धपुष्पयवकुशमिश्रं जलाञ्जलिं “ विश्वेभ्यो देवेभ्य इदं पाद्यम् '  
इत्युक्त्वा ' शन्नो देवीः ' इति मन्त्रान्ते देवतीर्थेन ब्राह्मणपादयोर्निनीयाभिवन्द्य पवित्रं विस्रस्यान्य- १५  
जलेन पादौ प्रक्षाल्य दक्षिणपादादिमुद्धन्तं गन्धपुष्पाक्षतैः ' सहस्रशीर्षा ' इति संपूज्य  
साक्षतगन्धपुष्पकुशजलपूर्णपात्रेण ' विश्वेदेवा एष वोऽर्घ्य ' इत्यर्घ्यं निवेदयेत् । एव-  
मितरत्र कृत्वा ब्राह्मणान् द्विराचमय्य स्वयं पवित्रे धृत्वा सकृदाचम्य प्राचीनावीती दक्षिणामुखो  
विप्रानुदङ्मुखानुपवेश्य द्विगुणभुग्नकुशतिलगन्धपुष्पमिश्रं जलाञ्जलिं ' अस्मत्पितरोऽमुकशर्माणो-  
ऽमुकगोत्रा वसुरूपा इदं वः पाद्यम् ' इत्युक्त्वा ' शन्नो देवीः ' इति मन्त्रेण पितृर्थब्राह्मण- २०  
पादयोः पितृतीर्थेन निषिच्याभिवन्द्यान्यजलेन पादौ प्रक्षाल्य शिरःप्रभृतिपादान्तं वामाङ्गपूर्वकं  
' पितृभ्यः स्वधायिभ्यः ' इति तिलचन्दनपुष्पैरभ्यर्च्य ' अस्मत्पितरोऽमुकशर्माणोऽमुकगोत्रा  
वसुरूपा एष वोऽर्घ्यः ' इत्युक्त्वा सतिलगन्धपुष्पकुशजलपूर्णपात्रेणार्घ्यं ब्राह्मणपादयोर्निनीयेत् ।  
एवमस्मत्पितामहा रुद्ररूपाः प्रपितामहा आदित्यरूपा इत्युक्त्वा प्रत्येकं पाद्याद्यर्धान्तं कृत्वा  
मातामहादीनामपि तथैव कुर्यात् । ततस्तात् द्विराचमय्य स्वयं च पवित्रपाणिर्दक्षिणामुखो २५  
द्विराचम्य द्विजान् भोजनस्थले नीत्वा प्राचीनावीती ' अमुकश्राद्धसिद्धिरस्तु ' इति भवन्तो  
ब्रुवन्तु इत्युक्त्वा ' अस्त्वमुकश्राद्धसिद्धिः ' इति तैः प्रत्युक्त आसनान्युपकल्प्योपवीती प्रागग्रयुग्म-  
कुशयवसाहितवस्त्राद्यासनं सव्यहस्तेन स्पृष्ट्वा वैश्वदेविकब्राह्मणदक्षिणहस्तं निरङ्गुष्ठं धृत्वा  
प्राङ्मुखं ' ॐ भूर्भुवः स्वः यूयं समाध्वम् ' इति उपवेश्य ' ॐ सुसमासमे ' इति प्रत्युक्तोऽपर-  
मप्येवमुपवेश्य प्राचीनावीती दक्षिणाग्रयुग्मकुशतिलयुक्तासने तथैव पित्रादिब्राह्मणमुदङ्मुखमुप- ३०  
वेश्य तिलतैलदीपिकां प्रत्येकं शक्त्योपकल्प्योपवीती स्वासने प्राङ्मुख उपविश्य ' अपवित्रः  
पवित्रो वा ' इति त्रिषु स्मृत्वा ॐ वैष्णव्यै नमः । जयायै नमः । काश्यप्यै नमः ।

“ मेदिनी लोकमाता त्वं क्षितिरुर्वी धरा मही । भूमिः शैला शिला त्वं च स्थिरा तुभ्यं नमोऽस्तु ते ॥

“ धरणी काश्यपी क्षोणी रसा विश्वंभरा च भूः । जगत्प्रतिष्ठा वसुधा त्वं हि मातर्नमोऽस्तु ते ॥



- “ वैष्णवी भूतदेवी च पृथिवि त्वां नमोऽस्तु ते ” ॥ इति पृथिवीं स्तुत्वा श्राद्धदेशं गयात्मकत्वेन तत्स्थं च गदाधरात्मकत्वेन ध्यात्वाऽऽचम्य प्राचीनावीती वैष्णवं मन्त्रं गायत्रीं प्रणवं ‘ मधुवाता ’ इति तृचं जप्त्वापवीत्याचम्य प्राणनायम्य तिथ्यादि संकीर्त्य प्राचीनावीतिना ‘ प्रक्रान्तं श्राद्धकर्म युष्मदनुज्ञयाऽहं करिष्ये ’ इति संकल्प्य ‘ कुंरुष्व ’ इति तैरनुज्ञातः ‘ सप्तव्याधाः ’ इति श्लोकद्वयं ‘ देवताभ्य ’ इति सप्ताचर्मन्त्रं ‘ चतुर्भिश्च ’ इति ‘ यस्य स्मृत्या ’ इति च पठित्वा ‘ निहन्मि ’ इति नीवीं बद्ध्वा ‘ अपहता ’ इत्यप्रदक्षिणं सर्वतस्तिलैः सर्षपैश्चावकीर्य ‘ तिला रक्षन्तु ’ इति तिलकुशान्द्वारदेशे क्षिप्त्वा ‘ निहन्मि ’ इति ‘ अपहता ’ इति च प्रदक्षिणं दिक्षु विदिक्षु च दक्षिणसंस्थं परितस्तिलैरवकीर्य ‘ यद्देवा ’ इति तूचेन जलमभिमन्त्र्य तेन पाकमुपहारांश्च प्रोक्ष्य ‘ सर्वे पाकाः शुचयः श्राद्धयोग्या
- १० भवन्तु दुष्टदृष्टिदोषाद्युपहतिर्नश्यत्पहाराणां च पवित्रताऽस्तु ’ इत्युक्तोपवीत्युदङ्मुखो वैश्वदेविक-विप्रसन्निधौ दक्षिणं जान्वाच्य तद्दक्षिणहस्तं सव्येन धृत्वा दक्षिणहस्तेन यवजलयुक्तमृजुदम-द्वयमादाय ‘ विश्वेषां देवानां विश्वेभ्यो देवेभ्य ’ इति वोक्त्वा ‘ इदमासनम् ’ इत्युच्चार्य तद्धस्ते तदुदकमासिच्य तद्दक्षिणतः प्रागग्रं कुशद्वयं प्रक्षिप्य ‘ स्वासनम् ’ इत्युक्त्वा तेन ‘ धर्मोऽस्मि विशि राजा प्रतिष्ठितः ’ इति मनसैवासने प्रतिगृहीते पुनस्तद्धस्तेऽप्यो दत्त्वा सदर्भेण दक्षिणहस्तेन निरङ्गुष्ठं
- १५ त्रिप्रदक्षिणहस्तं धृत्वा ‘ पुरुरवार्षवसंज्ञकविश्वदेवस्थाने क्षणः क्रियताम् ’ इत्युक्त्वा ‘ ॐ तथा ’ इति तेनोक्तः ‘ प्राप्नोतु भवान् ’ इत्युक्त्वा ‘ प्राप्नवानीति ’ तेनोक्त इतरत्रायेवमुदक्संस्थं कृत्वाऽप्यो दद्यात् । ततः प्राचीनावीती दक्षिणामुखः सव्यं जान्वाच्यायुग्मानं सजलतिलान् द्विगुणभुग्नान्कुशानादाय ‘ अस्मत्पितृणाममुकशर्मणाममुकगोत्राणां वसुरूपाणां सपत्नीकानामिदमासनम् ’ इति सव्यहस्तधृते द्विजदक्षिणहस्ते तज्जलमासिच्य द्विजवामभागे दक्षिणाग्राक्षिप्य ‘ स्वासनम् ’ इति प्रत्युक्ते ‘ आस्य-ताम् ’ इत्युक्त्वा तेन ‘ धर्मोऽस्मि विशि राजा प्रतिष्ठितः ’ इति मनसैवाऽऽसने प्रतिगृहीते । एवं यथालिङ्गं सर्वत्र कृत्वा क्रमेणाऽप्यो दत्त्वा सकुशेन दक्षिणहस्तेन विप्रदक्षिणाङ्गुष्ठमेव गृहीत्वा ‘ अमुकश्राद्धे क्षणः क्रियताम् ’ इत्यादि सर्वत्र कृत्वाऽप्यो दद्यात् । एवं मातामहब्राह्मणानामपि । तत उपवीत्युदङ्मुखः कुशयवपुष्पाण्यादाय तिष्ठन् ‘ आगच्छन्तु महाभागा विश्वदेवाः ’ इत्यादि पठित्वा वैश्वदेवविप्रदक्षिणहस्तं निरङ्गुष्ठं धृत्वा ‘ विश्वान्देवान्भवत्स्वाहायिष्ये ’
- २५ इति पृष्ट्वा ‘ आवाहय ’ इत्यनुज्ञाते ‘ विश्वे देवास ’ इत्यनया सकृत्सर्वत्रावाह्य विप्रदक्षिण-जानुं वामहस्तेन संगृह्य दक्षिणपादादिमूर्द्धान्तं प्रदक्षिणमग्रे यवान् कुशांश्च विकीर्य ‘ विश्वे देवाः शृणुतेमम् ’ इति सकृज्जपेत् । कर्कस्तु तिलैरेव देवावाहनमिच्छति प्रकरणाद्यनुगृहात् इति । ततः प्राचीनावीती दक्षिणामुखोऽपः प्रदाय तिलान् द्विगुणकुशानादाय ‘ अस्मत्पितृन् पिता-महान् प्रपितामहानमुकशर्मणोऽमुकगोत्रान् वसुरुद्रादित्यरूपान् भवत्स्वावाहायिष्ये ’ इति पृष्ट्वा
- ३० ‘ आवाहय ’ इत्यनुज्ञातः ‘ उशन्तस्त्वा ’ इत्यावाह्य विप्रवामजानुं संगृह्य मूर्धादिदक्षिणपादान्तं दक्षिणसंस्थं तिलान्विकीर्याऽप्यो दत्त्वा कृताञ्जलिः ‘ आयन्तु नः पितरः ’ इत्युपस्थायाऽप्यो दत्त्वा ‘ नमो वः पितर इषे ’ इत्यादि ‘ जीवन्त इह सन्तस्याम ’ इत्यन्तेन शिरोऽसजानुपादे-  
प्रदक्षिणमभ्यर्च्याऽप्यो दद्यात् । एवं मातामहानां ततो ‘ अपहताः ’ इति ब्राह्मणाण्यपरितो दिग्बिदिक्ष्वप्रदक्षिणं तिलान्विकीरेत् । अथोपवीती द्वेद्विजाग्रतः प्रोक्षितायां भुवि प्रागग्रौ कुशौ



निधाय तयोर्द्वे अर्घ्यपात्रे निधाय तयोर्द्वे द्वे पवित्रे निधाय प्राचीनावीती पित्रादिविप्राग्रतः प्रोक्षितभूमौ दक्षिणाग्रदग्धेषु प्रतिवर्गं त्रीणि त्रीण्यर्घ्यपात्राणि दक्षिणसंस्थान्यासाद्य तेषु च प्रत्येकं द्विगुणभुग्राणि दक्षिणाग्राणि त्रीणि त्रीणि पवित्राण्याधायोपवीती प्राङ्मुखो दैवपात्रयोः ' शन्नो देवीः ' इति प्रत्येकं शन्नोमन्त्रेण जलं देवतीर्थेनाऽऽसिच्य ' यवोसि ' इति यवान् ' गन्धद्वाराम् ' इति चन्दनं ' ॐ ओषधयः प्रति ' इति पुष्पं प्रक्षिप्य ' देवार्घ्यपात्रसम्पत्तिरस्तु ' इत्युक्त्वा ५ प्राचीनावीती पैत्रार्घ्यपात्रेषु ' शन्नो देवीः ' इति प्रत्येकं पितृतीर्थेन जलमासिच्य तेनैव ' तिलोऽसि ' इति तिलान् क्षिप्त्वा प्राग्वद्वन्धपुष्पं क्षिप्त्वा ' पैत्रार्घ्यपात्रसम्पत्तिरस्तु ' इत्युक्त्वोपवीती दैवविप्राग्रतः ' स्वाहाऽर्घ्याः ' इत्यर्घ्यपात्रे प्रत्येकं निधाय प्राचीनावीती पैत्रविप्राग्रतः ' स्वधा अर्घा ' इति तदर्घ्यपात्राणि प्रत्येकं न्यस्थोपवीत्युदङ्मुखो दैवविप्राणावपो दत्त्वा तस्मिन्प्रागग्रे अर्धस्थ- पवित्रे निधाय प्राग्वत्तदङ्गं संपूज्य हस्ताभ्यामर्घ्यपात्रमुद्धृत्य ' या दिव्याः ' इत्युक्त्वा ' विश्वे- १० देवा एष वोऽर्घ्यः ' इत्यर्घ्योदकं विप्रदक्षिणहस्ते क्षिप्त्वा पुनरपो दत्त्वाऽर्घ्यपात्रमधो निदध्यात् । ततो द्विजः ' स्वर्धः ' इत्युक्त्वा पवित्रे अर्घ्यपात्रोपरि निदध्यात् । ततः कर्ता प्राग्वदितरत्राप्यर्घ्यान्तरं दद्यात्तत्रैकविप्रपक्षेऽर्घ्यद्वयमपि तत्रैव दत्त्वा प्राचीनावीती दक्षिणामुखः पैत्रद्विजहस्तेऽपो दत्त्वा तस्मिन्नर्धस्थपवित्राणि दक्षिणाग्राण्याधाय प्राग्वन्मूर्द्धादिपादान्तं संपूज्य हस्ताभ्यामर्घ्यपात्र- मादाय ' या दिव्याः ' इत्युक्त्वा ' अस्मत्पितः अमुकशर्मन्मृकगोत्र वसुरूप सपत्नीक एष १५ तेऽर्घ्य ' इत्युक्त्वा पितृतीर्थेनार्घ्योदकं विप्रहस्ते क्षिप्त्वाऽपो दत्त्वा ' अस्मत्पितामह रुद्ररूप प्रपिता- महादित्यरूप ' इत्याद्युत्तरत्राप्येवमेवार्घ्यं दत्त्वा मातामहादीनामपि तथैव दद्यात् । वर्गद्वयेऽप्येकैक- विप्रपक्षे त्वेकैकस्थैव हस्ते त्रीन् त्रीनर्घ्यान् दद्यात् । वर्गद्वयेऽप्येकविप्रपक्षे तद्वस्त एव षडपि दद्यात् । एकैकस्यानेकविप्रपक्षेऽप्येकमेव पित्राद्यर्घ्यं तावद्विगृह्य दद्यात् ।

### संस्त्रवग्रहणम् ।

२०

अथाद्यर्घ्यपात्रे सर्वाधर्घ्यसंस्त्रवानासिच्योत्तरतः ' शुन्धन्ताम् ' इति भूमिं प्रोक्ष्य ' पितृसदनमसि ' इति दक्षिणाग्रकुशैरास्तीर्थं तत्र ' पितृभ्यः स्थानमसि ' इत्याद्यर्घ्यपात्रं दक्षिणाग्रं न्युञ्जीकृत्य गन्धपुष्पधूपदीपैस्तद्वर्च्योपवीती प्राङ्मुखो मुखमार्जनादिकां पात्रान्तरस्थापितसंस्त्रव- प्रतिपत्तिं कृत्वोदङ्मुखो दैवद्विजहस्ते अपो दत्त्वा ' गन्धद्वाराम् ' इति मन्त्रमुक्त्वा ' पुरुरवाद्रवसंज्ञका विश्वे देवा अमी गन्धा वः स्वाहा ' इति प्रतिद्विजं द्विवारं २५ चन्दनं दत्त्वा पुनरपो दत्त्वा ' ओषधयः प्रति ' इति पूर्ववत्पुष्पं दत्त्वा अपो दत्त्वा ' धूरसि ' इति धूपं दत्त्वा अपो दत्त्वा ' उद्दीप्यस्व ' इति दीपं दत्त्वा अपो दत्त्वाऽऽच्छादनं दत्त्वा अपो दत्त्वा यथाविभवमलङ्कारपादुकोपाणच्छत्रजलपात्रादीनि नाममन्त्रेण यवोदकपूर्वं पदार्थानु- समयेन दत्त्वा ' सुचन्दनं सुपुष्पम् ' इत्येवं प्रत्युक्ते ' वैश्वदेविकमर्चनं सम्पूर्णमस्तु सङ्कल्पसिद्धि- रस्तु ' इति चोक्त्वा प्राचीनावीती दक्षिणामुखः पैत्रद्विजहस्ते अपो दत्त्वा ' गन्धद्वाराम् ' ३० इति मन्त्रं पठित्वा ' अस्मत्पितरः अमुकशर्माणः अमुकगोत्रा वसुरूपाः सपत्नीका अमी गन्धा वः स्वधा ' इति ' एकवचनेन वा ' गन्धं दद्यादेवमितरत्र यथालिङ्गम् । ततः पूर्ववत् ' ओषधयः प्रति ' इति पुष्पं दत्त्वा ' धूरसि ' इति पाददेशे धूपं दत्त्वा ' उद्दीप्यस्व ' इति मुखदेशे दीपं दत्त्वा ' युवं वज्राणि ' इत्याच्छादनं दत्त्वा यथाशक्त्यलङ्कारादि नाममन्त्रेण दद्यात् । ' सुगन्धा ।

- इत्यादिप्रोक्तिः पूर्ववत् । एवं पितामहप्रपितामहमातामहानाम् । ततः कर्ता 'पिञ्चमर्चनं सम्पूर्ण-  
मस्तु सङ्कल्पसिद्धिरस्तु' इत्युक्त्वा तैः 'तथास्तु' इति प्रत्युक्ते 'चतुर्भिश्च' इति  
'यस्य स्मृत्या' इति च वदेत् । अथोपवीती वैश्वदेविकविप्रान्तिकभूमिं संशोध्य गोमयेन  
नैर्ऋतीं दिशमारभ्यैशानीपर्यन्तं प्रादक्षिण्येन चतुरस्रं चिन्हमुपलिप्य पुनस्तथैवोपलिप्य  
५ तत्र प्रागग्रं कुशयवान्निक्षिपेत् । एवमितरत्र । ततः प्राचीनावीती पितृव्यविप्रान्तिकभूमिं संशोध्य  
गोमयेनैशानीं दिशमारभ्य नैर्ऋतीदिकपर्यन्तं वृत्तं चिन्हं कृत्वा पुनस्तथैव कृत्वा तत्र दक्षिणाग्रकुश  
तिलान्निक्षिप्य दशवारं भस्मादिमार्जिततैजसादिभोजनभाजनानि निधाय जलेन प्रक्षाल्य तज्जलं  
सतिलदर्भं पैत्रद्विजपादक्षालनमण्डले निनयेत् । तत उपवीती दैवद्विजाग्रतस्तथैव भाजनानि  
निधाय जलेन प्रक्षाल्य तदुदकं सयवकुशं दैवद्विजपादक्षालनमण्डले निनयेत् । तत आचारा-  
१० त्सर्वत्र पात्राण्यभितो भस्मना मर्यादां कृत्वा द्विजानां करशुद्धिं पात्रे निधाय तज्जलं सतिलकुशं  
मण्डलोपरि निक्षिपेत् । ततोऽपहता असुराः 'इति यज्ञोपवीती दैवपात्रोपरि प्राचीनावीती  
पितृपात्रोपरि च तिलान्विकीर्य जलमुपस्पृशेत् । ततः पात्रे अन्नमुद्धृत्याभिचार्य 'अग्नौ  
करिष्ये' इति पृष्ठा 'कुरुष्व' इति तैरनुज्ञातः स्मार्ताग्निं परिस्तीर्य तत्र तिस्रः समिध आधायो-  
पवीती 'अग्नये सोमाय' इति आहुतिद्वयं मेक्षणेन हुत्वा प्राचीनावीती मेक्षणमग्नौ प्रक्षिप्याग्नौ-  
१५ करणशेषं पितृविप्रभाजने परिविध्यात् न दैवपात्रेषु । तत उपवीती दैवपात्रे प्राचीनावीती पितृ-  
पात्रेषु घृतमुपस्तीर्योपवीती स्वयं पत्नी वा दैवपूर्वं परिवेषणं कुर्यात् । ततः कर्तोपवीत्युदङ्मुखो  
दर्भैः पात्राण्युपस्तीर्य यवान्विकीर्य दक्षिणं जान्वाऽच्य दैवपात्रे परिविष्टमन्नं सावित्र्या अभ्युक्ष्य  
तूष्णीं पर्युक्ष्य वामोपरि दक्षिण इत्येवं स्वस्तिकाकाराभ्यामनुत्तानाभ्यां हस्ताभ्यां पात्रमधोऽभि-  
गृह्य 'पृथिवी ते पात्रम्' इत्यादि 'स्वाहान्तं' 'ब्राह्मणानां त्वा' इत्यादि च जपित्वा 'इदं  
२० विष्णुर्वि' इति मन्त्रान्ते 'विष्णो हव्यं रक्षस्व' इत्युक्त्वा दक्षिणहस्तेन विप्रदक्षिणकराङ्गुष्ठमधो-  
मुखमन्त्रेऽवगाह्य 'अपहता' इति प्रदक्षिणं यवान्विकीर्य यवोदकमादाय 'इदमन्नममृतरूपं  
परिविष्टं परिवेक्ष्यमाणं चातृप्तेर्भोजनपर्याप्तं तत्सर्वं विश्वेदेवा वः स्वाहा नमो न मम' इत्युक्त्वा  
वामोपरि दक्षिणकरेण विप्रदक्षिणतस्तज्जलं क्षिपेत् । एवमितरत्र कृत्वा प्राचीनावीती दक्षिणासुखः  
सव्यं जान्वाच्य पितृपात्रस्थमन्नं सावित्र्याऽभ्युक्ष्याद्भिः पात्रेषु तिलान्विकीर्य तूष्णीं पर्युक्ष्य  
२५ दक्षिणोपरि वाम इत्येवं स्वस्तिकाकाराभ्यामुत्तानाभ्यां पाणिभ्यां पितृपात्रमालभ्य 'पृथिवी'  
इत्यादि 'स्वधान्तं' 'ब्राह्मणानां त्वा' इत्यादि च जप्त्वा 'इदं विष्णुर्वि' इति मन्त्रान्ते  
'विष्णो कव्यं रक्षस्वे'त्युक्त्वा दक्षिणहस्तेन विप्रदक्षिणहस्ताङ्गुष्ठमुत्तानमन्त्रे निवेद्य स्वस्थाने  
कृत्वा सतिलकुशोदकं खड्गपात्रं दक्षिणहस्तेन गृहीत्वा वामहस्तेन पात्रमालभ्य 'इदमन्नम्'  
इत्यादि 'तत्सर्वम्' इत्यन्तं पूर्ववदुक्त्वा 'अस्मात्पितरः अमुकशर्माणः अमुकगोत्रा वसुरूपाः  
३० सपत्नीका वः स्वधा नमो न मम' इत्युक्त्वा वामाधोनीतदक्षिणकरेण विप्रवामभागे जलं  
क्षिपेत् । एवं सर्वेभ्यो यथालिङ्गं दत्त्वा  
"ब्रह्मार्पणं ब्रह्महविर्ब्रह्माग्नौ ब्रह्मणा हुतम् । ब्रह्मैव तेन गन्तव्यं ब्रह्मकर्म समाधिना" ॥  
येषामुद्दिष्टं तेषामक्षय्या तृप्तिरस्तु पितरूपी जनार्दनः प्रीयताम् इत्युक्त्वोदकं भूमौ  
क्षित्वा नमस्कृत्वा

“ ईशानविष्णुकमलासनकार्तिकेयवन्निहत्रयार्करजनीशगणेश्वराणाम् ।

“ क्रौञ्चाम्रेन्द्रकलशोद्भवकौश्यपानां पादान्नमामि सततं पितृमुक्तिहेतून् ॥

“ अन्नहीनं क्रियाहीनं भक्तिहीनं द्विजोत्तमाः । श्राद्धमच्छिद्रमस्वेतत्प्रसादाद्भवतां मम ” ॥

इति विप्रान्संप्रार्थ्य ‘तथास्तु’ इति तैः प्रत्युक्तः पितृपूर्वं विप्रकरेषु जलं दद्यात् । विप्राश्च तेन जलेनान्नं प्रोक्ष्य त्रिर्गायत्र्याऽभिमन्त्रयेत् । ततः कर्ता पुनः पितृपूर्वकमेवापोशनार्थमुदकं ५  
दत्त्वा ‘अमृतमस्तु’ इत्युक्त्वा सप्रणवव्याहृतिपूर्वा गायत्रीं ‘मधुवाता’ इति तृचं च जप्त्वा मधु मधु मधु इति च त्रिरुक्त्वा ‘ये देवासः’ इति देवद्विजाग्रतः सयवकुशं जलं निषिच्य ‘सङ्कल्प-  
सिद्धिरस्तु’ इत्युक्त्वा ‘ये चेह पितरः’ इति पित्र्यद्विजाग्रतः सतिलकुशं जलं निषिच्य ‘संकल्पसिद्धिरस्तु’ इत्युक्त्वा ‘ॐ तत्सत्’ इति ‘यथासुखं भुञ्जीध्वम्’ इति च त्रिरुक्त्वा प्रणम्य  
“ पिता पितामहश्चैव तथैव प्रपितामहः । तृप्तिं प्रयान्तु वै भक्त्या यदिदं श्राद्धमाहृतम् ॥ १०

“ मातामहस्तृप्तिमुपैतु तस्य तथा पिता तस्य पिता च योऽन्यः ।

“ विश्वे च देवाः परमां प्रयान्तु तृप्तिं प्रणश्यन्तु च यातुधानाः ॥

तथा ‘सप्तव्याधा० येस्मजाता० अमूर्तानां च । चतुर्भिश्च०’ तथा

“ यज्ञेश्वरो हव्यसमस्तकव्यभोक्ताऽव्ययात्मा हरिरीश्वरोऽत्र ।

“ तत्सन्निधानादपयान्ति सद्यो रक्षांस्यशेषाण्यसुराश्च सर्वे ॥ १५

“ त्वां योगिनिश्चिन्तयन्ति त्वां यजन्ति च याज्ञिकाः । हव्यकव्यभुगेकस्त्वं पितृदेवस्वरूपधृक् ॥

“ गयायां पितरूपेण स्वयमेव जनार्दनः । तं दृष्ट्वा पुण्डरीकाक्षं पितृणामनृणो भवेत् ” ॥

इत्यादि पठेत् । ततो विप्रा नित्यभोजनवत्परिषेचनं कृत्वा बलिदानमकुर्वन्तोऽपः पीत्वा कर्त्ता ‘श्रद्धायां प्राणे निविष्टोऽमृतं जुहोमि शिवोमाविशा प्रदाहाय प्राणाय स्वाहा’ इत्यादि-  
मन्त्रेषूच्यमानेषु प्राणाहुतीः पृथक् हुत्वा पुनः ‘श्रद्धायाम्’ इत्यादि पञ्चयजुःषु ‘ब्रह्माणि म २०  
आत्माऽमृतत्वाय’ इति चोच्यमानेषु ता आहुतीराप्याय्य कृतमौनाः भूमौ पादौ निक्षिपन्तः सशेष-  
मश्रीयुः । कर्ता प्राणाहुतिमन्त्रपाठानन्तरं ‘यथासुखं जुषध्वम्’ इत्युक्त्वा ‘सप्रणवां सव्या-  
हृतिकां गायत्रीं त्रिः सकृद्वोक्त्वा’ ‘कृणुष्वपाजः’ इति पञ्चदश ‘अग्नये कव्यवाहनाय’  
इत्यादि च ‘सहस्रशीर्षा’ इति षोडश ‘आशुः शिशान’ इति सप्तदश रुद्रप्रभृत्यान्यन्यानि च  
पवित्राणि ब्राह्मणान् श्रावयेत् । ततस्तृप्तान् ज्ञात्वा वैश्वदेविकमुख्यविप्रसन्निधौ प्रोक्षितभूमौ २५  
यवकुशं निधाय तत्र हस्ते घृतप्लुतमन्त्रमादाय

“ असोमपाश्च ये देवा यज्ञमागविवर्जिताः । तेषामन्नं प्रदास्यामि विकिरं वैश्वदेविकम् ” ॥

इति क्षिप्त्वा प्राचीनावीती पितृसन्निधिभूमिं प्रोक्ष्य तत्र दक्षिणाग्रान्कुशानास्तीर्य तिलमिश्रोदकं  
तृष्णीमासिच्य तिलघृतप्लुतमन्त्रमादाय जलेनाप्लाव्य ‘अग्निदग्धा’ इति पितृतीर्थेन क्षिप्त्वा

“ येऽग्निदग्धाः कुले जाता येऽप्यदग्धाः कुले मम । भूमौ दत्तेन तृप्यन्तु तृप्ता यान्तु परां गतिम् ” ॥ ३०

इति तस्योपरि पितृतीर्थेन तिलाम्बु निषिच्य त्रिराचम्य पितृपूर्वं विप्रैः सकृज्जलं दत्त्वा  
सप्रणवां सव्याहृतिकां गायत्रीं मधुमतीः ‘मधु इति च’ त्रिः श्रावयित्वा ‘तृप्ताः स्थ’ इति  
विप्रां पृष्ट्वा ‘तृप्ताः स्म’ इति तैरुक्तः ‘श्राद्धं संपन्नम्’ इति पृष्ट्वा ‘सुसंपन्नम्’ इत्युक्तः  
‘शेषोऽप्यस्ति किं क्रियताम्’ इत्युक्त्वा विप्रैः ‘इष्टैः सह भुज्यताम्’ इत्युक्तो ‘देवताभ्यः’

- इति त्रिर्जप्त्वा विप्रेष्वनाचान्तेष्वेव पिण्डार्थं माषवर्जं सर्वस्मादन्नात्किञ्चित्किञ्चिदुद्धृत्य पिण्डान्नि-  
र्वेदेदाचान्तेषु वा । तद्यथा द्विराचम्य वाग्यतो दक्षिणामुखः प्राचीनावीती पित्र्यब्राह्मणान्तिक  
उत्तरत उपविश्य 'अपहता असुरा रक्षांसि वेदिषदः' इति मन्त्रावृत्त्या सव्योत्तरपाणिद्वयगृहीतेन  
कुशमूलेन दक्षिणसंस्थं पश्चिमापवर्गं लेखाद्वयमुल्लिख्य तत्प्रत्येकमद्भिरभ्युक्ष्य 'ये रूपाणि' इति  
५ मन्त्रेणाग्नौकरणाधिकरणभूतस्य दक्षिणाग्न्यादेरुत्सृज्य रेखादक्षिणतो निर्धाय रेखां सकृदाच्छिन्नैः  
कुशैराच्छाद्य वामं जान्वाच्य पितृपिण्डार्थमास्तीर्णबर्हिषि त्रिषु स्थानेष्वग्नेयपवर्गं 'पितरमुक्-  
शर्मन्मृकगोत्र वसुरूप सपत्नीकावनेनिक्ष्व' इति मन्त्रैः सतिलं जलं पितृतीर्थेन निनीय माता-  
महार्थमास्तीर्णबर्हिषि त्रिषु स्थानेषु 'मातामहामुक्शर्मन्मृकगोत्र वसुरूप सपत्नीकावनेनिक्ष्व'  
इति मन्त्रैः सतिलजलं पितृतीर्थेन निनीय
- १० "शुक्लाम्बराः शुक्लगन्धाः शुक्लयज्ञोपवीतिनः । आत्मनोऽभिमुखासीना ज्ञानमुद्रा निरायुधाः ॥  
"वसवः पितरो ज्ञेया रुद्रास्तत्र पितामहाः । पितुः पितामहाः प्रोक्ता आदित्या बर्हिषि स्थिताः" ॥  
इति तत्रस्थान्वस्वादिदेवान् ध्यात्वा तिथ्यादि संकीर्त्य 'पितृप्राप्त्यर्थं पिण्डदानं करिष्ये'  
इति सङ्कल्प्य 'कुरुष्व' इति तैः प्रत्युक्तः पिण्डार्थमुद्धृतस्यान्नस्याऽऽर्द्रमलकप्रमाणं मधुसर्पि-  
स्तिलसमन्वितं वर्तुलं पिण्डषट्कं कृत्वा प्रत्येकमभिघायैकं पिण्डमादाय 'एतत्ते अस्मत्पितरमुक्-  
१५ शर्मन्मृकगोत्र वसुरूप सपत्नीक विष्णो ये च त्वामत्रानु तेभ्यश्च' इत्युक्त्वाऽऽयजलसेचनस्थाने  
पितृतीर्थेनाभिक्षिप्य 'अस्मत्पित्रेऽमुक्शर्मन्मृकगोत्राय वसुरूपाय सपत्नीकायार्थं पिण्डः स्वधा  
नमो न मम ये च त्वामत्रानु तेभ्यश्च गयायां श्रीरुद्रपदे दत्तमस्तु' इत्युच्येत । एवं सर्वेभ्यस्तत्त-  
ज्जलसेचनस्थानेषु यथालिङ्गं दद्यात् । ततः पिण्डपात्रं न्युञ्जीकृत्य त्रिराचम्य 'अत्र पितरो  
२० मादयध्वं यथा भागमावृषायध्वम्' इति जप्त्वाऽऽचम्याप्रदक्षिणमुदङ्ङावृत्य प्राणानायम्य  
प्रत्यावृत्य 'अमीमदन्त पितरो यथाभागमावृषायीषत' इति जप्त्वा पूर्ववत्पित्रादिपिण्डेषु 'पितर-  
मुक्शर्मन्मृकगोत्र वसुरूप सपत्नीक प्रत्यवनेनिक्ष्व' इति मन्त्रैः तिलोदकं निषिच्य पूर्ववद्धनीवीं  
विन्नस्य दर्भेण तैलमादाय 'अस्मत्पितरमुक्शर्मन्मृकगोत्र वसुरूप सपत्नीक अभ्यङ्क्ष्व' इति  
तैलं निक्षिपेत् । एवं यथालिङ्गं सर्वत्र निक्षिप्याप उपस्पृश्य दर्भेणांजनमादाय पूर्ववदुक्त्वा 'अङ्क्ष्व'  
२५ इति द्विरावृत्तेन मन्त्रेणांजनं निक्षिप्याप उपस्पृश्य 'नमो वः' इति षण्मन्त्रान् 'गृहाक्षः' इति  
जप्त्वा मधुघृततिलोदकयुक्तपात्रेण पिण्डेष्वर्घ्यं दत्त्वा 'एतद्वः पितरो वासः मानोतोऽन्यत्पितरो  
युङ्ध्वम्' इति प्रतिपिण्डं मन्त्रावृत्त्या वासो ब्रह्मलं नववासोदशां त्रिगुणसूत्रमूर्णास्तुकान्वा  
दद्यात् । पञ्चाशद्वर्षताया ऊर्ध्वं चेद्धृदयस्थं प्रकोष्ठस्थं वा लोम वासोर्ध्वं दद्यात् । ततो गन्धादिभिः  
पिण्डानभ्यर्च्य पुनः पितृपूर्वं विप्रेभ्यः प्रत्येकमाचमनजलं दद्यात् । ततो विप्रा भुक्तशेषमन्नं भोजन-  
३० पात्रेभ्यो बहिःकृत्य 'अमृतापिधानमासि' इत्यर्द्धजलं पीत्वाऽर्द्धम्  
"रौरवे पूगनिलये पद्मार्बुदनिवासिनाम् । अर्थिनामुदकं दत्तमक्षय्यमुपतिष्ठतु" ॥  
इति भूमावासिच्य तत्रस्था एव पात्रान्तरे हस्तादीनसंशोध्य द्विराचमेयुः । ततः कर्ता  
त्रिराचम्य पिण्डान्नमस्कृत्य 'सुप्रोक्षितमस्तु' इति भूमिमासिच्य पितृपूर्वं द्विजहस्तेषु प्रदक्षिणं  
प्रत्येकं 'शिवा आपः सन्तु' इत्युदकं दत्त्वा तथैव 'सौमनस्यमस्तु' इति पुष्पाणि दत्त्वा  
३५ 'अक्षतं चारिष्टं चास्तु' इति यवान् तथैव दत्त्वा 'विश्वेषां देवानां यद्वत्तं श्राद्धं

तदक्षय्यमस्तु ' इत्युक्त्वा ' अस्त्वक्षय्यम् ' इति प्रत्युक्तः प्राचीनावीती ' अस्मत्पितुरमुकशर्मणो  
ऽमुकगोत्रस्य वसुरूपस्य सपत्नीकस्य यद्वत् श्राद्धं तदक्षय्यमस्तु ' इति प्रत्येकं प्रत्येकमुक्त्वा  
' अस्त्वत्वक्षय्यम् ' इति तैरुक्तो ' येषामुद्दिष्टं तेषामक्षय्यमस्तु ' इत्युक्त्वोपवीती ' अघोराः  
पितरः सन्तु ' इत्युक्त्वा ' सन्त्वघोराः पितरः ' इत्युक्तः ' अमुकगोत्रोऽहमभिवादये ' इत्यभि-  
वाद्य ' अस्मद्गोत्रं वर्द्धताम् ' इत्युक्त्वा ' स्वस्ति वर्द्धतां वो गोत्रम् ' इति तैः प्रत्युक्तो दक्षिणा- ५  
मुखः ' दातारो नोभिवर्द्धन्ताम् ' इति श्लोकद्वयमुक्त्वा विप्रैः ' दातारो वोऽभिवर्द्धन्ताम् '  
इत्येवं श्लोकद्वयमुक्त्वा

“ आयुः प्रजां धनं विद्यां स्वर्गं मोक्षं सुखानि च । प्रयच्छन्तु तथा राज्यं प्रीता नृणां पितामहाः॥  
एताः सत्या आशिषः सन्तु ” इति पठित्वाऽक्षतपुष्पे दत्ते स्वस्य तिलकं कृत्वा तदक्षत-  
पुष्पं शिरसि निक्षिप्य कुशपवित्राणि पिण्डोपरि क्षिप्त्वा ' स्वधां वाचायिष्ये ' इति पृष्ट्वा ' वाच्य- १०  
ताम् ' इत्यनुज्ञातः ' अस्मत्पित्रादिभ्यो मातामहादिभ्यश्च तत्तन्नामगोत्ररूपेभ्यः सपत्नीकेभ्य  
स्वधोच्यताम् ' इत्युक्त्वा ' अस्तु स्वधा ' इति तैरुक्तः ' स्वधाः संपद्यन्ताम् ' इत्युक्त्वा ' संपद्यन्तां  
स्वधा ' इत्युक्तः पवित्रान्तर्हितपिण्डोपर्यवनेजनोदकशेषम् ' ऊर्जं वहन्ति ' इति सर्वं  
निनीय प्राङ्मन्युब्जीकृतमर्घपात्रं पिण्डपात्रं चोत्तानं कृत्वा पितृव्यविप्रेभ्यो नामगोत्ररूपोक्तिपूर्वकं  
' श्राद्धसाहचर्यार्थं दक्षिणां संप्रददे ' इत्युक्त्वा पितृतीर्थेन सतिलां दक्षिणां दत्त्वा ' दक्षिणाः १५  
पान्तु ' इत्युक्त्वा ' पान्तु दक्षिणाः ' इति तैः प्रत्युक्त एवं देवस्थानोपविष्टाविप्राभ्यां दैवतीर्थेन  
सयवोदकसुवर्णवस्त्रधान्यादिष्वन्यतमां दक्षिणां शक्यनुसारतो दत्त्वा ' विश्वे देवाः प्रीयन्ताम् '  
इत्युक्त्वा देवद्विजहस्ते यवोदकं क्षिप्त्वा ' प्रीयन्तां विश्वे देवाः ' इत्युक्तः प्राचीनावीती ' पितरः  
प्रीयन्ताम् ' इत्युक्त्वा तिलोदकं पितृद्विजहस्तेषु क्षिप्त्वा ' प्रीयन्तां पितरः ' इति तैरुक्तः  
' पितृभ्यः स्वधायिभ्यः ' इति पितृपिण्डान् ' नमो वः ' इति मातामहापिण्डानभ्यर्च्य २०  
“ पिता पितामहश्चैव तथैव प्रपितामहः । वृत्तिं प्रयान्तु पिण्डेन मया दत्तेन भूतले ॥  
“ मातामहस्तत्पिता च पिता तस्यापि तृप्यतु । द्विजानां तर्पणाद्धोमात् पिण्डदानाच्च मे सदा ” ॥

इति जप्त्वा ' क्षमध्वम् ' इति पिण्डान् चालयित्वोपवीती हस्ताभ्यां पिण्डानादायावघ्राया-  
ऽऽचम्य प्राचीनावीती पिण्डार्थदर्मानावसथ्ये क्षिप्त्वा स्वयं सुतः शिष्यो वा पितृपात्रं चालयित्वोप-  
वीती दैवपात्रं प्रक्षाल्य संचरमभ्युक्ष्य प्राचीनावीती ' पित्रादिभ्यो मातामहादिभ्यः स्वस्तीति २५  
ब्रूत ' इत्युक्त्वा ' स्वस्ति ' इति तैरुक्त उपवीती विश्वेभ्यो देवेभ्यः ' स्वस्ति भवन्तौ ब्रूतम् '  
इत्युक्त्वा ' स्वस्ति ' इति ताम्भ्यामुक्तो ' यन्न्यूनं यदतिरिक्तं तत्सर्वं संपूर्णमस्तु ' इत्युक्त्वा ' संपूर्ण-  
मस्तु ' इति तैरुक्ते

“ मन्त्रहीनं क्रियाहीनं संपद्धीनं द्विजोत्तमाः । श्राद्धं संपूर्णतां यातु प्रसादाद्भवतां मम ” ॥  
' चतुर्भिश्च ' इति ' यस्य स्मृत्या ' इति च जप्त्वा ' देवताभ्यः ' इति त्रिः पठित्वा ' आमा- ३०  
वाजस्य ' इति कनिष्ठपूर्वकं विप्रान् त्रिः प्रदक्षिणीकृत्य नमस्कुर्व्यात्तस्तां विप्रान् सुखासन  
उपवेश्य ताम्बूलादिकं दत्त्वा

“ अद्य मे सफलं जन्म भवत्पादाब्जवन्दनात् । अद्य मे वंशजाः सर्वे याता वोऽनुग्रहाद्विभम् ॥  
“ पत्रशाकादिदानेन क्लेशिता यूयमीदृशाः । तत्क्लेशमिह संजातं विस्मृत्य क्षन्तुमर्हथ ” ॥



इत्यादि संप्राथम्यं जानुभ्यामवनिं गतः प्रणिपत्यं विसृज्य गच्छतो द्विजाननुव्रज्य तैरनुज्ञातः प्रत्या-  
गत्य हस्तेन दीपान् प्रशमय्य द्विराचम्य ग्रहबलीन्कृत्वा बन्धुभिः सहानुमोदितो भुञ्जीत इति दिक् ।

इति श्राद्धप्रयोगः ।

अथ तर्पणम् । गर्गः

- ५ “ पूर्वं तिलोदकं कृत्वा अमाश्राद्धं तु कारयेत् । प्रत्यब्दे न भवेत्पूर्वं परेऽहनि तिलोदकम् ॥  
“ पक्षश्राद्धे हिरण्ये च अनुव्रज्य तिलोदकम् ” ॥ इति ।

‘ कारयेत् ’ इत्यत्र ‘ एतयाश्नायकामं याजयेत् ’ इतिवणिजविवक्षा । हिरण्ये हिरण्य-  
श्राद्धे । अत्र चत्वारि वाक्यानि । ‘ प्रत्यब्दे न भवेत्पूर्वम् ’ इत्यस्यानुवादत्वात् । पूर्ववाक्ये तिलोदक-  
विशिष्टममावास्याश्राद्धं विधीयते । न चामावास्याश्राद्धे तर्पणोत्तरकालो विधीयते । स ह्येक-

- १० विधिपरिगृहीतानां ‘ पुरस्तादुपसदां प्रवर्ग्येण चरन्ति ’ इत्यादीनां स्वतन्त्राणां ‘ दर्शपूर्णमासाभ्या-  
मिष्ट्वा सोमेन यजेत ’ इत्यादीनां वा दृष्टः । न चान्याङ्गोत्तरकालता कस्यचित्प्रधानस्य दृष्टा ।  
ननु ‘ एतया पुनराधानसंमितयेष्ट्येष्ट्वाऽग्निहोत्रं जुहोति ’ इत्यत्र ‘ ज्योतिष्टोमाङ्गभूतोदवसनीयोत्तर-  
कालताऽग्निहोत्रस्य दृष्टा ’ इति चेन्न तत्रावभृथोत्तरं दीक्षोन्मोकेऽग्निहोत्रे प्राप्ते उदवसानीयो-  
त्तरत्वमवधिमार्त्रं समर्प्यते न तदुत्तरकालाङ्गम् । अन्यथा यथाशक्युपबन्धेनोदवसानीयायामकृताया-

- १५ मनुष्यादेयकालस्यात्याज्यत्वादग्निहोत्राननुष्ठानप्रसङ्गात् । यदि क्वाप्यदृष्टमेवाङ्गीक्रियेत तदा दूरस्थ-  
श्राद्धानुवादेन कालस्य विधातुमशक्तेः प्रकरणान्तरेणामावास्याश्राद्धं भिद्येत । अतो गर्गस्मृतौ  
अमावास्याश्राद्धमत्र विधीयते तस्यां स्मृतावमावास्याश्राद्धविधायकं वाक्यमस्तीति चेन्न तादृशस्या-  
नुपलम्भात् । सत्त्वे वाऽस्य प्रयोगविधिपरत्वात् । अतः पूर्वोक्तमेव युक्तम् । ततश्च तस्य प्रकृति-  
त्वेन प्रत्यब्दे प्राप्ते तिलोदके परेऽहनि इति कालमात्रविधिः । ‘ आग्निमास्तुतुर्ध्वमनुयाजैश्चरन्ति ’

- २० इति वत् । एवमग्रेऽपि । तथा चानन्यगतिकं लिङ्गं बृहन्नारदीये दृश्यते  
“ वृद्धिश्राद्धे सपिण्ड्यां च प्रेतश्राद्धेऽनुमासिके । संवत्सरविमोके च न कुर्यात्तिलतर्पणम् ” ॥ इति ।

अयं च निषेधः प्राप्तौ सत्यां घटते । कालार्थं सम्बन्धे हि प्राप्त्यभावादन्यस्य चाविधेयत्वाद्वाक्यं  
व्यर्थं स्यात् । सप्तमी चांगत्व एव दृष्टा ‘ येन कर्मणेत्येतन्न जयाज्जहुयात् ’ इत्यादिषु । एतदभि-  
प्रायेण सङ्ग्रहकृताऽप्युक्तम् ‘ प्रत्यब्दाङ्गं तिलं दद्यात् ’ इति । तथा बृहन्नारदीय एव

- २५ वार्षिकं प्रक्रम्य

“ परेषुः श्राद्धकुन्मर्त्यो यो न तर्पयते पितृन् । तस्य ते पितरः कुद्धाः शापं दत्त्वा व्रजन्ति हि ” ॥  
इति निन्दा दृश्यते । न चेयं नित्यतर्पणकारणनिन्दा अन्यप्रकरणेऽस्याकरणनिन्दाया अयोग्यत्वात् ।  
पक्षश्राद्धाङ्गतर्पणे विशेषो गर्गेणोक्तः

“ कृष्णे भाद्रपदे मासि श्राद्धं प्रतिदिनं भवेत् । पितृणां प्रत्यहं कार्यं निषिद्धाहेऽपि तर्पणम् ” ॥ इति ।

- ३० प्रत्यब्देऽपि विशेषः स्मृत्यन्तरे

“ नैवं श्राद्धदिने कुर्यात्तिलैस्तु पितृर्बर्पणम् । श्राद्धं कृत्वा परेऽह्नयेव तर्पणं तु तिलैः सह ” ॥ इति ।

अत्र पूर्वार्द्धमुत्तरार्द्धस्य स्तावकम् । उत्तरार्द्धेन पूर्वार्द्धार्थस्य प्राप्तेरेकवाक्यत्वलाभाच्च ।  
तदयं निर्णयः । श्राद्धस्य बृहत्कालत्वे नित्यतर्पणस्य तन्त्रमध्यपातित्वात्तेनैव प्रसङ्गसिद्धिः । सद्य-  
स्कालपक्षेऽप्येवम् । अन्याङ्गैरन्याङ्गानां प्रसङ्गसिद्धेः पशुपुरोडाशादावभ्युपगमात् । यत्तु यदा



त्वनयत्या नित्यतर्पणोत्तरं श्राद्धसंकल्पस्तदा पृथकार्थं नित्यस्य प्रयोगानन्तःपातित्वादिति तत्र ।  
 क्त्वाप्रत्ययेन प्रयोगबहिर्भूताङ्गानुष्ठानस्यारम्भणीयाबृहस्पतिसवादावभ्युपगमात् । अतः इदमपि  
 प्रयोगबहिर्भूतमेवाङ्गं पूर्वं कार्यम् । अतश्च प्रसंगानुष्ठानमविरुद्धम् । अतो न पृथक्तर्पणं दर्शे ।  
 यदा तु सप्तम्यादौ नित्यतर्पणं तिलरहितं क्रियते तदा तन्त्रप्रसंगयोरभावादिदं तिलसाहितं  
 पृथकार्थमेव इति । वार्षिकदिने विशेषं स्मृतिरत्नावल्यां वृद्धमनुराह

“ सप्तम्यां भानुवारे च मातापित्रोः क्षयेऽहनि । तिलैर्यस्तर्पणं कुर्यात्स भवेत्पितृवातकः ” ५ इति ।  
 इदं च तर्पणं प्रस्तरप्रहरणे देवताकीर्तनवत् सन्निपत्योपकारकम् । अत एव यद्वैवर्त्यं श्राद्धं  
 तद्वैवर्त्यमेव भवति । वार्षिके विधिरुक्तः सङ्ग्रहे

“ स्नात्वा तीरं समागत्य उपविश्य कुशासने । संतर्पयेत्पितृन्सर्वान् स्नात्वा वस्त्रं च धारयेत् ” ॥ इति ।

अत्र स्नानोत्तरं सन्ध्यामकृत्वैव तर्पणं कार्यमिति केचित् । तच्चिन्त्यं । ‘ सन्ध्याहीनोऽशुचि- १०  
 नित्यमनर्हः सर्वकर्मसु ’ इति वाक्यात् । न च तर्पणपर्यन्तं श्राद्धप्रयोगानुवृत्तेर्मध्ये सन्ध्या  
 नानुष्ठेयेति वाच्यम् । श्राद्धदिने सायंसन्धाननुष्ठानप्रसक्तेः । ततश्च स्नानसन्ध्यादीनां सर्वकर्मा-  
 र्थत्वेन प्राप्तेरुपवेशनस्यापि सामान्यतः प्राप्तेः कुशासनं तर्पणोत्तरं स्नानं च विधीयते इति युक्तम् ।  
 पक्षश्राद्धे हिरण्ये च ब्राह्मणविसर्जनोत्तरं तर्पणं कार्यं । सकृन्महालये तु वार्षिकवत्परेद्युरेव ।  
 ‘ सकृन्महालये श्वः स्यादष्टकास्वन्त एव हि ’ इति वाक्यात् । अन्ते विसर्जनान्ते । अष्टकाविकृति- १५  
 भूतमाध्यावर्षादिश्राद्धेऽप्यन्त एव । अष्टकाश्राद्धाङ्गसप्तम्यान्वष्टक्ययोर्दर्शविकृतित्वात्पूर्वमेव  
 तर्पणं तद्विकृतित्वानङ्गीकारे तु तर्पणानुष्ठानमेव तीर्थादावपि दर्शवदेव । यत्तु वाक्यम्  
 “ विवाहव्रतचूडासु वर्षमर्द्धं तदर्द्धकम् । पिण्डदानं मृदा स्नानं न कुर्यात्तिलतर्पणम् ” ॥ इति ।  
 तन्महालयाष्टकाव्यतिरेकेण द्रष्टव्यम् ।

“ तीर्थे तिथिविशेषे च गर्थायां प्रेतपक्षके । निषिद्धेऽपि दिने कुर्यात्तर्पणं तिलमिश्रितम् ” ॥ २०  
 इति वचनात् । तिथिविशेषोऽष्टकादिः । यत्तु

“ पित्रोः क्षयाहे संप्राप्ते यः कुर्यान्नित्यतर्पणम् । आसुरं तर्पणं ज्ञेयं तत्तोयं रुषिरं भवेत् ॥

“ सर्वदा तर्पणं कुर्याद्ब्रह्मयज्ञपुरस्करम् । मृताहे नैव कर्तव्यं कृतं चेन्निष्फलं भवेत् ” ॥

इति पठन्ति तन्निर्मूलमेव । समूलत्वेऽपि सतिलतर्पणनिषेधपरम् । पूर्वलिखितवाक्यानुरोधात् ।  
 अन्योऽपि विशेषः । इक्षः

“ ज्येष्ठभ्रातृपितृज्येष्ठसपत्नीमातरस्तथा । एतेषां च मृताहे न व्यपोहति तिलोदकम् ” ॥

कपिलः “ मन्वादिषु युगाद्यासु दर्शे संक्रमणेषु च । पौर्णमास्यां व्यतीपाते दद्यात्पूर्वं तिलोदकम् ॥

“ अर्द्धादये गजच्छाये षष्ठ्यां चैव महालये । भरण्यां च मघाश्राद्धे पिण्डान्ते तर्पणं भवेत् ” ॥ इति ।

शौनकः

“ मांतापित्रोः क्षयाहे तु परेऽहनि तिलोदकम् । कारुण्यश्राद्धविषये सद्यो दद्यात्तिलोदकम् ” ॥ इति । २०

एतानि च ‘ पूर्वं तिलोदकं दत्त्वा ’ इत्यादीनि सर्वाणि वाक्यानि महाग्रन्थेष्वदर्शनाच्च विस्तरेण

विचारविषयीकृताति । कैश्चित् शिष्टैराहृतत्वात्किञ्चिद्विचारितानि । इति दिक् ।

अथ वैश्वदेवकालनिर्णयः । तत्रानभेस्तावत्कालत्रयम् ब्रह्माण्डपुराणे

“ वैश्वदेवाहुतीरश्रावर्गब्राह्मणभोजनात् । जुहुयाद्भूतयज्ञादि श्राद्धं कृत्वा तु तत्स्मृतम् ” ॥

१ अबर्ह-ग्रहणे । २ अवयनज्ञ-देवत्यं । ३ अयघई-गंगायां । ४ यनकघज्ञ-‘ तु मृताहे तु  
 परेहनि ’ इति पाठः । ५ अई-ग्राहं ।

इत्येकः कालः । ' अर्वाग्ब्राह्मणभोजनात् ' इत्यनेनाग्नौकरणानन्तरं वैश्वदेवाहुतीर्जुहुयादित्युक्तमिति हेमाद्रिः । द्वितीयो भविष्यत्पुराणे

“पितृन्सन्तर्प्य विधिवद्बलिं दद्याद्विधानतः । वैश्वदेवं ततः कुर्यात्पश्चाद्ब्राह्मणवाचनम् ” ॥ इति । बलिशब्दार्थस्तत्रैवोक्तः ।

५ “ ये अग्निदग्धा मन्त्रेण भूमौ यन्निक्षिपेद्बुधः । जानीहि तं बलिं वीर आद्धकर्मणि सर्वदा ” ॥ इति । तृतीयोऽपि तत्रैव

“ कृत्वा आद्धं महाबाहो ब्राह्मणांश्च विसर्ज्य च । वैश्वदेवादिकं कर्म ततः कुर्यान्नराधिप ” ॥ इति । न च ' अग्निमदनग्निमद्विषयं पक्षत्रयमविशेषात् ' इति वाच्यम् ।

“ वैश्वदेवमकृत्वैव आद्धं कुर्यादनग्निकः । लौकिकाग्नौ हुते शेषः पितॄणां नोपतिष्ठति ” ॥

१० इति वासिष्ठे विशेषाभिधानात् ।

अथ साग्रेवैश्वदेवकालः । तत्राह लौगाक्षिः

“ पक्षान्तं कर्म निर्वर्त्य वैश्वदेवं च साग्निकः । पितृयज्ञं ततः कुर्यात्ततोऽन्वाहार्यकं बुधः ” ॥ इति ।

पक्षान्तं कर्मग्न्यन्वाधानम् । अन्वाहार्यं दर्शश्राद्धम् । पक्षान्तपिण्डपितृयज्ञयोर्मध्ये विधानादेव वैश्वदेवस्य साग्निककर्तृत्वावगमे वैयर्थ्यापातात् । ' साग्निकग्रहणमौपासनाग्निमतो

१५ निवृत्त्यर्थम् ' इति हेमाद्रिः । उक्तरीत्यैवाविशेषेण श्रौतस्मार्ताग्निमतोरुभयोरपि वैश्वदेवकर्तृत्वावगमात्साग्निकपदस्यानुवादकत्वमेव न तु स्मार्ताग्निमन्निवर्तकत्वम् । श्रौताग्निमत एव निवर्तकत्वेन वैपरीत्यस्यापि सुवचत्वात् । अतोऽनुवादकत्वमेव युक्तम् । एतच्चैकदिनप्रसक्तानामन्वाधानादीनां क्रमाकाङ्क्षायां तन्मात्रमेव विधत्ते न कमपि पदार्थं तेन कदाचित्सर्वस्फालीनदर्शयागपक्षे त्वन्वाधानस्य पिण्डपितृयज्ञस्योत्तरादिनकर्तव्यत्वेऽपि न कदाचित्क्षतिः । कचिच्छ्राद्धे साग्निकस्यापि

२० पश्चादेव वैश्वदेवः । परिशिष्टे

“ संप्राप्ते पार्वणश्राद्धे एकोद्दिष्टे तथैव च । अग्रतो वैश्वदेवः स्यात्पश्चादेकादशोऽहनि ” ॥

शालङ्कायनः

“ आद्धात्प्रागेव कुर्वीत वैश्वदेवं च साग्निकः । एकादशाहिकं मुक्त्वा तत्र ह्यन्ते विधीयते ” ॥ इति ।

तत्रानग्रेः श्राद्धशेषेणैव वैश्वदेवः “ आद्धात्तेन तु वैश्वदेविकमनुश्राद्धं चरेद्धार्मिक ”

२५ इति हेमाद्र्यादिसिद्धान्तात् । ' साग्निकस्य तु पूर्वं पृथक्पाकेनैव ' इति । यदि पृथक्पाकाद्यादि वा श्राद्धशेषाद्वैश्वदेवः क्रियते उभयथाऽपि भोजनं श्राद्धशेषस्यैव ' भुञ्जीतातिथिसंयुक्तः सर्वं पितृनिषेवितम् ' इति पूर्वोक्तान्मात्स्यवाक्यात् ' प्रदक्षिणमनुव्रज्य भुञ्जीत पितृसेवितम् ' इति ( आ. २४६ ) याज्ञवल्क्यीयाच्च । न चात्र रागप्राप्तभोजनानुवादेन श्राद्धशेषविधिः ।

भोजनस्य रागतोऽपि नित्यमप्राप्तेर्नित्यवच्छ्रवणायोगात् । अतः प्रकरणाच्छ्राद्धाङ्गत्वेन भोजन-

३० क्रियैव विधीयते ' पयोव्रतं ब्राह्मणस्य ' इतिवत् । अन्यथा तत्रापि व्रतानुवादेन पयस एव विधिः स्यात् । इदं च भोजनं यद्यपि ' पितृसेवितम् ' इति द्वितीयाश्रुतेः प्रतिपत्तिकर्म तच्च प्रतिपाद्यभावे लुप्यते न्यायात् । तथापि श्राद्धदिन उपवासे दोषश्रवणाददृष्टार्थं पुनः पक्त्वाऽपि कार्यमेव स्विष्टकृद्याग इव शेषनाश आज्येन ' यस्य सर्वाणि हवींषि नश्येयुर्दुष्येयुरपहरेयुर्वा आज्येनैता देवताः परिसङ्ख्याय यजते ' इति वचनात् । अत एव देवलः

“श्राद्धं कृत्वा तु यो विप्रो न भुङ्क्तेऽथ कदाचन । देवा हव्यं न गृह्णन्ति कव्यानि पितरस्तथा”॥इति।  
वैधोपवासप्राप्तौ स्मृत्यन्तरे

“उपवासो यदा नित्यः श्राद्धं नैमित्तिकं भवेत् । उपवासं तदा कुर्यादाग्राय पितृसेवितम्” ॥ इति ।

‘नित्यः’ इत्यविवक्षितम् । अनुवाद्यविशेषणत्वात् । अतः काम्योपवासप्राप्तावप्याग्रेयमेव ।

मात्स्ये

“पुनर्भोजनमध्वानं यानमायासमैथुनम् । श्राद्धकुच्छ्राद्धमुक्चैव सर्वमेतद्विवर्जयेत् ॥

“स्वाध्यायं कलहं चैव दिवास्वापं तथेच्छया” ॥ इति ।

बृहस्पतिः “तां निशां ब्रह्मचारी स्याच्छ्राद्धमुक्श्राद्धिकैः सह” ॥ इति ।

यमः “पुनर्भोजनमध्वानं भारमायासमैथुनम् । सन्ध्यां प्रतिग्रहं होमं श्राद्धमुक् त्वष्ट वर्जयेत्”॥इति।

सन्ध्याहोमयोर्विशेषो माधवीये पुराणे

“दशकृत्वः पित्रेच्चापो गायत्र्या श्राद्धमुक् द्विजः । ततः सन्ध्यामुपासीत जपेच्च जुहुयादपि” ॥

इति पार्वणश्राद्धम् ।

अथ ब्रह्मार्पणं । प्रयागमाहत्म्ये

“पादौ प्रक्षाल्य विधिवत्पीठादावुपवेष्ट्य च । परिविध्य त्यजेदन्नं ब्रह्मार्पणाविधिः स्मृतः” ॥

इति ब्रह्मार्पणम् ।

अथासमर्थस्य सङ्कल्पश्राद्धम् । तत्र स्मृत्यन्तरे

“अङ्गानि पितृयज्ञस्य यदा कर्तुं न शक्नुयात् । सङ्कल्पश्राद्धमेवासौ कुर्यादध्यादिवर्जितम्” ॥ इति ।

पितृयज्ञोऽत्र श्राद्धं न पिण्डयज्ञः अर्घ्यपिण्डादिवर्जनासङ्गतः । न हि पिण्डज्ञेऽर्घ्योऽस्ति नापि

तत्र पिण्डदानमङ्गम् । श्राद्धे च यद्यपि तत्प्रधानं तथाप्यङ्गपदं तदप्युपलक्षयति । अतो

न विरोधः । अत एव संवर्तः

“समग्रं यस्तु शक्नोति कर्तुं नैवेह पार्वणम् । अपि सङ्कल्पविधिना काले तस्य विधीयते ॥

“पात्रभोज्यस्य चान्नस्य त्यागः संकल्प उच्यते ॥

“तत्र युक्तो विधिर्यस्तु स तेन व्यपदिश्यते । तावन्मात्रेण संवद्धं साङ्कल्पश्राद्धमुच्यते” ॥

छागलेयः “पिण्डं यत्र निवर्तेत मघादिषु कथंचन । साङ्कल्पं तु तदा कार्यं नियमाद्ब्रह्मवादिभिः” ॥

साङ्कल्पिकप्रकारमाह व्यासः

“सङ्कल्पं तु यदा कुर्यान्न कुर्यात्पात्रपूरणम् । नावाहनाग्नौकरणे पिण्डांश्चैव न दापयेत्” ॥ इति ।

स्मृतिसंग्रहे

“अग्नौकरणमर्घ्यं च विकिरावाहने स्वधा । पिण्डयुक्ते प्रकुर्वीत पिण्डहीने विवर्जयेत्” ॥ इति ।

पारिजाते वृद्धशातातपः

यत्तु स्मृतिचन्द्रिकाप्रयोगपारिजातादौ ‘आवाहननिषेधेऽमन्त्रकमावाहनं कार्यमन्यथा देवताया ३०

असन्निधानप्रसङ्गात्’ इति तत्र । आगमनरूपस्य देवतासान्निध्यस्य देवताधिकरणे

निराकृतत्वात् । पितृतृप्तिस्तु यद्यपि देवतातृप्तिवत् तदधिकरणे निराकृता तथापि रात्रिसत्राधि-

करणन्यायेन विध्यपेक्षया श्राद्धफलत्वेनाङ्गीकार्या । धर्माधर्मफलभोगान्यथानुपपत्त्या च उत्कृष्टो-

ऽपकृष्टो वा विग्रहोऽप्यङ्गीकार्यः । न तु सान्निध्यं मानाभावात् । अत एव प्रसादफलदातृत्वे

अपि न । यद्यपि

“ वसुरुद्रादितिसुताः पितरः श्राद्धदेवताः । ते तृप्तास्तर्पयन्त्येनं सर्वकामफलैः शुभैः ” ॥ इति ।

“ आयुः प्रजां धनं विद्यां स्वर्गं मोक्षं सुखानि च । प्रयच्छन्ति तथा राज्यं प्रीता नृणां पितामहाः ” ॥

इति च फलदातृत्वं श्रुतम् तथापि तदर्थवादगतत्वाद्विध्यनपेक्षणाच्च नाङ्गीक्रियते । विध्यनपेक्षितानां वज्रहस्तसहस्राक्षत्वादीनामप्यङ्गीकारापत्तेः । इष्टापत्तौ वपोत्सननादीनामपि तदापत्तिः ।

१ अतः प्रामाणिकौ वृत्तिविग्रहावङ्गीकर्तव्यौ न तु सान्निध्यफलदातृत्वादीनि इति दिक् ।

अथ श्राद्धे आमहेमादिविधिः । लघुहारीतः

“ एकोद्दिष्टं तु कर्तव्यं पाकेनैव सदा स्वयम् । अभावे पाकपात्राणां तदहः समुपोषणम् ” ॥ इति ।

सुमन्तुः “ तीर्थं श्राद्धं प्रकुर्वीत पक्वाग्नेन विशेषतः । आमाग्नेन हिरण्येन कन्दमूलफलैरपि ॥

“ एषामभावे कुर्याच्च श्राद्धयाऽपि जलेन वा ” इति ।

१० अमावास्यादिश्राद्धं तु पाकासंभवे आमेन कार्यमेवेत्याह हारीतः

“ श्राद्धविघ्ने द्विजातीनामामश्राद्धं प्रकीर्तितम् । अमावास्यादिनियतं माससंवत्सरादृते ” ॥ इति ।

अत एव “ पाकाभावेऽधिकारत्वाद्विप्रादीनां नराधिप । अपत्नीनां महाबाहो विदेशगमनादिभिः ॥

“ सदा चैव तु शूद्राणामामः श्राद्धं विदुर्बुधाः ” ॥ इति सुमन्तुना विदेशगमनादिभिः पाकाभावे

आमश्राद्धं विहितं संगच्छते । अपत्नीनामित्यपि हेतुगर्भविशेषणेनापत्नीकत्वप्रयुक्तः पाकाभाव

१५ एव विवक्षितः । यच्चोशनोवचनं

“ अपत्नीकप्रवासी च भार्या यस्य रजस्वला । सिद्धाग्नेन न कुर्वीत आमं तस्य विधीयते ” ॥ इति ।

तत्रापि उद्देश्यानेककृतवाक्यभेदपरिहारायापत्नीकादिपदैरापदं लक्षयित्वा तन्निमित्ते आमादि विधिरिति व्याख्येयं ।

कात्यायनः “ आपद्यनग्नौ तीर्थं च प्रवासे पुत्रजन्मनि । आमश्राद्धं द्विजः कुर्याद्भार्यारजसि संक्रमे ” ॥

२० जाबालः

“ आपद्यनग्नौ तीर्थं च ग्रहणे चन्द्रसूर्ययोः । आमश्राद्धं द्विजैः कार्यं शूद्रेण तु सदैव हि ” ॥ इति ।

तथा “ द्रव्याभावे द्विजाभावे प्रवासे पुत्रजन्मनि । हेमश्राद्धं प्रकुर्वीत यस्य भार्या रजस्वला ” ॥

अत्र ‘ अनग्नौ ’ इति भावप्रधानो निर्देशः । ‘ अनग्नित्व ’ इत्यर्थः । श्रौतस्मार्ताग्न्यभावे इति

यावत् । न त्विह पाकाद्यर्थं लौकिकाग्निपरम् । आपत्पदेनैव सिद्धावेतत्पदवैयर्थ्यापातात् ।

२५ द्रव्याभावद्विजाभावाभ्यां चापदुपलक्ष्यते । अतः परिग्रहनाशे देशान्तरस्थत्वादिना श्रौतस्मार्ताग्न्य-

भाव आमेन हेम्ना वा श्राद्धं कुर्यात् ‘ आपत्प्रवासपुत्रजन्मग्रहणभार्यारजोदोषेषु तु साक्षिकोऽप्यामे-

नैव ’ इति कर्कस्मतिरन्नावलयाद्यनुयायिनः ‘ यथाशिष्टाचारं कार्यम् ’ इति मदनपारिजातद्विबो-

दासाद्याः । प्राच्या अप्येवम् । तीर्थजलसमीपे आमेन हेम्ना वा गृहादौ त्वन्नेनैव इति युक्तम् ।

“ सदैव हि जलान्तेषु आमश्राद्धं प्रशस्यते । गृहाद्दशगुणं पुण्यं लभेत्तीर्थनिवापकृत् ” ॥

३० इतिवचनादिति भट्टचरणाः । दाक्षिणात्यास्तूभयं कुर्वन्ति । ‘ पक्वाग्नेन विशेषतः ’ इति वाक्यात् ।

अत्र यथादिशाचारं व्यवस्था ।

सुमन्तुः “ सदा चैव तु शूद्राणामामश्राद्धं विदुर्बुधाः । न पक्वं भोजयेद्विप्राश्च सच्छूद्रोऽपि कदाचन ” ॥

व्यासः “ आमं ददत्तु कौन्तेय दद्यादन्नं चतुर्गुणम् । आमं ददद्धि कौन्तेय आमं तु द्विगुणं भवेत् ” ॥

इति तु अशक्तौ । हिरण्यं त्वष्टगुणं चतुर्गुणं द्विगुणं वा दद्यात् ।

“ धान्याच्चतुर्गुणेनैव हिरण्येन सुरोचिषा ” । इति मरीचिवचनात् । “ आमं तु द्विगुणं प्रोक्तं हेम तद्वच्चतुर्गुणम् ” । इति धर्मवचनाच्च । अशक्तौ सममप्यामं हेम वा दद्यात् । द्वैगुण्यादि च पुरुषाहारापेक्षया । उशाना

“ सिद्धन्ने तु विधिर्यः स्यादामश्राद्धेऽप्यसौ विधिः । आवाहनादि सर्वं स्यात्पिण्डदानं च भारत ॥  
“ दद्याच्चापि द्विजातिभ्यः शृतं वाऽशृतमेव वा । तेनाग्नौकरणं कुर्यात्पिण्डांस्तेनैव निर्वपेत् ” ॥ इति । ५  
“ हस्तेऽग्नौकरणं कुर्याद्ब्राह्मणस्य विधानतः ” । इति च ।

षट्त्रिंशन्मते

“ आमश्राद्धं प्रकुर्वीत पिण्डदानं कथं भवेत् । गृहपाकात्समुद्धृत्य सक्तुभिः पायसेन वा ” ॥  
पिण्डदानमिति शेषः । आमगृहपाकसक्तुषु यथालाभं व्यवस्था ।

यत्तु “ आमेन पिण्डं दद्याच्चेद्विप्रान्पक्वेन भोजयेत् ।

१०

“ पक्वेन कुरुते पिण्डमामात्रं यः प्रयच्छति । तावुभौ मनुजौ प्रोक्तौ नरकाहौ न संशयः ” ॥ इति ।  
‘ तदमावास्यादिपरम् ’ इति प्रघट्टके पितामहचरणाः । अत्र भोजनसंबन्धाः पदार्थाः  
‘ यथासुखं जुषध्वम् तृप्ताः स्थ ’ इत्यादयो द्वाराभावान्निवर्तन्ते इति पारिजाते कृष्णलेष्वव-  
धातवत् । तदुक्तं तत्रैव

“ तृप्तिप्रश्नोऽवगाहश्च जुषप्रश्नो यथाविधि । आमश्राद्धे भवेन्नैतदपोशानं च पञ्चमम् ” ॥

१५

अवगाहोऽङ्गुष्ठनिवेशनम् । तीर्थनिमित्तामश्राद्धे एते

“ अर्घ्यमावाहनं चैव द्विजाङ्गुष्ठनिवेशनम् । तृप्तिप्रश्नं च विकिरं तीर्थश्राद्धे विवर्जयेत् ” ॥  
इत्यर्घ्यादयश्च न । पाकश्राद्धे त्वर्घ्यादय एव न भवन्तीति विवेकः । ‘ हेमश्राद्धे पिण्डनिवृत्तिरपि’  
इति द्विवोदासः । स्मृत्यर्थसारे तु विकल्पः ।

मरीचिः “ आवाहने स्वधाकारे मन्त्रा ऊहा विसर्जने । अन्यकर्मण्यनूया स्युरामश्राद्धविधिः स्मृतः ” ॥ २०

‘ पितृन् हविषे अत्तवे’ इत्यत्र ‘ स्वीकर्तवे’ इति । ‘ नमो वः पितर इषे ’ इत्यत्र ‘ आमाय ’ इति ।

‘ तृप्तायात ’ इत्यत्र कप्रत्यस्थाने ‘ तृप्यत ’ इति लोट् इति भट्टचरणाः । ‘ तत्पर्यत ’ इति

लङन्तमूह्यमिति पारिजाते । ‘ इदमन्नम् ’ इत्यादौ ‘ इदमामम् ’ इत्यादि । अन्यकर्मणि ‘ विष्णो

हव्यं रक्षस्व ’ इत्यादावनूहः । यद्यपि प्रकृतावूहो न्यायेन न प्राप्नोति तथापि वचनेनानेन विधीयते ।

तथा ‘ पूयति वा एतदृचोऽक्षरं यदेनद्रूहति तस्मादृचं नोहेत् ’ इति सामान्यश्रुतिरप्यनया २५

विशेषस्मृत्या बाध्यते । इत्यपि ते । युक्तं तु न्यायप्राप्तबाधकत्वेनोपपन्नस्य वाक्यस्य न श्रौत-

निषेधबाधकत्वमिति । अतो ‘ अष्टङ्गमन्त्रेष्वेवोहः ’ इति । आमश्राद्धे कालमाह शातातपः

“ आमश्राद्धं तु पूर्वाह्णेऽपराह्णे पार्वणं भवेत् । एकोद्दिष्टं तु मध्याह्ने प्रातर्वृद्धिनिमित्तकम् ” ॥ इति ।

अन्नासंभवनिमित्तक आमश्राद्धेऽयं कालः । शूद्रं प्रति नित्याप्राते तु स्मृत्स्नरे

“ मध्याह्नात्परतो यस्तु कुतपः स उदाहृतः । आममात्रेण तत्रैव पितृणां दत्तमक्षयम् ” ॥ इति । ३०

हेमाद्रावपरार्के च पाकाभावनिमित्तके शूद्राधिकारिके चामश्राद्धे प्रातर्मध्याह्नोत्तरकालयोर्विकल्प

इति केचित् । बहूनां ब्राह्मणानामलाभे एकेनापि कार्यम् ।

“ अन्नाभावे द्विजाभावे तीर्थरूपे महालये । एकस्मिन्दीयते चाक्षमर्घ्यान्पिण्डान्पृथक्पृथक् ” ॥

इति वचनात् । एकस्याप्यलाभे देवलः

“ पात्रालाभेऽखिलं कृत्वा पितृयज्ञविधिं नरः । निधाय वा दर्भवदूत आसनेषु समाहितः ॥

“ प्रैषानुप्रैषसंयुक्तं विधानं प्रतिपादयेत् । सर्वाभावे क्षिपेद्ग्नौ गवे दद्यादद्याप्सु वा ॥

“ नैव प्राप्तस्य लोपोऽस्ति पेतृकस्य विशेषतः” । ‘श्राद्धं संपन्नम्’ इत्याद्याः प्रैषानुप्रैषाः । तान्स्वयमेव वदेदित्यर्थः । आमहेमपक्षयोः कालान्तरे ब्राह्मणाय दानम् । सर्वश्राद्धाशक्तौ देवलः

“ पिण्डमात्रं प्रदातव्यमभावे द्रव्यविप्रयोः । श्राद्धाहनि तु संप्राप्ते भवेन्निरशनोऽपि वा ” ॥

देवीपुराणे “सक्तुभिः पिण्डदानं च संयावैः पायसेन वा । कर्तव्यमृषिभिः प्रोक्तं पिण्याक्रेनेगुदेन वा” ॥

‘गुडेन वा’ इति वा पाठः । संयावो गोधूमविकारः । पिण्याकस्तिलकल्कः । इज्जुदं तापसतृफलम् ।

अङ्गिराः “ कल्पित्यबिल्वमात्रान्वा पिण्डान्दद्याद्विधानतः ।

“ कुक्कुटाण्डप्रमाणान्वा केषां चामलकैः समान् । बदरेण समान्वाऽपि दद्याच्छ्रद्धासमन्वितः” ॥

० पिण्डदानेऽप्यशक्तौ तर्पणमवश्यं कर्तव्यम् ।

“ तिलैः सप्ताष्टभिर्वाऽपि समवेतं जलाञ्जलिम् । भक्तिनम्रः समुद्दिश्य भुव्यस्माकं प्रदास्यति ” ॥

“यतः कुतश्चित्संप्राप्य गोभ्यो वाऽपि गवाह्निकम्” ॥ इत्यपिशब्दयुक्तपितृवचनात् । स्मृत्यन्तरे

“ तृणानि वा गवे दद्यात्पिण्डान्वा विधिपूर्वकम् । तिलोदकैः पितृन्वाऽपि तर्पयेत्सन्तानपूर्वकम् ॥

“ अग्निना वा दहेत्कक्षं श्राद्धकाले समागते । तस्मिंश्चोपवसेदह्नि जपेद्वा श्राद्धसंहिताम्” ॥ इति ।

१५ स्मृत्यन्तरे

“श्राद्धानुकर्त्तव्यः कुर्याज्जात्यवस्थाद्यपेक्षया । श्राद्धांशेनाप्यवाप्नोति मुख्यश्राद्धफलं नरः” ॥ इति ।

अथ श्राद्धे ऊहविचारः । तत्र ‘मातामहानामप्येवं तत्रं वा वैश्वदेविकम्’ इति वचनात्पितृपार्वणातिदेशे मातामहपार्वणे प्राप्तेऽपूर्वप्रयुक्तत्वान्मन्त्राणामूहः प्राप्नोति । आतिदेशिकस्य मन्त्रसंस्कारान्यतरस्यान्यथाभाव ऊहः । साम्नः प्रयोजनाभावादनुदेशः । तत्र च ‘पितृन् हविषे

२० अत्तवे’ ‘आयन्तु नः पितरः’ इत्यादिमंत्रगतपितृशब्दस्य प्रकृतिवन्मातामहश्राद्धेऽपि समवेतार्थत्वाद्यन्तराभावाच्चोहः । तथाहि द्वेधा हि पितृशब्दः प्रयुज्यते । क्वचिज्जनकत्वोपाधिना

‘पिता यस्य तु वृत्तः स्यात्’ इत्यादिषु क्वचित्सापिण्डीकरणान्तश्राद्धजन्यपितृत्वोपाधिना यथा

‘प्रेते पितृत्वमापन्ने सापिण्डीकरणात्’ इति ‘ततः प्रभृति वै प्रेतः पितृसामान्यमश्नुते’ इत्यादिषु ।

अत एव सर्वत्र पितृशब्दः प्रयुज्यते ‘षड्भ्यः पितृभ्यस्तदनु भक्त्या श्राद्धमुपकमेत्’

२५ ‘पितृपात्रेषु प्रेतपात्रं प्रसेचयेत्’ इत्यादिषु । एवं च पूर्वोक्ते मन्त्रजाते पितृशब्दस्य सापिण्डीकरणान्तश्राद्धजन्यपितृत्वपरत्वात्तस्य च मातामहादिष्वपि सद्भावाच्चोहः । तथा ‘पूयति वा एतदृचो-

ऽक्षरं यदेनदूहति तस्मादृचं नोहेत्’ इति प्रतिषेधादपि नोहः । तथा अन्तर्गुपेष्वापि मन्त्रेषु

‘एतद्वाः पितरो वासोऽमीमदन्त पितरः’ इत्यादिष्वपि पूर्वोक्तन्यायाच्चोहः । प्रतिषेधस्त्वभ्युच्चय-

मात्रमत्र । तस्यासाधारणाविषयस्तु ‘वीहीणां मेघसुमनस्यमानः’ इत्यादिरवगन्तव्यः । यत्तु

३० विष्णुवाक्यं ( ७५।८ )

“ मातामहानामप्येवं श्राद्धं कुर्याद्विचक्षणः । मन्त्रोहेन यथान्यायं शेषाणां मन्त्रवर्जितम् ” ॥ इति ।

तदपि न पूर्वोक्तेषु मन्त्रेषु ऊहं विदधाति ‘यथान्यायम्’ इत्यनेन न्यायप्राप्तानुवाद-

प्रतीतिः । अतो यत्र ‘शुन्धन्तां पितरः शुन्धन्तां पितामहाः शुन्धन्तां प्रपितामहाः’ इत्यादिषु



पितामहप्रपितामहोपादानेन पितृशब्दस्य जनकपरत्वान्मातामहादिमातृवर्गादिषु 'शुन्धतां माता-  
महः' शुन्धन्तां मातरः' इत्यादिरूपेण प्राप्तोहस्यानुवादः । न च 'प्रकृतौ त्रिवेकस्मिन्नितरि बहु-  
वचनस्यासमवेतत्वाद्विकृतावेकवचनान्त एव प्रयोज्य इति वाच्यम् 'प्रकृतौ बहुवचनस्यासमवेतार्थत्वे  
विकृतावाप्यविकृतस्यैव प्रयोगः' इति नवमे पाशाधिकरणे स्थितत्वात् । एवं च 'शुन्धन्तां  
मातामहाः' 'शुन्धन्तां मातरः' इत्याद्येवोह्यम् । येषां च 'पितृभ्यः स्वधोच्यतां पितामहेभ्यः ५  
स्वधोच्यतां प्रपितामहेभ्यः स्वधोच्यताम्' इति शुन्धनमन्त्रास्तेषामपि पूर्वोक्तन्यायेन भवत्येवोहः ।  
नन्वस्त्वेवमत्र 'एतद्वः पितरः' इत्यादिमन्त्रेषु पितृशब्दगतबहुवचनेन पितृशब्दो जनकपरोऽपि  
लिङ्गसमवायात्पित्रपितृसमुदाये वर्तते तादृशस्य च विकृतौ मातामहादिश्राद्धेऽसमर्थत्वात्प्रकृति-  
वदेव मातामहामातामहेषु मातामहा इत्यूहः । ऋद्धमन्त्रेषु वाक्यान्निषेधोऽनुद्धमन्त्रेषु कथं न  
प्राप्नोति' इति चेत् । उच्यते । पितृशब्दस्तावदुभयोर्वाचक इत्युक्तं । तत्र जनकपरत्वेऽङ्गीक्रिय- १०  
माणे गौणीप्रसक्तेरितरपरमेव गृह्यते । एवं च बहुवचनमप्युपपन्नं भवति । एवं च प्रकृतौ  
यादृशः शास्त्रार्थस्तादृश एव विकृतौ इति नोहप्रसङ्गः । अत्र पितामहचरणाः 'पितरेतत्ते  
ऽर्घ्यम्' इत्यादिषूहानूहविचारानवकाशः । एतस्याभिलाषमात्रत्वेन मन्त्रत्वाभावात् । अन्यथा  
'शेषाणां मन्त्रवर्जितम्' इत्युक्त्या शूद्रादीनां तथाभिलाषाप्रसक्तेः । अतोऽपौरुषेये वैदिकप्रसिद्धे  
मन्त्रशब्दो मुख्योऽन्यत्र गौणः । अत एव भावार्थपादे 'उहप्रचरनामाममन्त्रत्वम्' इत्याह १५  
भगवान्सूत्रकारः तेषां लोकैः प्रयुज्यमानत्वादित्याहुः । एकोद्दिष्टेऽपि 'शेषं पूर्ववदाचरेत्'  
इति पार्वणातिदेशात् 'पितृनिर्माँल्लोकान्' इत्यादिः प्राप्त ऊहो वचनाद्वाधितस्तथा 'शुन्धन्तां  
पितरः' इत्यादिषु न्यायादेव बाधित ऊह 'एकवन्मन्त्रानूहेतैकोद्दिष्टे' इति ( २।१२ ) विष्णु-  
वाक्येन प्रतिप्रसूयते । अस्यार्थः । एकोद्दिष्टे श्राद्धे क्षयाहादौ क्रियमाणे मन्त्रानेकवद्यथा भवति  
तथा ऊहेत इति क्रियाविशेषणम् । एतद्वः पितरः इत्यादिषु तु न्यायादेव प्राप्त ऊहो न वाक्येन २०  
विधीयते । इदं च पुराणप्रेतैकोद्दिष्टसाधारणम् । प्रेतैकोद्दिष्टे तु आश्वलायनगृह्यपरिशिष्टे पितृ-  
पदनिवृत्तिरेवोक्त । वैष्णवे तु एकवचनविधानम् । एवं च 'एतद्वः पितरः' इत्यादौ 'एतत्ते  
प्रेत' इत्यूहः । यत्तु कैश्चिदुक्तम् 'पुराणैकोद्दिष्टं पार्वणवदेव' प्रेतैकोद्दिष्टे तु विष्णुवाक्येन  
प्रेतशब्दैकवचनयोरूहो विधीयते । तत्र सपिण्डीकरणाभावेन पितृत्वानुत्पत्तेः । अत एवाऽऽश्व-  
लायनेन पितृपदनिवृत्तिरुक्ता इति । तत्र अस्य वाक्यस्य प्रेतैकोद्दिष्टविषयत्वे प्रमाणाभावात् २५  
प्रेतशब्दोहाप्रतीतिः । उभयविधाने वाक्यभेदात् । पुराणैकोद्दिष्टे वचनस्य सार्थक्याच्च । तस्माद-  
स्मदुक्त एवऽर्थो न्याय्यः । एवं मुख्यहृष्टार्थतास्वार्थसमवेतार्थतादिभिर्मन्त्राणामूहनिर्णयः कार्यः ।  
'शेषाणां मन्त्रवर्जितम्' इति पूर्वोक्तविष्णुवचनशेषः । एवं पितृव्यायेकोद्दिष्टे ऊहयोग्यपितृ-  
पदयुक्तमन्त्रपर्युदासार्थ इति शूलपाणिः । 'पितृव्यायेकोद्दिष्ट एवाऽऽवाहनादिमन्त्राणां पर्युदासार्थः'  
इति कल्पतरौ । उभयमप्येतत्प्रमाणशून्यम् । भोगस्त्रीणां शूद्रापुत्रस्य चैकोद्दिष्टे मन्त्र- ३०  
पर्युदासार्थम् इति पितामहचरणाः ।

"स्त्रीणाममन्त्रकं श्राद्धं तथा शूद्रासुतस्य च । प्राग्दिजाश्च व्रतादेशात्ते च कुर्युः सदैव तत्" ॥  
इति मरीचिस्मरणात् । 'स्त्रीणां सुतस्य च' इति संप्रदाने षष्ठी । द्विजा उपनयनात्प्राक् । ते च  
स्त्रीशूद्रासुता अमन्त्रकं कुर्युरित्यर्थः । अत्र 'स्त्रीणामित्यकृतविवाहस्त्रीपरम्' इति हेमाद्रिः ।  
अमन्त्रकमिति वैदिकमन्त्रनिषेधो न तु पौराणानाम् । इति दिक् । इत्यहविचारः ।

अथैकोद्दिष्टम् । तत्स्वरूपमाह याज्ञवल्क्यः ( आ. २५१-२५२ )

“ एकोद्दिष्टं देवहीनमेकार्षेयकपवित्रकम् । आवाहनाग्नौकरणरहितं ह्यपसव्यवत् ॥

“ उपतिष्ठतामित्यक्षय्यस्थाने विप्रविसर्जने । अभिरम्यतामिति वदेद्ब्रूयुस्तेऽभिरताः स्म ह ” ॥

इति कात्यायनः । ‘ स्वदितम् ’ इति तृप्तिप्रश्नः ‘ सुस्वदितम् ’ इत्यनुज्ञा इति । आश्वलायन-  
सूत्रानुसारिणां तु एकोद्दिष्टेऽप्यग्नौकरणादयो धर्माः पार्वणवद्भवन्ति । तत्सूत्रे ( ४।७।१ )

‘ अथातः पार्वणे श्राद्धे काम्य आभ्युदयिक एकोद्दिष्टे वा ’ इति चत्वारि श्राद्धानि प्रक्रम्याग्नौ-  
करणादिधर्माणां समानविधानतयोक्तत्वात् । अत एव गृह्यकारिकायाम्

“ आन्वष्टक्यं च पूर्वेषुर्मासि मास्यथ पार्वणम् । काम्यमभ्युदयेऽष्टम्यमेकोद्दिष्टमथाष्टमम् ॥

“ चतुर्ष्वथेषु साग्नीनां वल्लौ होमो विधीयते । पित्र्यब्राह्मणहस्ते स्यादुत्तरेषु चतुर्ष्वपि ” ॥

इत्येकोद्दिष्टे पाणिहोम उक्तः संगच्छते । ‘ सपिण्डीकरणान्तर्गते एकोद्दिष्टे पाणिहोमोऽन्यत्र होम  
एव न भवति ’ इति केचित् । तन्निविधम् । नवं नवमिश्रं पुराणं च इति । तत्र नवमाहाङ्गिराः

“ प्रथमेऽह्नि द्वितीयेऽह्नि पञ्चमे सप्तमे तथा । नवमैकादशे चैव तन्नवश्राद्धमुच्यते ” ॥ इति ।

वसिष्ठः

“ सप्तमेऽह्नि तृतीयेऽह्नि द्वितीये प्रथमे तथा । एकादशे पञ्चमे स्युर्नव श्राद्धानि षट् सदा ” ॥ इति ।

। षण्णां नवश्राद्धानामनन्तरं कर्तव्यं मासिकं नवमिश्रं तदाहाऽऽश्वलायनः ‘ नवमिश्रं षडुत्तरम् ’  
इति । प्रत्याब्दिकादि पुराणम् ।

“ चान्द्रायणं नवश्राद्धे प्राजापत्यं तु मासिके । एकाहस्तु पुराणेषु प्रायश्चित्तं विधीयते ” ॥

इति हारीतेन मासिकोत्तरभाव्याब्दिकादेः पुराणपदेन व्यवहृतत्वात् ।

एवं पार्वणमेकोद्दिष्टं चोक्तम् । संप्रत्युभयरूपं सपिण्डनमुच्यते । लोणाक्षिः “ श्राद्धानि षोडशा-  
ऽऽपाद्य विदधीत सपिण्डनम् ” ॥ इति । षोडशश्राद्धान्याह जातूकर्ण्यः

“ द्वादश प्रतिमास्यानि आद्यं षाण्मासिकं तथा । त्रैपक्षिकाब्दिके चेति श्राद्धान्येतानि षोडश ” ॥ इति ।  
आद्यम् ऊनमासिकम् । एवं च षाण्मासिकाब्दिकशब्दावपि ऊनषाण्मासिकोनाब्दिकपरौ द्वादश-  
मासिकानां भिन्नतयोक्तत्वात् । तेषां तु कालमाह याज्ञवल्क्यः ( आ. २५६ )

“ मृतेऽहनि तु कर्तव्यं प्रतिमासं तु वत्सरम् । प्रतिसंवत्सरं चैवमाद्यमेकादशेऽहनि ” ॥ इति ।

। सत्यप्याशौचे क्षत्रियादिनैकादशेऽह्नि श्राद्धं कार्यम्

“ आद्यं श्राद्धमशुद्धेऽपि कुर्यादेकादशेऽहनि । कर्तुंस्तात्कालिकी शुद्धिरशुद्धः पुनरेव सः ” ॥

इति शङ्खस्मृतेः । “ एकादशेऽह्नि यच्छ्राद्धं तत्सामान्यमुदाहृतम् । \*सूतकं तु पृथक्पृथक् ” इति  
पैठीनसिखचननादाशौचान्ते । ततः ‘ पिण्डदानं समाप्यते । ततः श्राद्धं प्रदातव्यं सर्ववर्णेष्वर्थ  
विधिः ’ इति तत्सर्ववर्णानां दशाहाशौचपरम् । पैठीनसिः “ मासिकानि स्वकाले तु दिवसे

। द्वादशेऽपि च ” ॥ इति ।

आद्यमासिकं मरणदिने प्राप्तमेकादशेऽह्नुत्कृष्यते । एव सांवत्सरिकमपि

“ मासपक्षतिथिस्पृष्टे यो यस्मिन् प्रियतेऽहनि । प्रत्यब्दं तु तथाभूतं क्षयाहं तस्य तं विदुः ” ॥

१ शः ज्ञा पाठः च-सप्तमेऽह्नि तृतीयेऽह्नि प्रथमे मध्यमे तथा; यनकघईअरट-सप्तमेऽह्नि तृती-  
हे प्रथमे नवमे तथा । \* श-पाठः । २ यनकघअबई-अत एव गोभिलः-ब्राह्मणं भोजयेदाद्ये होतव्यमन  
ज्वा । भोजयेद्विप्रं द्विरावृत्तिर्भवेदिति । इदं चाद्यमासिकाद्यसिद्धयर्थमिति पितामहचरणा इत्यधिकः पाठः ।

इति स्मृत्या मरणतिथौ प्राप्तमेकादशेऽह्नुत्कृष्यते । संप्रति केषांचिद्द्वितीयवर्षाद्यतिथौ क्रियमाणे प्रथमाब्दिकव्यवहारस्तु भ्रमात् । न च अब्दान्ते भवमाब्दिकम् इति व्युत्पत्त्या व्यवहारोपपत्तिः । 'मासपक्षतिथिस्पृष्टे' इतिवाक्यस्य प्रथमवर्षीयमृततिथौ प्रवृत्तौ बाधकाभावात् । मासिकेषु 'मासादौ भवं मासिकम्' इत्याद्यद्वितीयादिमासिकव्यवहारस्य सर्वैरविप्रतिपत्त्याङ्गीकाराच्च । यत्तु लौगाक्षिवचनं

“मासादौ मासिकं कार्यमाब्दिकं वत्सरेऽपते । आद्यमेकादशे कार्यमाधिके त्वधिकं भवेत्” ॥ तदप्यगत इति व्याख्येयम् । केचित्तु मासिकस्योत्कर्षो वार्षिकस्यापकर्षोऽनेन वचनेन विधीयते इति । एतेन यन्माधवादिभिर्द्वितीयाब्दाद्यदिनक्रियमाणस्याब्दिकत्वभ्रमात् 'मलमासे प्रथमाब्दिकं कार्यम्' इति वाक्यानुसारेण मलमासे कर्तव्यत्वमुक्तं तदप्यपास्तम् । \*यत्तु

“आब्दिकं प्रथमं यत्स्यान्न कुर्वीत मलिम्लुचे । त्रयोदशे तु संप्राप्ते कुर्वीत पुनराब्दिकम्” ॥ १०

इति मलमासे प्रथमाब्दिकं विधाय यमवाक्ये संप्राप्त इति पदस्वारस्यात् । अन्यथा संप्राप्तपदस्यातीतपरत्वव्याख्यानकेशः स्यात् । पुनराब्दिकं द्वितीयाब्दिकं त्रयोदशे मासि प्राप्ते कार्यमित्येतदपि मासपक्षवाक्यप्राप्तमेवानुद्यत इति । \*यत्तु

“प्रत्यब्दं द्वादशे मासि कार्या पिण्डक्रिया सुतेः । कचित्रयोदशेऽपि स्यादाद्यं मुक्त्वा तु वत्सरम्” ॥ इति वचः 'द्वादशे मास्यतीते प्रत्यब्दं पिण्डक्रिया श्राद्धं कार्यम् । कचिन्मलमासवति वर्षे तु आद्यं वत्सरमाद्याब्दिकं मुक्त्वा त्रयोदशे मास्यतीते कार्यम् । आद्याब्दिकं तु त्रयोदशमासमध्य एव कार्यमिति यावत्' इति व्याख्यायात्र साधकमुक्तम् । तदपि न । एतद्वचने हि मलमासवति वर्षे सति त्रयोदशेऽतीति आब्दिकं कार्यमित्येव विधीयते । नान्यत्किञ्चित् । अन्यत्तु मासपक्षवाक्येन प्राप्तम् । प्रत्यब्दं द्वादशे मासीत्येतच्चान्तराधिमामासपाताभावे । तत्सद्भावे तु त्रयोदशेऽतीत एव । तदुक्तं विष्णुधर्मोत्तरे

“संवत्सरस्य मध्ये तु यदि स्यादधिमामासकः । तदा त्रयोदशे मासि क्रिया प्रेतस्य वार्षिकी” ॥ इति ।

त्रयोदशेऽतीति वार्षिकी ऊनाब्दिकाब्दिकसापिण्डीकरणरूपा मलमासमृतस्याऽऽद्याब्दिकं तु सत्यापि सममासे प्रथमदिन एव कार्यम् । दाहादिसापिण्डनान्तकृत्यस्य मलमासेऽपि प्रतिप्रसूतत्वात् । यत्तु मिताक्षरायाम् 'आद्यमेकादशेऽहनि' इत्यत्राद्यपदेनैकोद्दिष्टान्तरप्रकृतिभूतमेकोद्दिष्टमुच्यते' इति तत्र प्रमाणं चिन्त्यम् । अत आद्याब्दिकमाद्यमासिकं चैकादशेऽह्नि महैकोद्दिष्टेन सह तन्त्रेण कार्यं द्वितीयाब्दाद्यदिनकार्यतया विहितं च शुद्धमास एवेति दिक् । एकादशाहकर्तव्यैकोद्दिष्टप्रक्रमे कौर्मे

“एकादशेऽह्नि कुर्वीत प्रेतमुद्दिश्य भावतः । द्वादशे वाऽथ कर्तव्यमनिन्येऽप्यथवाऽहनि” ॥

तत्क्रम एव बौधायनः “तदेकोद्दिष्टमेव स्याद्द्वादशेऽहनि वा पुनः ॥

“अथवोर्ध्वमयुग्मेषु कुर्वीताहसु शक्तितः । अर्धमासेऽथवा मासे ऋतौ संवत्सरेऽपि वा” ॥ इति । ३०

ऊनमासिककालमाह श्लोकगौतमः

“एकद्वित्रिदिनैरुने त्रिभागेनो न एव च । श्राद्धन्यूनान्दिकादीनि कुर्यादित्याह गौतमः” ॥ इति ।

एकद्वित्रिदिनैस्त्रिभागेन वाऽऽद्ये षष्ठे द्वादशे च मास्यून इत्यर्थः । केचित्तु एकदिनन्यूनतापक्षमाश्रित्य षष्ठ्यादौ मृतस्य पञ्चम्यादावूनमासिकाद्याचरन्ति तद्भूमूलकम् । षष्ठ्यां मृतस्य

पञ्चम्यां मासपक्षयोः समाप्तिरेव भवति न त्वेकदिनन्यूनताऽस्ति । तेन षष्ठ्यादौ मृतस्य चतुर्थ्यादावेव कार्यं न तु पञ्चम्यादाविति । अतः

“एकाहेन तु षण्मासा यदा स्युरपि वा त्रिभिः । न्यूनः संवत्सरश्चैव स्यातां षाण्मासिके तदा ” ॥  
इति जातूकर्ण्येन एकाहन्यूनतोक्ता संगच्छते । यत्तु

“ षाण्मासिकाब्दिके श्राद्धे स्यातां पूर्वैद्युरेव ते । मासिकानि स्वकीये तु दिवसे द्वादशेऽपि वा ” ॥  
इति पैठीनसिवचनं तदपि माससमाप्तेः पूर्वैद्युरित्येव व्याख्येयं न तन्मृताहात्पूर्वैद्युरिति । एकाहेन त्वित्यादिविरोधात् । यत्तु कैश्चिद्दहःपदं तिथिपरं व्याख्यातं तदपि प्रमाणाभावाद्बुद्ध्यम् ।  
ऊनमासिके कालान्तरमाह गालवः “ मरणाद्द्वादशाहे स्यान्मास्यूने वोनमासिकम् ” ॥ इति ।  
ऊनेषु कंचित्कालं निषेधति गार्ग्यः

१० “ नन्दायां भार्गवादिने चतुर्दश्यां त्रिपुष्करे । ऊनश्राद्धं न कुर्वीत गृही पुत्रधनक्षयात् ” ॥ इति ।  
त्रिपुष्करादियोगमाह वसिष्ठः

“रविरविजभौमवारे भद्रायां विषमपादऋक्षं चेत् त्रिपुष्कराख्ययोगोऽयं त्रिगुणफलदो यमलभैर्द्विगुणम् ॥  
‘ त्रितयं च गवां दद्यात्तद्दोषस्यापनुत्तये विद्वान् । द्वितयं द्विपुष्करेऽपि च तिलपिष्टैर्विप्रमुख्येभ्यः ” ॥ इति ।  
पुराणे ‘ सपिण्डीकरणादर्वीकुर्याच्छ्राद्धानि षोडशाऽएकोद्दिष्टविधानेन कुर्यात्सर्वाणि तानि तु ” ॥ इति ।

१५ षोडशश्राद्धेष्वहिताग्नेर्विशेषमाह जातूकर्ण्यः

“ ऊर्ध्वं त्रिपक्षाद्यश्राद्धं मृताहन्येव तद्भवेत् । अधस्तु कारयेद्वाहादाहिताग्नेर्द्विजन्मनः ” ॥ इति ।  
एतानि च षोडशश्राद्धानि यदा सपिण्डनार्थं ततः प्राग् वृद्धचर्यमुत्तरं चैकदिनेऽप्यकुर्वन्ते ।  
‘ मासिकं चोदकुम्भं च यद्यदन्तरितं भवेत् । तत्तदुत्तरसातन्यादनुष्ठेयं प्रचक्षते ” ॥

इतिवाक्यात्पूर्वमुत्तरेण सहोत्कृष्यते वा तदा दार्शिकादिपितृमातामहादिपार्वणादिवत्सर्वेषा-

२० मारादुपकारकाणां संभवतां पाकादिसन्निपातिनां च तन्त्रं निर्विवादम् । देशकालकर्त्रेक्यात् । दुण्ड-  
पद्धतौ तु ‘ सान्नाय्यप्राजापत्येष्विव संप्रतिपन्नदेवताकत्वात्प्रधानरूपविप्रभोजनपिण्डदानानामपि  
तन्त्रता ’ इत्युक्तम् । भ्रातृचरणस्तु ‘ सङ्ख्यान्यशब्दान्तरादिना सप्तदशप्राजापत्यान् ’  
इत्यादिद्रव्यसमानाधिकरणसङ्ख्याया वाऽवगतभेदानां कर्मणां देशकालाद्यैक्ये यद्यपि तन्त्रताऽस्ति  
तथापि कर्मसमानाधिकरणसङ्ख्यावगतभेदानां न सा शास्त्रे क्वापि तथानङ्गीकारात् ’

२५ इत्याहुः । अयं च तदाशयः । औपचितिककर्मसमानाधिकरणसङ्ख्याश्रुतौ ‘ पृथक्त्वनिवेशात्सङ्ख्याया  
कर्मभेदः स्यात् ’ इति सूत्रानुसारात् पृथक्त्वगुणविशिष्टान्याक्षिप्तपृथक्त्वानि सङ्ख्यामात्रविशिष्टान्येव  
वा कर्माणि विहितानि । तन्त्रतायां तु तद्वाधः स्यात् । अभ्यासादिभिस्तु कर्मवैजात्य-

मात्रावगतेस्तन्त्रत्वे न कस्यचिद्वाधः । ‘ सप्तदशप्राजापत्यान्पशून् ’ इत्यादिद्रव्यसमानाधिकरण-  
सङ्ख्यावगतभेदेषु तु कर्मसु पृथक्त्वस्य सङ्ख्याया वाऽश्रुतत्वान्न तद्वाधः । श्रुता पश्वादिद्रव्यगता  
३० सप्तदशदिंसंख्या तु यागतन्त्रत्वेऽपि नैव बाध्यते । अतः प्रधानभूतान्नत्यागपिण्डदानानि पृथगेव  
सर्वाण्यारादुपकारकाणि संभवन्ति पाकादीनि सन्निपातीनि वाऽङ्गानि तन्त्रेण इति दिक् ।

अथ वृषोत्सर्गः । तत्कालः षट्त्रिंशन्मते

“ एकादशाहे प्रेतस्य यस्य नोत्सृज्यते वृषः । पिशाचत्वं स्थिरं तस्य दत्तैः श्राद्धशतैरपि ” ॥

कालान्तरं भविष्योत्तरे

“ कार्तिक्यामथवा माघ्यामयने वा युधिष्ठिर । चैत्र्यां वाऽपि तृतीयायां वैशाख्यां द्वादशेऽहि वा ” ॥

विष्णुधर्मोत्तरेऽपि

“ अश्वयुक्शुक्लपक्षस्य पञ्चदश्यां नराधिप । कार्तिकेऽप्यथवा मासि वृषोत्सर्गं तु कारयेत् ” ॥

कारयेदिति णिजविवक्षा । “ ग्रहणे द्वे महामुख्ये तथा चैवायनद्वये ।

“ विषुवद्वितये चैव मृताहे बान्धवस्य च । उत्सृजेन्नीलकण्ठं वै कौमुद्याः समुपागमे ” ॥

नीलकण्ठो नीलवृषः । तल्लक्षणं वक्ष्यते । कौमुदी आश्विनकार्तिकयोः पूर्णिमा ।

अकरणे निन्दा मत्स्यपुराणे

“ न करोति वृषोत्सर्गं तीर्थं वाऽपि जलांजलिम् । न ददाति सुतो यस्तु पितुरुच्चार एव सः ” ॥

पुराषोत्सर्गतुल्य इत्यर्थः । तद्देशः कालिकापुराणे

“ अरण्ये चत्वरे वाऽपि गोष्ठे वा मोचयेद्वषम् । न गृहे मोचयेद्विद्वान्कामयन्पुष्कलं फलम् ” ॥

ब्राह्मेऽपि “ प्रागुदकप्रवणे देशे मनोज्ञे निर्जने वने ” ॥ कार्यं इति शेषः । वृषलक्षणं ब्राह्मे

“ वृषभः कृष्णसारस्तु प्रत्यक्षस्तु त्रिहायनः । मनोज्ञो दर्शनीयश्च सर्वलक्षणसंयुतः ” ॥

विष्णुरप्याह (८३३-८) “ तत्रादावेव वृषभं परीक्षेत । जीववत्सायाः पुत्रं । सर्वलक्षणोपेतं । नीलं लोहितं वा पुच्छपादेषु सर्वशुक्लं । यूथस्याच्छादकम् ” । नीललक्षणं रेवाखण्डे ब्रह्माण्डपुराणे १५

“ लोहितो यस्तु वर्णेन मुखे पुच्छे च पाण्डुरः । श्वेतः खरविषाणाभ्यां स नीलो वृष उच्यते ॥

“ चरणाश्च मुखं पुच्छं यस्य श्वेतानि गोपतेः । लाक्षारससवर्णं च तं नीलमिति निर्दिशेत् ॥

“ वृषः स एव मोक्तव्यो न स धार्यो गृहे भवेत् ॥

“ एष्टव्या बहवः पुत्रा यद्येकोऽपि गयां व्रजेत् । यजेत वाऽश्वमेधेन नीलं वा वृषमुत्सृजेत् ” ॥

इदं त्वर्थवादमात्रम् । अथ विधिर्भविष्योत्तरे कृष्णः

“ साण्डं नीलं शंखपादं सपौण्ड्रं श्वेतपुच्छकम् । गोमिश्रतुर्भिः सहितमुत्सृजेत्तं विधिं शृणु ॥

“ मातरः स्थापयित्वा च पूजयेत्कुसुमाक्षतैः । मातृश्राद्धं ततः कुर्यात्सदाऽभ्युदयकारकम् ॥

“ अकालमूलं कलशमश्वत्थदलशोभितम् । तत्र रुद्रान् जपित्वा तु स्थापयेद्गुद्रवैतम् ” ॥

रुद्रान् रुद्राध्यायं जप्त्वा रुद्रदैवतं कलशं स्थापयेदित्यर्थः ।

“ सुसमिद्धं ततः कृत्वा वह्निं मन्त्रपुरस्सरम् । आज्येन जुहुयात्पद्भिः पृथगाहुतिसंस्कृतैः ॥

“ पौष्णमन्त्रैस्ततः पश्चाद्भुत्वा वह्निं यथाविधि । एकवर्णं द्विवर्णं वा लोहितं श्वेतमेव वा ॥

“ चतस्रो वत्सतर्यश्च ताभिः सार्द्धमलंकृतम् । तासां कर्णे जपेद्विप्रः पतिं वो बलिनं शुभम् ॥

“ ददामि तेन सहिताः क्रीडध्वं हृष्टमानसाः । ततो वामे त्रिशूलं च दक्षिणे शङ्खमालिखेत् ॥

“ अङ्कितं शङ्खचक्राभ्यां चर्चितं कुसुमादिना । पुष्पमालावृताशीवं श्वेतच्छत्रैश्च छादितम् ॥

“ विमुचेद्वात्सिकामिश्रं चतसृभिर्बलिनं वृषम् । देवालये गोकुले वा नदीनां संगमे तथा ॥

“ इत्युक्तं गर्गमुनिना विधानं वृषमोक्षणं ” इति ।

जपे विशेषो विष्णुधर्मोत्तरे रुद्रजपमुक्त्वा

“ तथैव पौरुषं सुक्तं कूष्माण्डानि तथैव च ” ॥ इति ।

पौरुषं ‘ सहस्रशीर्षेति ’ षोडशर्चम् । ‘ यद्देवा देवहेडनम् ’ इति कूष्माण्डाः । आदित्यपुराणे

“ सावित्री च जपेत्तत्र तथा चैवाऽऽधमर्षणम् ” । इति । पारस्करोऽपि विशेषमाह  
 “ अथालंकृत्य तान् सर्वान् रुद्राध्यायं समाहितः । श्रावयेत्पौरुषं सूक्तं तथाऽप्रतिरथानि च ” ॥ इति ।

अप्रतिरथानि ‘ आशुः शिशानः ’ इति द्वादश ऋचः । विष्णुधर्मोत्तरेऽपि ‘ मन्त्रं  
 पितावत्स इति प्रतीतं जपेदसव्ये वृषभस्य कर्णे ’ असव्ये दक्षिणे । ‘ पितावत्स ’ इति मन्त्रोऽथर्व-  
 ५ वदे । वत्सतरीसङ्ख्यायां विशेष आदित्यपुराणे “ अष्टौ वाथ चतस्रो वा यथालाभमथापि  
 वा ’ इति ‘ यथालाभं द्वे एका वा ’ इति । तथा च देवीपुराणे  
 “ चतस्रो वत्सिका भद्रे द्वे वा संभवतोऽपि वा । वत्सः सर्वाङ्गसंपूणः कन्यका वत्सिका भवेत् ” ॥  
 एका इत्यर्थः । “ विवाहस्वेकवत्सर्था नीलेन भवता सदा ” । इति ।

एकवत्सरी एकवर्षा । तथा तत्रैव ‘ त्रिहायनीभिर्धन्याभिः सुरूपाभिश्च शोभितः ’ इति ।  
 १० एवं ‘ यदैका वत्सतरी तदा एकवर्षा । यदा द्वे बह्व्यो वा तदा त्रिहायन्यः ’ इति विवेकः ।  
 ताश्चागुर्विण्यः ‘ विसर्ज्यस्याप्यगुर्विण्यो देया गावो वृषस्य च ’ इति सौरपुराणोक्तेः । होमे  
 विशेषं विष्णुराह ‘ गवां मध्ये सुसमिद्धमग्निं परिस्तीर्य पौष्णं चरं श्रपयित्वा ‘ पूषा गा अन्वेतु  
 नः इहरतिः ’ इति च हुत्वा वृषभमानीयायस्कारमावाहयेत् ’ इति । होमानन्तरकृत्य सौरपुराणे  
 “ ततो वृषभमानीय अग्नेरुत्तरतः स्थितम् । सव्यस्फिजि लिखेच्चक्रं शूलं बाहौ तु दक्षिणे ॥

१५ “ कुङ्कुमेनाङ्कयित्वाऽऽदौ ब्राह्मणः सुसामाहितः ” । स्फिजि वामकटिभागे ॥

“ तप्तेन घातुना पश्चादयस्कारोङ्कयेद्द्ववृषम् ” ॥

कुङ्कुमेकनाङ्ककरणं ब्राह्मणस्य तप्तलोहेनायस्कारस्य इति भेदः । तदुत्तरकृत्यं विष्णुधर्मोत्तरे  
 “ अङ्कितं स्थापयेत्पश्चात्स्थाने तस्य तथा पठेत् । हिरण्यवर्णोति च ऋचश्चतस्रो मनुजेश्वर ” ॥  
 “ अपोहिष्ठेति तिस्रश्च शन्नो देवीरिति च श्रावयेत् ” । इति विष्णुक्तेः ।

२० ‘ हिरण्यवर्णाः ’ इति ऋचोऽथर्ववेदे प्रसिद्धाः । एते च करणमन्त्राः । ‘ हिरण्यवर्णा ’ इति  
 चतसृभिः ‘ शन्नो देवीरिति ’ च स्नापयेत् । इति । स्नाने जलमाह पारस्करः

“ अकालमूलान्कलशानष्टौ स्रग्दामवेष्टितान् । सरत्नांश्च स्वस्त्रांश्च चूतपल्लवशोभितान् ॥

“ स्थापयित्वा चतुर्भिस्तु संस्नाप्यो वृषभस्ततः । चतुर्भिर्वत्सिकाः स्थाप्यास्ततः सर्वान्विभूषयेत् ॥

‘ ऋचः समुद्रज्येष्ठाद्याः कीर्तयेदभिषेचने ” ॥ इति

२५ अनन्तरकृत्यं विष्णुधर्मोत्तरे

“ अलंकुर्यात्ततः पश्चाद्बन्धमाल्यैश्च शक्तितः । किङ्किणीभिश्च रम्याभिस्तथा नीचांशुकैः शुभैः ” ॥

आदित्यपुराणेऽपि “ घण्टां लोहकुतां दद्याच्छृङ्गे च पटलं शुभम् ” ॥

पटलं सुवर्णादिनिर्मितः कोशः । शिवधर्मोत्तरे

“ रक्तपीतैश्च कुसुमैः कुङ्कुमाद्यैश्च वर्णकैः । यथाशोभं समालभ्य विभवैः पूजयेद्बृषम् ॥

३० “ अष्टाङ्गलिप्रविस्तीर्णां हेमपट्टविनिर्मिताम् । राजतीं चर्मणो वाऽपि मालामुरसि विन्यसेत् ॥

“ तद्विधां पृष्ठमालां च पुच्छान्तिकमुदञ्चिताम् । घण्टां कांस्यमयीं शुद्धां गले बध्नीत सुस्वनाम् ॥

“ खुरैः सौवर्णरौप्यैश्च केयूराङ्गदभूषितम् । पट्टवस्त्रैर्विचित्रैश्च यथाशोभमलंकृतम् ” ॥



‘ उत्सृजेत् ’ इत्यर्थः । अतः श्राव्याणि जप्यानि च सूक्तानि ।

विष्णुधर्मोत्तरे

“ ततोऽङ्किते जपेन्मन्त्रमिमं प्रथतमानसः । वृषो हि भगवान्धर्मश्चतुष्पादः प्रकीर्तितः ॥

“ वृणोमि तमहं भक्त्या स मां रक्षतु सर्वतः । इति प्रार्थ्य वृषेन्द्रं तं गृहीतकुसुमाञ्जलिः ॥

“ त्रिः प्रदक्षिणमावृत्य नमस्कुर्याद्यथाविधि । प्रत्यङ्मुखीनां तु गवामेतावान्विधिरिष्यते ॥ ५

“ अथेशान्याभिमुखतः कुर्याद्वावो वृषं तथा । गावो वृषस्योभयतो वृषं मध्ये निवेश्य च ॥

“ सर्वेषां कण्ठस्त्राणि श्लेषयेत्तु परस्परम् । अयं हि वो मया दत्तः सर्वासां पतिरुत्तमः ॥

“ तुभ्यं चैता मया दत्ताः पत्न्यः सर्वा मनोरमाः । संयोज्येति वृषं गोभिः पितृभ्यस्तं निवेदयेत् ॥

“ सव्येन पाणिना पुच्छं समालभ्य वृषस्य तु । दक्षिणेनाप आदाय सकुशाः सतिलास्ततः ॥

“ ततो गोत्रं समुच्चार्य अमुकस्मा इति ब्रुवन् । वृष एव मया दत्तस्तं तारयत सर्वदा ॥ १०

“ सहेम सलिलं भूमावित्युच्चार्य विनिक्षिपेत् ” ॥

अत्रायं हि वो मया दत्तः इति मन्त्रो बहुगोपक्षे समवेतः स एकद्विपक्षे ऊहनीय इति केचित् । अन्ये तु बहुगोयुक्तप्रयोगस्यैकद्विगोयुक्तप्रयोगस्य च प्रकृतिविकृतिभावाभावात् ‘व्रीहीणां मेघ’ इत्यस्येव यवप्रयोगे बहुमन्त्रस्य लोपमाहुः । युक्तं चैतत् । ‘अमुकस्मा’ इत्यत्रैकोद्देशेन क्रियमाणे एकस्य नाम ग्राह्यं बहुपितृद्देशेन तु क्रियमाणे बहूनां नाम इति । अनन्तरकृत्यमाह १५  
विष्णुः ( ८६।१७ ) ‘ वृषं वत्सतरीयुक्तमैशान्यां कालयेद्दिशि ’ । कालयेत्प्रणोदयेत् । तत्र मन्त्रमाह स एव (१६) “ एनं युवानं पतिं वो ददामि तेन क्रीडन्तीश्वरथप्रियेण । माहास्महि ” इत्यादि । कात्यायनस्तु ‘ माहास्महि ’ इत्यादेः स्थाने ‘ मा नः सासजनुषा सुभगा रायस्पोषेण समिषा मदेम ” इति पपाठ । ब्राह्मे

“अथ वृते वृषोत्सर्गे दाता वक्रोक्तिभिः पदैः । ब्राह्मणानाह यत्किञ्चिद्येनोत्सृष्टं तु निर्जने ॥ २०

“ तत्कश्चिदन्यो न नयेद्विभाज्यं न यथाक्रमम् ” ॥ इति ।

निर्जने केनचिद्यत्किञ्चिदुत्सृष्टं तदन्येन न नेयं न च विभाज्यम् इति ब्राह्मणान्प्रति दाता वदेदित्यर्थः । पारस्करः

“ बहुतोयतृणेऽरण्ये क्षेपणीयः स गोपतिः । वत्सतर्थाश्च ताः सर्वास्तेनैव सह कालयेत् ॥

“ अथवा गोकुले क्षेप्या बहुगोधनसङ्कुले ” । शिवधर्मोत्तरे २५

“ निर्गते गोपतौ तत्र ब्राह्मणान् स्वस्ति वाचयेत् । दद्याच्च दक्षिणां तेषां ब्राह्मणान्भोजयेत्ततः ॥

“ सहिरण्यं रुद्रकुम्भं तथा स्नानघटानपि । होत्रे प्रदद्यात्तत्सर्वं धेनुं चैव पयस्विनीम् ” ॥

मुक्तवृषस्य धारणादि निषेधति पारस्करः

“ विधारेयन्न तं कश्चिन्न च कश्चन वाहयेत् । न दोहयेच्च ता धेनूर्न च कश्चन बन्धयेत् ” ॥ इति ।

ब्राह्मे “ नासौ बाह्यो न तत्क्षीरं पातव्यं केनचित्कचित् ” ॥ इति । ३०

वृषोत्सर्गफलमुक्तं देवीपुराणे

“ एवं कृत्वा ह्यवाप्नोति फलं वाजिमखोदितम् । यमुद्दिश्य सृजेद्वत्सं स लभेताविचारणात् ” ॥ इति ।

तत्रैव “ एवं वृषोत्सर्गविधिं नरो यः करोति भक्त्या निजपूर्वजानाम् ॥

“ उद्धृत्य ताम्दुर्गतिपङ्कममन्नं स्वयं स लोकं समुपैति शम्भोः ” ॥

इति वृषोत्सर्गविधिः । ३५

अथ मृतशय्यादानविधिः ।

स च जीवच्छय्यादानेतिर्कटव्यतातिदेशपरिपूर्ण इति तत्पूर्वकमुच्यते हेमाद्रौ भविष्ये

“ तस्माच्छय्यां समासाद्य सारदारुमयीं दृढाम् । दन्तपत्रचितां रम्यां हेमपादैरलङ्कृताम् ॥

“ हंसतूलीप्रतिच्छन्नां शुभगण्डोपधानिकां । प्रच्छादनपटगिन्धधूपदीपाधिवासिताम् ॥

५ “ तस्यां संस्थापयेद्धैमं हरिं लक्ष्म्या समन्वितम् ” । अत्र हरिस्थाने प्रेतं तच्छीर्षिके धनभूतं कलशं परिकल्पयेत् ।

“ ताम्बूलकुङ्कुमक्षोदकर्पूरागरुचन्दनम् । दीपकोपानहच्छत्रचामरासनभाजनम् ॥

“ पार्श्वेषु स्थापयेद्भक्त्या सप्त धान्यानि चैव हि ।

“ शयानस्यापि भवति यदन्यदुपकारकम् । शृङ्गारकरकाद्यं तु पञ्चवर्णवितानकम् ” ॥

१० मन्त्रस्तु

“ यथा न कृष्ण शयनं शून्यं सागरजातया । शय्या ममाप्यशून्याऽस्तु तथा जन्मनि जन्मनि ॥

“ यत्स्यादशून्यं शयनं केशवस्य शिवस्य च । शय्या ममाप्यशून्याऽस्तु तथा जन्मनि जन्मनि ॥

“ दत्तैव तस्य सैकलं प्रणिपत्य विसर्जयेत् । एकादशाहेऽपि तथा विधिरेष प्रकीर्तितः ॥

“ विशेषं चात्र राजेन्द्र कथ्यमानं निशामय ।

१५ “ तेनोपयुक्तं यत्किञ्चिद्वस्त्रवाहनभाजनम् । यद्यदिष्टं च तस्यासीत्तत्सर्वं परिकल्पयेत् ॥

“ तमेव पुरुषं हैमं तस्यां संस्थापयेत्सदा । पूजयित्वा प्रदातव्या मृतशय्या यथोदिता ॥

पद्ममात्स्ययोः

“ मृतकान्ते द्वितीयेऽह्नि शय्यां दद्यात्सुलक्षणां । काञ्चनं पुरुषं तद्वत्फलवस्त्रसमन्वितम् ॥

“ संपूज्य द्विजदाम्पत्यं नानाभरणभूषितम् । उपवेश्य तु शय्यायां मधुपर्कं ततो वदेत् ॥

२० “ वृषोत्सर्गं च कुर्वीत देया च कपिला शुभा ” ॥ इति । शय्यादानफलं भविष्ये

“ स्वर्गे पुरन्दरपुरे सूर्यपुत्रालये तथा । सुखं स्वपितृसौ जन्तुः शय्यादानप्रभावतः ॥

“ ताडयन्ति न तं याम्याः पुरुषा भीषणाननाः । न धर्मेण न शीताद्यैर्बाध्यते स नरः क्वचित् ॥

“ अपि पापसमायुक्तः स्वर्गलोकं स गच्छति । विमानवरमारूढः सेव्यमानोऽसुरोगणैः ॥

“ आभूतसंप्लवं यावत्तिष्ठत्यन्तःकवर्जितः ” ॥ इति ।

२५ अथोदकुम्भश्राद्धम् । हेमाद्रौ स्मृतिसमुच्चये

“ एकादशाहातप्रभृति षट्स्तोयान्नसंयुतः । दिने दिने प्रदातव्यो यावत्संवत्सरं सुतैः ” ॥

सपिण्डीकरणानन्तरमपि वत्सरपर्यन्तं देय इत्याह याज्ञवल्क्यः ( आ. २.५५ )

“ यस्य संवत्सरादर्वाक् सपिण्डीकरणं भवेत् । तस्याप्यन्नं सोदकुम्भं दद्यात्संवत्सरं द्विजः ॥ ” इति ।

अत्र विशेषमाह मदनरत्ने गौतमः

३० “ अदैवं पार्वणश्राद्धं सोदकुम्भं सधर्मकम् । कुर्यात्प्रत्याब्दिकाच्छ्राद्धात्सङ्कल्पाविधिनाऽन्वहम् ” ॥

पिण्डदानं चात्र वैकल्पिकम् । तथाच पारस्करः ( ३.१०.५४-५५ ) ‘ अहरहस्तमस्मै

ब्राह्मणायोदकुम्भं च दद्यात् । पिण्डभक्ष्येके पुणन्ति ’ इति ।

अथ सपिण्डीकरणं । एवं वृषोत्सर्गसहितानि षोडशश्राद्धानि कृत्वा ततः सपिण्डीकरणं

कुर्यात् । सपिण्डीकरणस्याष्टौ कालाः

भारते “ सपिण्डीकरणं कुर्याद्यजमानस्त्वनाग्निमान् । अनाहिताग्नेः प्रेतस्य पूर्णेऽब्दे भरतर्षभ ॥  
“ द्वादशेऽहनि षष्ठे वा त्रिपक्षे वा त्रिमासि वा । एकादशे वाऽपि मासे मङ्गलं स्यादुपस्थितम् ” ॥

एते च सप्तकाला उभयोरनग्नित्वे इच्छया विकल्प्यन्ते । ‘ षष्ठ ’ इत्यत्र व्यवहितमपि  
‘ मासि ’ इत्यनुषज्यते । सन्निहितपक्षपदानुषङ्गे ‘ त्रिमासि ’ इत्यनेन पौनरुक्त्यापातात् । ५  
‘ त्रिपक्षे त्रिमासि ’ इत्यादौ पूरणप्रत्ययार्थविवक्षया तृतीये पक्षे तृतीये मासे पूर्णे इत्यर्थः ।  
हेमाद्रौ तु ‘ त्रिमासं विहाय षडेवानाहिताग्नेः कालाः ’ तत्रापि ‘ अब्दान्ते अभ्युदयागमे च ’  
इति द्वौ मुख्यावयवेऽनुकल्पा इत्युक्तम् । बौधायनः “ अथ संवत्सरे पूर्णे सपिण्डी-  
करणं त्रिपक्षे वा तृतीये वा मासि षष्ठे वैकादशे वा द्वादशे वैकादशाहे वेति ” । पैठीनसिः  
“ संवत्सारान्ते विसर्जनं नवममास्यामित्येक ” इति । चिष्णुः “ मासिकार्थवद्द्वादशाह- १०  
श्राद्धं कृत्वा त्रयोदशेऽह्नि श्राद्धं कुर्यान्मन्त्रवर्जं शूद्राणां द्वादशेऽह्नि संवत्सराभ्यन्तरे यद्यधिमामसो  
भवेत्तदा मासिकार्थादिनमेकं वर्धयेदिति ” । अयमर्थः—आशौचोत्तरं द्वादशस्वहस्सु द्वादश  
मासिकानि तेष्वेवाद्यद्वितीयषष्ठद्वादशदिनेषूनमासिकत्रैपक्षिको नषाण्मासिको नाब्दिकानि कृत्वा  
त्रयोदशेऽह्नि सपिण्डीकरणं कुर्यात् । तथा च मरणदिनात्त्रयोविंशतिमे चतुर्विंशतिमे वा दिवसे  
विप्रस्य सपिण्डीकरणम् । यदा प्रेतोऽग्निमान्कर्ता च न तदा लघुहारीतः १५

“ अनग्निस्तु यदा वीर भवेत्कुर्यात्तदा गृही । प्रेतश्चेदाग्निमास्तु स्यात्त्रिपक्षे वै सपिण्डनम् ” ॥ इति ।

तादृशस्त्रिपक्ष एव कुर्यान्नान्यत्र इति नियमः । उत्सृष्टाग्नेरप्येवम् । यदा दंपत्योरन्य-  
तरस्य पूर्वमरणेनाग्नयः प्रतिपादितास्तदेतरस्य साग्नित्वाभावात्कालान्तरे तन्मरणे न त्रिपक्षनियमः ।  
विच्छिन्नाग्नेस्तु आत्मन्यग्निसद्भावात्तस्य साग्नित्वे त्रिपक्ष एव । अत्र हेमाद्रिणा ‘ पूर्णे संवत्सरे  
षण्मासे त्रिपक्षे वा ’ इति गोभिलवाक्ये पूर्णपदं षण्मासादिष्वन्वेतीत्युक्तम् । तदनुषङ्गे प्रमाणा- २०  
भावादुपेक्ष्यम् । पूर्णेऽब्दे इत्यत्र तूरचरेऽन्हि “ ततः सपिण्डीकरणं वत्सरादूर्ध्वतः स्थितम् ” ।  
इति नागरखण्डोक्तेः “ पितुः सपिण्डीकरणं वार्षिके मृतवत्सरे ” इत्युक्तान् स्मृतेश्च । अत्र  
षष्ठादिमासाश्चान्द्रा एव ग्राह्याः “ आब्दिके पितृकार्ये च चान्द्रो मासः प्रशस्यते ” इति  
गर्गोक्तेः । ते च त्रिंशत्तिथिस्वरूपा एव न शुक्लादिदर्शान्ताः

“ मत्स्यन्ते परिमीयन्ते स्वकलावृद्धिहानितः । स एमाते स्मृता मासास्त्रिंशत्तिथिसमन्विताः ” ॥ २५  
इति सिद्धान्तशिरोमणिवचनात् । तेन षष्ठमासादिषु चिकीर्षिते सपिण्डीकरणे यदि मध्ये  
मलमासो गतः स्यात्तदा तमादायैव गणना कर्तव्या न तु षष्टिदिनात्मको मासः । यत्तु  
“ षष्ठ्यादिदिवसैर्मासः कथितो बादरायणैः । पूर्वमर्थं परित्यज्य कर्तव्या चोत्तरे क्रिया ” ॥

तत् ‘ श्रावणे वर्जयेच्छाकम् ’ इत्यादिचातुर्मास्यादिगतव्रतविषयम् । यदपि ‘ चान्द्रः  
शुक्लादिदर्शान्तः ’ इति ब्रह्मसिद्धान्तवचनम् तदपि मासविशेषपुरस्कृतमघादिश्राद्धविषयम् । ३०  
अन्यथा कृष्णाष्टम्यादौ मृतस्य मासिकोनमासिकद्वितीयमासिकत्रैपक्षिकतृतीयमासिकचतुर्थमासिके-  
त्यादिहेमाद्र्युदाहृतसूत्रे मासिकाथनन्तरं विहितस्योनमासिकस्य दर्शापूर्वं त्रयोदश्यादावनुष्ठान-  
मापयेत । दर्शे चान्द्रमासस्य समाप्तत्वात् । एवमूनषाण्मासिको नाब्दिके षाण्मासिकद्वादशमासिको

त्तरं त्रयोदश्यादावापाद्येयाताम् । न चैतदिष्टम् । कृष्णचतुर्दश्यां मृतस्य कृष्णत्रयोदश्यादावून-  
षाण्मासिकोनाब्दिकापत्त्योदाहृतसूत्रविरोधः स्यादिति । स्वयं साग्निको निरग्निकस्य सपिण्डनं  
द्वादशाहे कुर्यात् । तथा च भविष्यत्पुराणे

“यजमानोऽग्निमान् राजन् प्रेतश्चानग्निमान् भवेत् । द्वादशाहे तदा कार्यं सपिण्डीकरणं सुतैः ” ॥

५ कात्यायनः “एकादशाहं निर्वर्त्य पूर्वं दश्याद्यथाविधिप्रकुर्वीताग्निमान्विप्रो मातापित्रोः सपिण्डताम्” ॥  
हारीतः

“या तु पूर्वममावास्या भृताहादशमी भवेत् । सपिण्डीकरणं तस्यां कुर्यादेव सुतोऽग्निमान्” ॥ इति ।

दशमी रात्रिस्ततः परा याऽमावास्या तस्यामित्यर्थः । अतः साग्निककर्तृके सपिण्डीकरणे  
द्वादशाहो दशाहात्परतो यत्किञ्चिद्दिनं दशाहात्परतोऽमावास्या च इति त्रयः कालाः इति  
१० हेमाद्रौ । कालादर्शमाधवयोस्तु ‘भृताहादूर्ध्वं दिनमारभ्य दशमी’ इति व्याख्यानादेकादशाहा-  
मावास्येति द्वावेव कालौ इति । उभयोः साग्निकत्वे द्वादशाह एव

“साग्निकस्तु यदा कर्ता प्रेतश्चाप्यग्निमान् भवेत् । द्वादशेऽह्नि तदा कार्यं सपिण्डीकरणं पितुः ” ॥

इति विज्ञानेश्वरमाधवाभ्यां स्मरणादित्युदाहृतत्वात् । हेमाद्रिणा त्विदं नालेखि ।  
अत्र च साग्न्यनग्निपदान्याहिताग्न्यनाहिताग्निपराणि । ‘प्रेतश्चेदाहिताग्निः स्यात्कर्ताऽनग्निर्यदा  
१५ भवेत्’ इति सौमन्तवाक्यात् । एवं चौपासनाग्निमतो न नियमेन द्वादशाहे किन्तु यस्मिन्कस्मिंश्चि-  
त्काले इति । तदा पिण्डपितृयज्ञो लुप्यते दशाहमध्यवर्तिवत् । तथा पितृव्यतिरिक्तस्य  
साग्नेः सपिण्डीकरणे साग्नेः कर्तुर्न द्वादशाहनियमः । वाक्ये पितृग्रहणात् । एवमपुत्राहिताग्नेर्यदा  
पत्नी कर्त्री तदाऽपि नायं नियमः । एवमाधाने सहाधिकृतायाः पत्न्याः पतिः करोति तदाऽपि  
न त्रिपक्षनियमः । सर्वेषु वाक्येषु कचित् ‘पितुः’ कचित् ‘पुत्रैः’ कचित् ‘पित्रोः’ इति

२० श्रवणात् । अतो न तत्र नियमः । अन्त्येष्टिपद्धतौ व्यासः

“आनन्त्यात्कुलधर्माणां पुंसां चैवाऽऽयुषः क्षयात् । अस्थितेश्च शरीरस्य द्वादशाहः प्रशस्यते” ॥ इति ।

कुलधर्माणां सपिण्डीकरणं विनानुष्ठातुमशक्यानां प्रथमतृतीयवर्षाद्यनुष्ठेयचूडाकरणादीना-  
मन्येषां वाऽऽचारप्राप्तानां वृद्धिश्राद्धानङ्गकानामपि ग्रहणं शिष्टाचारात् । इदं वचनं कर्तृप्रेतयोरुभयो-  
रनग्नित्वे साग्नित्वे कर्तृमात्रस्य वा साग्नित्वे द्वादशाहस्य पूर्वोक्तवचनैः प्राप्तत्वात् प्राशस्त्यं बोधयति ।  
२५ प्रेतमात्रस्य साग्नित्वे तु त्रिपक्ष एव नियतः पूर्वोक्तवचनात्प्राप्तो न तत्र द्वादशाहप्राशस्त्यम् । एते च  
कालाद्यैवर्णिकान्गति । शूद्रस्य दशाहाशौचपक्षे तु द्वादशाह एव । तथा च सपिण्डनमधिकृत्य  
विष्णुः “मन्त्रवर्जं तु शूद्राणां द्वादशेऽहनि कीर्तितम्” ॥ इति ।

अब्दान्तात्पूर्वमेव सपिण्डने क्रियमाणे षोडशश्राद्धानि स्वकालकृतावाशिष्टानि वाऽप्यकष्टव्यानि ।  
तथा च वृद्धवसिष्ठः “श्राद्धानि षोडशाकृत्वा न तु कुर्यात् सपिण्डनम्” ॥ इति ।

३० सपिण्डीकरणोत्तरे च स्वकाले तान्यावर्तनीयानि

“यस्य संवत्सरादवाग्विहिता तु सपिण्डता । विधिवत्तानि कुर्वीत पुनः श्राद्धानि षोडश” ॥  
इति गोभिलोक्तेः । तानि तु वार्षिकवत्कार्याणि

“सपिण्डीकरणादवाग्विहिता श्राद्धानि षोडश । एकोद्दिष्टविधानेन कुर्यात्सर्वाणि तानि तु ॥

३५ “सपिण्डीकरणादूर्ध्वं यदा कुर्यात्तदा पुनः । प्रत्येकं यो यथा कुर्यात्तथा कुर्यात्स तान्यपि” ॥

इति पैठीनासिस्मृतेः । सपिण्डीकरणप्राग्भाविनां तु नाऽऽवृत्तिः

“ अर्वागब्दाद्यत्र यत्र सपिण्डीकरणं कृतम् । तदूर्ध्वं मासिकानि स्युर्यथाकालमनुष्ठितिः ” ॥

इति काष्णार्जिनिस्मृतेः ।

सपिण्डीकरणोत्तरकर्तव्यान्येव चानुमासिकसंज्ञानि तान्यपि वृद्धिप्राप्तावपकृष्टव्यानि ।

तथा च माधवीये शाट्यायनिः

“ सपिण्डीकरणाद्वर्गपकृष्य कृतान्यपि । पुनरप्यपकृष्यन्ते वृद्ध्युत्तरनिषेधनात् ” ॥ इति ।

निषेधस्तु ‘ निर्वर्त्य वृद्धितन्त्रं तु मासिकानि न तन्त्रयेत् ’ इति । “ अयातयामं मरणं न भवेत्पुनरस्य तु ” इति कात्यायनोक्तेः । शाट्यायनिः

“ प्रेतश्राद्धानि सर्वाणि सपिण्डीकरणं तथा । अपकृष्यापि कुर्वीत कर्ता नान्दीमुखं ततः ” ॥

वृद्धिव्यतिरेकेणापकर्षे प्रत्यवायमाहोशना

“ वृद्धिश्राद्धविहीनस्तु प्रेतश्राद्धानि यश्चरेत् । स श्राद्धी नरके घोरे पितृभिः सह मज्जति ” ॥ इति ।

यत्तु मिताक्षरायाम् ‘ अब्दान्तः सपिण्डने षोडश श्राद्धानि सपिण्डनोत्तरं कार्याणि ” इति मुख्यः पक्षः ‘ प्राक् ’ इति तु गौण इत्युक्तम् । तत्र । पूर्वोक्तवृद्धवसिष्ठशाट्यायन्यादिवचोविरोधात् । वर्षोत्तरादिनेऽप्यकृते सपिण्डने गौणकालानाह कालादर्शं ऋष्यशृङ्गः

“ सपिण्डीकरणश्राद्धमुक्तकाले न चेत्कृतम् । रौद्रे हस्ते च रोहिण्यां मैत्रमे वा समाचरेत् ” ॥ इति । १५

रौद्रमार्द्रा । मैत्रमनुराधा । सपिण्डीकरणप्रकारमाह याज्ञवल्क्यः ( आ. २५३-२५४ )

“ गन्धोदकतिलैर्युक्तं कुर्यात्पात्रचतुष्टयम् । अर्घ्यार्थं पितृपात्रेषु प्रेतपात्रं प्रसेचयेत् ॥

“ ये समाना इति द्वाभ्यां शेषं पूर्ववदाचरेत् ” ॥ इति ।

प्रेतपात्रोदकं सावशेषं त्रिष्वपि पितृपात्रेष्वासिच्य प्रेतार्घ्यपात्रोदकावशिष्टेन प्रेतस्थानविप्रहस्तेऽर्घ्यो देय इति पितामहचरणाः । कात्यायनोऽपि ‘ ततः संवत्सरे पूर्णे चत्वारि पात्राणि संतिलगन्धोदकैः पूरयित्वा त्रीणि पितृणामेकं प्रेतस्य प्रेतपात्रं पितृपात्रेष्वासिञ्चति ये समाना इति द्वाभ्यामेतेन पिण्डो व्याख्यातः ’ इति । चतुर्विंशतिमते

“ चत्वारिहार्धपात्राणि अर्चयेत्पूर्ववच्छुचिः । प्रेतपात्रं पितृणां तु पात्रेषु निर्वपेद्बुधः ॥

“ मधुवाता ऋचं जप्त्वा संगच्छध्वमिति ब्रुवन् । ये समाना इति द्वाभ्यां केचिदिच्छन्ति सूरयः ॥

“ एवं पिण्डेषु कर्तव्यं चरमं तु विसर्जयेत् ” ॥ इति ।

व्युत्क्रममृतस्य गोब्राह्मणादिहतस्य च सपिण्डनं नास्ति “ व्युत्क्रमाच्च प्रमीतानां नैव कार्या सपिण्डता ” इति मिताक्षरोदाहृतस्मृतेः । व्युत्क्रममृतपुत्रेण दर्शादौ पितामहादीनामेव पार्वणं कार्यम् “ ब्राह्मणादिहते ताते पतिते संगवर्जिते । व्युत्क्रमाच्च मृते देयं येभ्य एव ददात्यसौ ” ॥ इति कात्यायनोक्तेः । यत्तु मनुः ( ३।२१ )

“ पिता यस्य तु वृत्तः स्याज्जीवेच्चापि पितामहः । पितुः स नाम संकीर्त्य कीर्तयेत्प्रपितामहम् ” ॥ इति । १०

तत्र पितृप्रपितामहवृद्धप्रपितामहोद्देश्यकपार्वणविधयर्थं किन्तु पितुः पितामहप्रपितामहवृद्धप्रपितामहेभ्यः इति प्रयोगनियमार्थं । पितुर्नाम गृहीत्वा तत्सम्बन्धित्वेन स्वप्रपितामहाया उद्देश्या इत्यर्थः । एतादृशपार्वणेन च सह पितुरेकोद्दिष्टमपि कार्यम् । “ यस्य पिता प्रेतः स्यात्स पित्रे पिण्डं निधाय पितामहात्पराभ्यां दद्यात् ” इति विष्णूक्तेः ( ७५।४ ) । एतस्यायमर्थः—पितामहे भ्रियमाणे प्रेते च पितरि पितुरेकं पिण्डमेकोद्दिष्टविधानेन विधाय पितुर्यः

- पितामहस्तत्पराभ्यां द्वाभ्यां दद्यात् । पितामहस्वात्मनः प्रपितामहः संप्रदानभूतः स्थित एवेति प्रपितामहाय ततः पराभ्यां द्वाभ्यां च दद्यादिति मिताक्षरायाम् । ' एताभ्यामेव मनुविष्णु-वचोभ्यां व्युत्क्रममृतादीनामपि सपिण्डनं भवति ' इति स्मृतिचन्द्रिकादिषु । ' पितुर्नाम संकीर्त्य पितरं देवतात्वेनोद्दिश्य प्रपितामहं तदादिकांस्त्रीनुद्दिशेत् ' इति तन्मते मानवस्यार्थः ।
- ५ ' पित्रे पिण्डं निधाय पितामहात्पराभ्याम् ' इति ' तृतीयस्याप्युपलक्षणम् ' इति वैष्णवस्यार्थः । स्मृत्यर्थसारे तु एतद्व्यमप्युक्तम् । विभक्तैरप्येतन्न पृथक्कार्यं किन्तु ज्येष्ठेनैव
- " नवश्राद्धं सपिण्डत्वं श्राद्धान्यपि च षोडश । एकेनैव तु कार्याणि संविभक्तधनेष्वपि " ॥
- इति स्मृतेः । ज्येष्ठे प्रवसति तु तद्भिन्नेन येन केनापि दशाहान्तमवश्यं कार्यम् । कनिष्ठपुत्र-प्रपौत्रदौहित्रादिभिस्त्वेकादशाहिकमपि कार्यम् । यस्त्वन्येष्टिपद्धतौ
- १० " कनीयसा कृतं कर्म सपिण्डीकरणं पुनः । तज्ज्यायसाऽपि कर्तव्यं प्रेतशब्दं विहाय तत् " ॥
- इति तत्
- " प्रेते पितृत्वमापन्ने सपिण्डीकरणादनु । आहिताग्नेः सिनीवाल्यां पितृयज्ञः प्रवर्तते " ॥
- इति मनुवचसा साग्निककनीयांसं प्रति पिण्डपितृयज्ञानुरोधेन सपिण्डनापकर्षविधानात्तं प्रति बोध्यम् । इदं हि वचः पितृयज्ञस्य प्रमाणान्तराप्राप्तसपिण्डनप्रयोजकत्वबोधनेनैवार्थवत्तन् प्रकारा-
- १५ न्तरेण अन्यस्यैतद्वाक्योपात्तस्यार्थस्य प्रमाणान्तरैः प्राप्तत्वादिति केचित् । तन्न । सत्यमेवमर्थव-देतद्वाक्यम् परन्तु कृताधिकारं ज्येष्ठं प्रत्येव चरितार्थं नाकलत्तं कनीयसोऽधिकारमपि कल्पयति गौरवात् । अतः
- " भ्राता वा भ्रातृपुत्रो वा सपिण्डः शिष्य एव च । सहपिण्डक्रियां कृत्वा कुर्यादभ्युदयं ततः " ॥
- इति पूर्वलिखितवाक्येन भ्रातृपुत्रादिपदैः ' अर्द्धमन्तर्वेदिमिनोति ' इत्यादिवल्लक्षणयाऽऽभ्युदयिक-
- २० कर्तृमात्रस्य सपिण्डनाधिकारबोधेन कनीयसोऽपि प्राप्तेस्तद्विषयं कनीयसेति वाक्यम् । कद्धि-कामस्य कनीयसोऽपि स्मृत्यर्थसारे पृथगधिकारबोधनात्तद्विषयं वा । परन्तु कनीयसेत्यादिवाक्ये मूलं भ्रम्यम् । ' न गिरागिरेति ब्रूयादैरं कृत्वोद्वेयम् ' इतिवत् । यतीनामेकोद्दिष्टस्थाने पार्वणमाहोशना
- " एकोद्दिष्टं न कुर्वीत यतीनां चैव सर्वदा । अहन्येकादशे प्राप्ते पार्वणं तु विधीयते " ॥ इति ।
- ब्राह्मदैवार्थप्राजापत्यान्यतमविवाहोढायास्तु सपिण्डनं तच्छ्रुत्वादिभिः सह । आसुरगान्धर्वराक्षस-
- २५ पैशाचान्यतमोढायास्तु मातामहादिभिः सह इति मिताक्षरादिषु स्पष्टम् । सहगमने तु विवाह-भेदमतन्नाक्रिय भर्त्रा सह कार्यम्
- " भर्त्रा चैकेन कर्तव्यं सपिण्डीकरणं पुनः । सा मृताऽपि हि तेनैक्यं गता मन्त्राहुतिव्रतैः " ॥
- इति स्मृतेः । तत्र सहगमनभिन्नप्रकारेण मरणे पुरुषवदेव संयोजनादि । सहगमने तु विश्वदेव-स्थाने एकं विप्रं द्वौ वोपवेष्ट्य भर्तुः स्थान एकं तस्याश्च स्थानेऽपरं पितामहादीनां च त्रीनेकं
- ३० वोपवेष्ट्य द्वयोः प्रेतयोर्द्वयं पितामहादीनां च त्रयमिति पञ्चाध्वपात्राण्यासाद्य जलेनापूर्य पत्नी-पात्रोदकं सशेषं भर्तृपात्र आसिच्य भर्तृपात्रोदकं च सशेषं पितामहादिपात्रेष्वसिच्य भर्तृपात्र-शेषेण भर्त्रे पत्नीपात्रशेषेण पत्न्यै पितामहादिपात्रोदकैश्च पितामहादिभ्योऽध्वं दद्यात् । एवं भर्त्रे तत्पत्न्यै पितामहादिभ्यश्चेति पञ्च पिण्डान् दत्त्वा पत्नीपिण्डं संपूर्णं भर्तृपिण्डेन संपूर्णेन संयोज्य संयोजितं च संपूर्णं त्रेधा विभज्य शकलत्रयं पितामहादिपिण्डेषु योजयेत् । न च पितृ-
- ३५ भावापत्तेनैव सपिण्डनं न प्रेतेन इति नियमो मानाभावादिति सङ्क्षेपः । यदि मृतस्य भिन्नमातृका



अनेके पुत्राः स्युस्तदा सर्वज्येष्ठ एव पितुरौर्ध्वदेहिकं कुर्यात् । अन्वारूढायास्तु कनीयानपि साक्षात्पुत्र एव सर्वं पृथक्कुर्यात् । न सपत्नीपुत्रो ज्येष्ठ एव । तस्मिंस्तन्निरूपितपुत्रत्वाभावात् दाहस्त्वेकस्यामेव चितौ । सपिण्डनं तु ज्येष्ठेन पितुरेव केवलं पितामहादिभिः । कनिष्ठेन तु मातुः पितृसपिण्डनदिन एव दिनान्तरे वा कार्याम् । अत्र एकदिनसपिण्डनपक्षे दिनान्तरपक्षे ५ वा पितृसपिण्डनोत्तरमेव संभवति पितृभावापन्नेन संयोजने प्रेतसंयोजनायोगादिति केचित् । तत्रापि मातुः पितृश्रेत्यकोद्दिष्टद्वयमेव । मातुरेकोद्दिष्टं पित्रादीनां पार्वणमिति तु साम्प्रदायिकाः । अयं सर्वोऽपि सपिण्डनविधिरमन्त्रकः शूद्राणामपि भवति । इति सपिण्डनम् ।

**अथाभ्युदयिकश्राद्धम् । मार्कण्डेयपुराणे**

“ नैमित्तिकमयो वक्ष्ये श्राद्धमभ्युदयात्मकम् । पुत्रजन्मनि तत्कार्यं जातकर्मसमं नरैः ” ॥ १०

नैमित्तिकजातकर्मपदाभ्यां पुत्रजन्मनिमित्तकमेव श्राद्धं न तु जातकर्माङ्गमित्युच्यते । अत एव कर्मप्रदीपे

“ नाष्टक्रासु भवेच्छ्राद्धं न श्राद्धे श्राद्धमिष्यते । न सोष्यन्तीजातकर्मप्रोषितागतकर्मसु ” ॥

सुखप्रसवार्थं सोष्यन्तीकर्म । प्रोषितागते च पुत्रे पितुः कर्म छन्दोगसूत्रे प्रसिद्धम् । यत्तु हेमाद्रौ

“ वृद्धिश्राद्धं तु कर्तव्यं जातकर्मादिकेषु वै ” इति । तत्राप्यतद्गुणसंविज्ञानो बहुव्रीहिः । १५

अतः पुत्रजनने केवलनैमित्तिकमेव श्राद्धं न जातकर्माङ्गम् । अन्येषु तु कर्मस्वङ्गम् । तथा च हेमाद्रौ जाबालिः

“ यज्ञोद्वाहप्रतिष्ठासु मेखलाबन्धमोक्षयोः । पुत्रजन्मवृषोत्सर्गे वृद्धिश्राद्धं समाचरेत् ” ॥ इति ।

**विष्णुपुराणे**

“ कन्यापुत्रविवाहेषु प्रवेशे नववेस्मनः । नामकर्माणि बालानां चूडाकर्मादिके तथा ॥ २०

“ सीमन्तोन्नयने चैव पुत्रादिमुखदर्शने । नान्दीमुखं पितृगणमर्चयेत्प्रयतो गृही ” ॥ इति ।

तत्रैव कालादर्शे लौगाक्षिः

“ नामान्नचौलगोदानसीमोपनयपुंसवे । स्नानाऽऽधानविवाहेषु नान्दीश्राद्धं विधीयते ” ॥

**वृद्धशार्ङ्ग्यः**

“ अग्न्याधानाभिषेकादाविष्टापूर्ते स्त्रिया ऋतौ । वृद्धिश्राद्धं प्रकुर्वीत आश्रमग्रहणे तथा ॥ २५

“ जातस्य जातकर्मादि क्रियाकाण्डमशेषतः । पुत्रस्य कुर्वीत पिता श्राद्धं चाभ्युदयात्मकम् ” ॥

जातकर्मादिक्रियाकाण्डमपत्यसंस्काराः । पुत्रस्येति पुंस्त्वमविवक्षितम् । अनुवाच्यगतत्वात् ।

अतः कन्याया अपि भवति । तच्च समन्त्रकमेव । मन्त्रबाधे मानाभावात् । यत्तु जातकर्मादि-

संस्कारानुक्त्वा याज्ञवल्क्यः “ तूष्णीमेताः क्रियाः स्त्रीणाम् ” ( आ. १३ ) इति तत्प्रधानाङ्ग-  
मन्त्रबाधार्थम् । यदि हि ‘ अप्सवभूथेन चरन्ति ’ इतिवचुत्तीयान्तेन साङ्गभावनामुक्त्वा ३०

तस्यां तूष्णीत्वं विधीयते ततः स्यादङ्गमन्त्रबाधः । इह तु ‘ यज्ञार्थवर्णं वै काम्यइष्टयस्ता उपांशु

कर्तव्याः ’ इत्यत्रेष्टीनामिव क्रियाणां प्रथमान्तपदोपात्तत्वात् प्रधान एव तूष्णीत्वविधिर्नाङ्गेऽपि ।

तेन कन्याजातकर्मादौ वृद्धिश्राद्धं समन्त्रकमेव भवतीति दिक् । यत्तु शातातपः “ नानिष्टा

तु पितृच श्राद्धं कर्म वैदिकमारभेत् ” । इति तद्यत्र प्रातिस्विकवाक्यैर्नान्दीश्राद्धमुक्तं तत्रैवोप-

संहियते । अथवा वाक्यान्तरप्राप्तकर्माङ्गत्वे एतत्पूर्वकालतामात्रमेव बोधयति न कर्माङ्गतामपि । ३५

अतो न सन्ध्यावन्दनादावातिप्रसङ्गः । पक्षद्वयेऽपि ‘ नाष्टकासु भवेच्छ्राद्धम् ’ इत्यादि पूर्वोक्तं कर्मप्रदीपवचो नित्यानुवादकमेव न निषेधकं प्राप्त्यभावात् । प्रधानावृत्त्या प्राप्ताया नान्दी-  
श्राद्धावृत्तेरपवादः । कर्मप्रदीपे

“ असकृद्यानि कर्माणि क्रियेरन् कर्मकारिणः । प्रतिप्रयोगं नैताः स्युर्मातरः श्राद्धमेव च ॥

५ “ आधानहोमयोश्चैव वैश्वदेवे तथैव च । बलिकर्मणि दर्शे च पौर्णमासे तथैव च ॥

“ नवयज्ञे च यज्ञज्ञा वदन्येवं मनीषिणः । एकमेव भवेच्छ्राद्धमेतेषु न पृथक् पृथक् ” ॥ इति  
असकृत्पुनःपुनरित्यर्थः । प्रतिदिनं प्रतिमासं प्रत्यब्दं चेति यावत् । नवयज्ञ आग्रयणेष्टिः ।

‘ आधान ’ इत्यादिश्लोकद्वयं पूर्वोक्तकर्मणामेव विवरणार्थं न पृथग्वाक्यम् । अतो  
ज्योतिष्टोमादिषु प्रतिप्रयोगं भवत्येव वृद्धिश्राद्धम् । होमादिनवयज्ञपर्यन्तेषु न पृथक्श्राद्धं

१० किन्तु आधानादौ कृतमेकमेव श्राद्धमुपकरोतीति नारायणः । यदा तु नामकर्माभिप्राशन-  
चौलोपनयनकर्मण्येकस्य शिशोरेककाले क्रियन्ते तदा वृद्धिश्राद्धं तन्त्रेणैव कार्यम् । तथा  
च तत्रैव

“ गणशः क्रियमाणेषु मातृभ्यः पूजनं सकृत् । सकृदेव भवेच्छ्राद्धमादौ न पृथगादिषु ॥

“ यत्र यत्र भवेच्छ्राद्धं तत्र तत्र च मातरः ” ॥ पूज्या इति शेषः । ‘ अनेकेषां पुरुषपाणां

१५ वाऽपत्यानां सजातीयविजातीयानेकोपनयनोद्वाहादिसंस्कारे देशकालकर्त्रैक्याद्वृद्धिश्राद्धं तन्त्रेणेति  
कश्चित् तत्तुच्छम् । यथा योगसिद्धाधिकरणे सर्वफलार्थतया बुद्धस्यापि ज्योतिष्टोमादेरेकस्मा-  
त्प्रयोगादेकमेव फलं नानेकानि एकया सामग्र्या एकमेव कार्यं जन्यत इति नियमादित्युक्तम्  
तथेहाभ्युपनयनविवाहादिजन्यपरमापूर्वाणामनेकतत्तत्संस्कार्यनिष्ठत्वेन तदङ्गाभ्युदयिकश्राद्धजन्या-  
नामङ्गापूर्वाणामपि तन्निष्ठतापत्तेः । न च तत्संभवति पूर्वोक्तनियमविरोधात् । अतः पृथगेव

२० वृद्धिश्राद्धमिति दिक् । तत्रैव

“ कर्मादिषु च सर्वेषु मातरः सगणाधिपाः । पूजानीयाः प्रयत्नेन पूजिताः पूजयन्ति ताः ” ॥

ताश्च विशिष्य स्मृत्यन्तरे उक्ताः

“ गौरी पद्मा शची मेधा सावित्री विजया जया । देवसेना स्वधा स्वाहा मातरो लोकमातरः ॥

“ धृतिः पुष्टिस्तथा तुष्टिः कुलदेवतया सह । विनायकेन सहिताः पूजनीयाः प्रयत्नतः ” ॥ इति ।

२५ अत्र विशेषः कर्मप्रदीपे

“ प्रतिमासु च शुभ्रासु लिखित्वा वा पटादिषु । अपि वाऽक्षतपुञ्जेषु नैवेद्यैश्च पृथग्विधैः ॥

“ कुट्यलम्बां वसोर्धारां सप्तवारं धृतेन तु । कारयेत्पञ्चवारान्वा नातिलम्बां न चोच्छ्रिताम् ॥

“ आयुष्याणि च शान्त्यर्थं जप्त्वा तत्र समाहितः । षड्भ्यः पितृभ्यस्तदनु श्राद्धदानमुपकमेत् ” ॥

वसोर्ध्वारासु च ब्राह्मी माहेश्वरी कौमारी वैष्णवी वाराहीन्द्राणी चामुण्डारूपा देवताः पूजयन्ति

३० शिष्टाः । ‘ षड्भ्यः ’ इति गोभिलीयान्प्रति । तत्सूत्रे पार्वणद्वयाग्नानादिति नारायणवृत्तिकृत ।  
कातीयानामप्येवमिति केचित् । मत्स्यपुराणे “ उत्सवानन्दसन्ताने यज्ञोद्वाहादिमङ्गले ।

“ मातरः प्रथमं पूज्याः पितरस्तदनन्तरम् ततो मातामहाः पूज्या विश्वेदेवास्तथैव च ” ॥

चतुर्विंशतिमते “ मातामहीस्ततः केचिद्युग्मा भोज्या द्विजातयः ” ॥ इति ।

ततो मातामहपार्वणानन्तरम् । अत्र बहुवचनान्तैः शब्दैस्तदाद्यास्तत्र उच्यन्ते । मात्रादयश्च

३५ मनुष्यपितरः प्राधान्येनोद्देश्याः । ‘ ऊर्ध्ववक्त्रास्तु ये तत्र ते नान्दीमुखसंज्ञिताः ’ इति । नान्दीमुखा

दिव्यपितरस्त्वभेदविवक्षयोद्देश्यस्वरूपेऽन्तर्भावनीयाः । कर्माङ्गाभ्युदयिकेऽप्येता एव देवताः

“ निषेककाले सोमे च सीमन्तोन्नयने तथा । ज्ञेयं पुंसवने श्राद्धं कर्माङ्गं वृद्धिवत्कृतम् ” ॥

इति वचनेन गर्भाधानाद्यङ्गभूतपारिभाषिककर्माङ्गश्राद्धे वृद्धिश्राद्धदेवतायतिदेशात् ।

प्रौष्ठपदपौर्णमासीश्राद्धे तु विशेष उक्तो ब्रह्मपुराणे “ पिता पितामहश्चैव तथैव प्रपितामहः ।

“ त्रयो ह्यश्रुमुखा ह्येते पितरः संप्रकीर्तिताः । तेभ्यः पूर्वं त्रयो ये तु ते तु नान्दीमुखाः स्मृताः ” ॥ इति । ५

अन्यकर्तृके तु कात्यायनः

“ स्वपितृभ्यः पिता दद्यात्सुतसंस्कारकर्मसु । पिण्डानोद्वाहनात्तेषां तस्याभावे तु तत्कमात् ” ॥

अत्र पितामहादिः कन्याप्रदः स्वपितृभ्य एव दद्यात् ‘ तस्याभावे तु तत्कमात् ’ इत्यत्र स्वपितृभ्य इत्यस्यानुषङ्गात् ’ इति हेमाद्रिः । तं पितरमारभ्य यः संस्कार्यस्य पितृणां क्रमस्तेन क्रमेण दद्यात् न तु स्वकीयेभ्यः पितृभ्यः इति वाचस्पतिमिश्राद्याः । ये पुनराहत्यवचनेनानुकाधिकारास्ते १० तदीयेभ्य एव पितृभ्यो दद्युः । कालादर्शो हारीतः

“ अनग्निकोऽपि कुर्वीत जन्मादौ वृद्धिकर्माणि । येभ्य एव पिता दद्यात्तानेवोद्देश्य पार्वणम् ” ॥

अतश्च साग्निकस्यैव जीवपितृकाधिकारबोधके वाक्ये साग्निकग्रहणमुपलक्षणम् । वसिष्ठः

“ पूर्वेषुर्मातृकं श्राद्धं कर्महि पैतृकं तथा । उत्तरेद्युः प्रकुर्वीत मातामहगणस्य तु ” ॥

वृद्धशातातपः “ पृथग्दिनेऽप्यशक्तश्चेदेकस्मिन्पूर्ववासरे श्राद्धत्रयं प्रकुर्वीत वैश्वदेवं तु तान्त्रिकम् ” ॥ १५

वृद्धमनुः “ अलाभे भिन्नकालानां नान्दीश्राद्धत्रयं बुधः । पूर्वेषुर्वै प्रकुर्वीत पूर्वाह्ने पितृपूर्वकम् ” ॥

छागलेयः “ एकैकस्य तु वर्गस्य द्वौ द्वौ विप्रौ समर्चयेत् । विश्वदेवे तथा द्वौ च न प्रसज्येत विस्तरे ” ॥

भविष्ये “ पूर्वाह्ने भोजयेद्विप्रानष्टौ सर्वं प्रदक्षिणम् । तथा च नवमं विप्रं चतुरस्रे स्वगेश्वर ” ॥

चतुरस्रं पादार्थं मण्डलं तदुपलक्षितं पाद्यं तस्मिन्क्रियमाणे योऽतिथिरागच्छेत् नवमं भोजयेदित्यर्थः । तत्रैव पक्षान्तरम्

२०

“ नान्दीमुखान्समुद्दिश्य पितृन्पञ्च द्विजोत्तमान् । भोजयेद्विधिवत्प्राज्ञ वृद्धिश्राद्धे प्रदक्षिणम् ” ॥

बुद्धवसिष्ठः

“ मातृश्राद्धे तु विप्राणामलामे पूजयेदपि । पतिपुत्रान्विता भव्या योषितोऽष्टौ मुदान्विताः ” ॥

कात्यायनः

“ सदा परिचरेद्भक्त्या पितृन्पञ्च देववत् । निपातो न हि सव्यस्य जानुनो विद्यते कचित् ” ॥ २५

“ मधुमध्विति यस्तत्र त्रिर्जपोऽशितुमिच्छताम् । गायत्र्यनन्तरः सोऽत्र मधुमन्त्रविवर्जितः ” ॥

“ अल्प एव जपः कार्यः सोमसामादिकः शुभः ।

“ यस्तत्र विकिरोऽन्नस्य तिलवान्यववांस्तथा । उच्छिष्टसन्निधौ सोऽन्नं तृप्तेषु विपरीतकः ” ॥

देवपात्रान्तिके तिलवान् पितृपात्रान्तिके यववान् इत्यर्थः ।

पद्मपुराणे “ तिलार्थस्तु यवैः कार्यः सव्येनैवानुपूर्वशः ” ॥

३०

ब्रह्माण्डे

“ स्वाहाशब्दं प्रयुज्जीत स्वधास्थाने च बुद्धिमान् । वृद्धिश्राद्धे सदा सव्यं यज्ञसूत्रं च कास्थेत् ॥

“ कुशस्थाने च दुर्वाः स्युर्मङ्गलस्याभिवृद्धये ।

“ प्राङ्मुखो देवतीर्थेन वृद्धौ परिचरेत्पितृन् । सव्येनैवोपवीतेन क्षिप्रं देशविमार्जनम् ” ॥

पार्वणवदासायं न प्रतीक्ष्यमुच्छिष्टदेशमार्जनमित्यर्थः । कात्यायनः

“ प्रातरामन्त्रितान् विप्रान् युग्मानुभयतस्तथा । उपविश्य कुशान् दद्याद्वज्रुनैव हि पातितान् ” ॥

उभयतः प्राङ्मुखानुदङ्मुखान्श्च । तथा च भविष्यपुराणे “ प्राङ्मुखान्श्चतुरश्रैव चतुरश्र उदङ्मुखान् ” । छान्दोग्ये ‘ चत्वार्येवार्धपात्राण्याभ्युदायिके ’ इति । ब्रह्मपुराणे

५ “ नान्दीमुखान् पितृन् भक्त्या साञ्जलिश्च समाह्वयेत् । पठेत्पवित्रं मन्त्रं तु विश्वे देवास आगतः ” ॥ कात्यायनः “ पात्राणां पूरणादीनि दैवेनेह तु कारयेत् । ज्येष्ठोत्तरवरान्युगमान्कराग्रपवित्रकान् ” ॥

युग्ममध्ये ज्येष्ठस्य करो द्वितीयविप्रकरस्योत्तरो येषु ते तथा कराग्रैः पवित्रस्य येषु ।

आश्वलायनगृह्यपरिशिष्टे ‘ सोपयामानि चत्वारि पात्राणि शत्रोदेवीस्त्यनुमान्त्रितासु यवानावपति “ यवोऽसि सोमदेवत्यो गोसवे देवानिर्मितः प्रतनवद्भिः प्रतः पुष्ट्या नान्दीन्

१० लोकान् प्रीणयाहि नः स्वाहा विश्वेदेवा इदं वोऽर्घ्यं नान्दीमुखाः पितरः ” इति यथालिङ्गमर्घ्यदानं ‘ पितरः प्रीयन्तामिति ’ अपां प्रतिग्रहणं चैवमुत्तरयोरपि पितामहप्रपितामहयोः इति । सोपयामानि सहायभूतपात्रान्तरसहितानीत्यर्थः । सर्वं द्विर्द्विः इति । गन्वादिकमेकैकत्र द्विर्द्विर्द्वयम् । नित्यं वाऽग्नौकरणं स्वाहाकारेण होमश्च । अग्नौकरणमित्यस्याग्रे पाठान्तरम् ‘ पाणौ होमोऽग्नये कव्यवाहनाय स्वाहा सोमाय पितृमते स्वाहा ’ इति । तथा पृषदाज्यमिश्र ओदनो

१५ हविः सर्वत्र तस्यार्द्धं द्वे द्वे आहुती जुहुयात् इति । सर्वत्र अन्नकार्ये दधिमिश्रमाज्यं पृषदाज्यम् । भविष्यपुराणे

“ पृषदाज्येन संयुक्तं दद्यादोदनमादितः । पायसं च तथा भव्यं मोदकादिरसोत्तरम् ॥

“ मधुरं भोजनं दद्यान्न चाम्लं परिवेषयेत् ” ।

चन्द्रिकायां प्रचेताः

२० “ न जपेत्पैतृकं जप्यं न मांसं तत्र दापयेत् । प्राङ्मुखो देवतीर्थेन क्षिप्रं देशनिमार्जनम् ” ॥ इति ।

आश्वलायनगृह्यपरिशिष्टे ‘ अतो देवा अवन्तु न इत्यङ्गुष्ठग्रहणम् ’ इति

‘ पावमानीः शंवती रौद्रीं चाप्रतिरथं च श्रावयेत् ’ इति च ।

वृद्धवासिष्ठः “ तृप्तिप्रश्ने तु संपन्नं दैवे रोचत इत्यपि ” । संपन्नं पित्र्यै इति शेषः । “ दधि- कर्कन्धुसहिताः पिण्डाः कार्या यथाक्रमम् ” ॥ इति च । वृद्धशातातपः “ प्रदद्यात्प्राङ्मुखः

२५ पिण्डान् वृद्धौ नाम्ना स बाह्यतः ” ॥ स आद्धकर्त्ता बाह्यतः भोजनशालाया बहिः न तूच्छिष्टसमीपे । वृद्धवासिष्ठः

“ प्राङ्मुखो देवतीर्थेन प्राक्कूलेषु कुशेषु च । दत्त्वा पिण्डान् कुर्वीत पिण्डपात्रमधोमुखम् ” ॥

भविष्योत्तरे

“ पिण्डनिर्वपणं कुर्यान्न वा कुर्यान्नराधिप । वृद्धिश्चाद्धे महाराज कुलधर्ममवेक्ष्य वै ” ॥

३० ब्रह्मपुराणे

“ योऽग्नौ तु विद्यमानेऽपि वृद्धौ पिण्डान् निर्वपेत् । पतन्ति पितरस्तस्य नरके स तु पच्यते ” ॥ चतुर्विंशतिमते

“ द्वौ द्वौ चाभ्युदये पिण्डावेकैकस्मै च निर्वपेत् । एकं नाम्नाऽपरं तूष्णीं दद्यात्पिण्डान्पृथक् पृथक् ” ॥

ब्रह्मपुराणे “ प्राङ्मुखान्स्वथ दर्भास्तु दद्यात्क्षीरावनेजनम् ” ॥ मार्कण्डेयः

“ नान्दीमुखानां कुर्वीत प्राज्ञः पिण्डोदकक्रियाम् । प्राजापत्येन तीर्थेन यच्च किञ्चित्प्राजापतेः ” ॥

पिण्डानधिकृत्योक्तं ब्रह्मपुराणे

“ अर्घं पुष्पं च धूपं च प्रशस्तमनुलेपनम् । वासः साध्वहन्तं शुद्धं देयं च सदृशं समम् ॥

“ द्राक्षामलकमूलानि यवांश्चाथ निवेदयेत् । तान्येव दक्षिणार्थं तु दद्याद्विप्रेषु सर्वदा ॥

“ अथाक्षय्योदकस्थाने दत्त्वा क्षीरयवादिकम् । नान्दीमुखेभ्यश्चाक्षय्यमिदमास्त्विति संजपेत् ॥ ५

कात्यायनः “ अक्षय्योदकदानं च अर्घदानवदिष्यते । षष्ठ्यैव नियतं कुर्यान्न चतुर्थ्या कदाचन ॥

“ प्रपितामहसंज्ञाश्च नान्दीमुख्यश्च मातरः । मातामह्यः पितामह्यः प्रपितामह्य एव च ॥

“ मातामहेभ्यश्च तथा नान्दीवक्त्रेभ्य एव च । प्रमातामहसंज्ञेभ्यो भवद्भिश्च स्वधोच्यताम् ॥

“ अस्तु स्वधेति ते तं च जल्पन्ति प्रहसन्ति च । स्वाहाशब्दं प्रयुज्जीत स्वधास्थानेषु बुद्धिमान् ” ॥

इति त्वेतद्व्यतिरिक्तविषयम् । शातातपः “ नान्दीमुखास्तु पितरः प्रीयन्तामिति वाचयेत् ” १०

ब्रह्मपुराणे “ विश्वेदेवाश्च प्रीयन्तामिति दाता ऽब्रवीदिमान् । प्रीता भवन्तु ते तं च वदन्तु मधुराक्षरम् ॥

“ नान्दीमुखास्तु पितरः प्रीयन्तामिति वाचयेत् ” ॥

चतुर्विंशतिमते “ प्रीयन्तामिति च ब्रूयात्पिण्डान्स्वाहेति च क्षिपेत् ” ॥ ब्रह्मपुराणे

“ त्यमूषुवाजिनमिति पठंस्तांश्च विसर्जयेत् ” ॥ ‘ दातार ’ इति प्रार्थनातः पूर्वप्रयोज्यं

श्लोकान्तरमुक्तं भविष्यत्पुराणे

१५

“ माता पितामही चैव तथैव प्रपितामही । एता भवन्तु मे प्रीताः प्रयच्छन्तु च मङ्गलम् ॥

“ पिता पितामहश्चैव तथैव प्रपितामहः । मातामहस्तपिता च प्रमातामहकस्तथा ॥ एते भवन्तु ० ”

चतुर्विंशतिमते “ शेषमन्नमनुज्ञाप्य वैश्वदेवक्रियां ततः । श्राद्धाहि श्राद्धशेषेण वैश्वदेवं समाचरेत् ” ॥

पद्मपुराणे

“ एवं शूद्रोऽपि सामान्यं वृद्धिश्राद्धं तु सर्वदा । नमस्कारेण मन्त्रेण कुर्याद्विवादि वै बुधः ” ॥ २०

इत्याभ्युदयिकश्राद्धम् ।

अथनित्यश्राद्धम् । मनुः ( ३।८२ )

“ पयोमूलफलैर्वाऽपि पितृभ्यस्तृप्तिमाहरन् । कुर्यादहरहः श्राद्धमन्नाद्येनोदकेन वा ॥

“ पितुर्नद्विश्य विप्रांस्तु भोजयेद्विप्रमेव वा ” ।

एतच्च पञ्चमहायज्ञान्तर्गतम् । “ एकमप्याशयेद्विप्रं पितृयज्ञार्थसिद्धये ” इति कात्यायनोक्तेः । २५

एकस्यापि विप्रस्य भोजनपर्याप्तस्यान्नस्यालामे

कात्यायनः “ अदैवं नास्ति चेदन्नं भोक्ता भोज्यमथापि वा ।

“ अभ्युत्थ्य यथाशक्त्या किञ्चिदन्नं यथाविधि । पितृभ्य इदमित्युक्त्वा स्वधाकारमुदाहरेत् ” ॥

एतच्च ब्राह्मणाय देयम्

“ उद्धृत्य वा यथाशक्ति किञ्चिदन्नं समाहितः । वेदतत्त्वार्थविदुषे ब्राह्मणायोपपादयेत् ” ॥ ३०

इति कूर्मपुराणात् । इदं च षड्वैवत्यम् । “ एकमप्याशयेद्विप्रं षण्णामप्यन्वहं गृही ” । इति

व्यासोक्तेः । पार्वणश्राद्धमुक्त्वा देवलः

“ अनेन विधिना श्राद्धं कुर्यात्संवत्सरं पृथक् । द्विश्रतुर्वा यथाश्रद्धं मासे मासे दिने दिने ” ॥

हारीतः “ नित्यश्राद्धमदैवं स्यादर्धपिण्डादिवर्जितम् ” । प्रचेताः

३५

“ नामंत्रणं न होमं च नाव्हानं न विसर्जनम् । न पिण्डदानं न सुरान्नित्ये कुर्याद्विजोत्तम ” ॥  
 भविष्योत्तरे “आवाहनस्वधाकारपिण्डाग्नौकरणादिकम् । ब्रह्मचर्यादिनियमो विश्वेदेवास्तथैव च ॥  
 “ नित्यश्राद्धे त्यजेदेतान् भोज्यमन्नं प्रकल्पयेत् ” ॥

भोज्यमन्नं ‘ स्वस्य ’ इति शेषः

५ “ मध्याह्ने वेदविदुषे दक्षिणापिण्डवर्जितम् । नित्यश्राद्धे ततो दद्याद्भुङ्क्ते यत्स्वयमेव हि ” ॥  
 इति ब्रह्माण्डपुराणात् । अनेन तैलाद्यनुज्ञाऽपि कृता भवति ।

देवलः “ अघृतं भोजयन्विप्रं स्वे गृहे सति सर्पिषि । परत्र निरयं घोरं गृहस्थः प्रतिपद्यते ॥

“ मिष्टमन्नं स्वयं भुक्त्वा पश्चात्कदशनं लघु । ब्राह्मणं भोजयन्विप्रो निरये चिरमावसेत् ” ॥

स एव

१० “ उपवेष्ट्याऽऽसनं दत्त्वा संपूज्य कुसुमादिभिः । निर्दिश्य भोजयित्वा तु किञ्चिद्त्वा  
 विसर्जयेत् ” ॥

भविष्योत्तरे “ प्रदद्यादक्षिणां शक्त्या नमस्कारैर्विसर्जयेत् ” ॥

‘दक्षिणापिण्डवर्जितम्’ इति ब्रह्माण्डपुराणाद्विहितप्रतिषिद्धत्वाद्दक्षिणाविकल्पः । इति नित्यश्राद्धम् ।

अथ संन्यासाङ्गश्राद्धम् । बौधायनीये ‘ संन्यासं संकल्प्य पूर्वमष्टम्या आरभ्य श्राद्धाष्टकं

१५ कुर्यात् पूर्णमास्यन्तममावास्यान्तं वा ’ । शौनकः ‘ पूर्वद्युर्नान्दीमुखश्राद्धं कुर्यात् ’ इति ।  
 दैवश्राद्धे ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः । ऋषिश्राद्धे देवर्षिब्रह्मर्षिक्षेत्रियर्षयः ।

शौनके तु ‘ देवर्षिक्षत्रर्षिमनुष्यर्षय ’ इत्युक्तम् । दिव्यश्राद्धे वसुरुद्रादित्याः । मनुष्यश्राद्धे  
 सनकसनन्दनसनातनाः । भूतश्राद्धे पृथिव्यादीनि भूतानि चक्षुरादीनि करणानि चतुर्विधो भूतग्रामः ।  
 पितृश्राद्धे । मात्रादित्रयं मातृश्राद्धे । आत्मश्राद्धे आत्मपितृपितामहाः । इत्यष्टौ श्राद्धानि ।

२० अनन्तरं पुण्याहं वाचयेदिति । एतानि च अग्निमान् पार्वणविधिना कुर्यात् । अनग्निमानेकोद्दिष्ट-  
 विधिना । अत्र संन्यासिपद्धतौ विशेषः । सर्वेषु श्राद्धेषु युग्मविप्रभोजनम् । दैवश्राद्धे  
 ‘ भवद्भ्यां क्षणः क्रियताम् ’ इत्यादिः प्रयोगः । तिलार्थे यवाः । सर्वं सव्येन प्रादक्षिण्येन  
 कार्यम् । ततो ब्रह्मार्पणान्तं कृत्वा ‘ यस्य स्मृत्या ’ इति जपित्वा ‘ अमृततमस्तु ’ इत्युक्त्वा

२५ उदगपवर्गान् नव रेखा लिखित्वा तासु प्रागग्रान्दर्मानास्तीर्य दैवतादिपञ्चस्थानेषु तूष्णीं पितृमात्रात्म-  
 मातामहान् । स्थानेषु मार्जर्यतां मम पितरः इत्युदकं निषिञ्चेत् । देवादिपञ्चस्थानेषु तत्तन्नामा-  
 न्युच्चार्य प्रागपवर्गान् पिण्डान् दद्यात् । पित्रादिषु त्रिषु प्रतिस्थानं स्वगृह्योक्तविधिना पिण्डान्  
 दद्यात् । पितरि मातरि मातामहे वा जीवति तत्पार्वणलोपः । सर्वत्र पूर्ववदक्षयोदकं दद्यात् ।  
 ततो ‘ यस्य स्मृत्या ’ इत्युक्त्वा ब्राह्मणान्विसर्जयेदिति ।

३० अथ जीवच्छ्राद्धम् । आदित्यपुराणे

“ देशकालधनश्रद्धाव्यवसायसमुच्छ्रये । जीवते वाथ जीवाय दद्याच्छ्राद्धं स्वयं नरः ” ॥

कर्त्रन्तराभावे स्वयमेव स्वस्य श्राद्धं कर्तव्यम् इति हेमाद्रिः ।

बौधायनीये तु ‘ अथाप्युदाहारन्ति

३५ “ जीवन्नेवाऽऽत्मनः श्राद्धं कुर्यादन्त्येषु सत्सवपि । यथाविधि प्रवृत्त्याऽऽशु सपिण्डीकरणादृते ” इति ॥



“कृतोपवासः सुस्नातस्त्रयोदश्यां समाहितः” । अत्र यद्यपि त्रयोदशीसामान्यमुक्तं तथापि ‘अपरपक्षे त्रयोदशीमुपेत्य ’ इति बौधायनोक्तेः कृष्णपक्षस्था ग्राह्या ।

“कर्तारमथ भोक्तारं विष्णुं सर्वेश्वरं यजेत् । जले स्थलेऽम्बरे मूर्तो कलशे पुष्करे रवौ ” ॥  
रवौ रविप्रतिमायाम् ।

“चन्द्रार्कगुरुगोविप्रमातापितृषु सर्वगम् । सदक्षिणास्तु सजलास्तिस्रस्तु जलधेनवः ॥

५

“ निवेदयेत्पितृभ्यश्च तदग्रे तु समाहितः ” ॥

एवं संपूज्य पितृरुद्देशेन तिस्रो जलधेनूर्द्धात् । तत्र मन्त्रानाह

“ सोमाय त्वा पितृमते स्वधा नमः इति ब्रुवन् । अग्नये कव्यवाहनाय स्वधा नम इयि स्मरन् ।

“दक्षिणेन निदध्याच्च तृतीयां दक्षिणायुताम् । यमायाङ्गिरसे वाऽथ स्वधा नम इति स्मरन्” ॥

जलधेनुविधिर्दानमयूखे द्रष्टव्यः । “ तयोर्मध्ये तु निक्षिप्य विप्रान् पञ्चोपवेशयेत् ” ॥

१०

प्रथमाभ्युत्तरतः द्वितीयां दक्षिणतः तृतीयां मध्ये निक्षिप्येत्यर्थः ।

“ आवाहनादिना पूर्वं विश्वादेवान्प्रपूज्य च । वसुभ्यस्त्वामहं विप्र रुद्रेभ्यस्त्वामहं ततः ॥

“ सूर्येभ्यस्त्वामहं विप्र भोजयानीति तान्वदेत् । आवाहनादिकं सर्वं कुर्याच्च पितृकर्मवत्” ॥

वसुभ्यस्त्वामहं विप्र भोजयानीति । एवं रुद्रेभ्यः सूर्येभ्यः इत्युक्त्वाऽऽवाहनादिश्राद्धविधिना भोजयित्वा वस्वादिभ्यस्त्रीन् पिण्डान् दद्यादित्यर्थः ।

१५

“ सौम्या धेनुस्ततो देया वासवाय द्विजाय तु ” ॥ वासवाय च रक्षोद्देशेनोपवेशिताय ।

“ आग्नेयी वाऽथ रौद्राय याम्या सूर्यद्विजाय तु । विश्वेभ्यश्चाथ देवेभ्यस्तिलपात्रं निवेदयेत् ” ॥

तिलपात्रं कांस्य इति केचित् ।

“ स्वस्त्युदकमथाक्षय्यं जलं दत्त्वाऽथ तान् द्विजान् । विसर्जयेत्स्मरन् विष्णुं देवमष्टाक्षरं विभुम् ॥

‘ ॐ नमो नारायणाय ’ इत्यष्टाक्षरः । “ ततः कामकुलेशानं निशि नारायणं स्मरेत् ” ॥

२०

कामकुलेशानविशेषणकं नारायणमित्यर्थः । “ चतुर्दश्यां ततो गच्छेद्यथाप्राप्तां सारद्विराम् ।

“ पूर्वेण विप्रः सौम्येन राजा वैश्योऽपरेण च । दक्षिणेन तथा शूद्रो मार्गेण विकिरन्यवान् ” ॥

‘ गच्छेत् ’ इति शेषः । सौम्यमुत्तरम् । “ वस्त्राणि लोहखण्डानि जितं ते इति संस्मरन् ।

“ जितं ते पुण्डरीकाक्ष जितं ते विश्वभावन । नमस्तेऽस्तु हर्षाकेश महापुरुष पूर्वज ” ॥ इति ।

ततो नदीतीरे दक्षिणामुखः स्मार्तं लौकिकं वाऽग्निं स्वयं प्रज्वल्य चित्यर्थं गर्त्तस्नानमग्नि- २५

प्रार्थनादि प्रत्यक्षमरणवत्सर्वं कुर्यात् । जीवच्छान्दस्ते सर्वत्र प्रेतशब्दो न प्रयोज्यः । ततः प्रत्यक्ष-

शववद्वाहे कर्त्तव्यं स्वशास्त्रोक्तं पूर्णाहुत्यन्तं होमं कृत्वा प्रधानहोमस्थाने निरग्निर्मय्यै यमाय

रुद्राय च स्वाहा इति संस्कृताज्येनाहुतित्रयं हुत्वा पञ्चाशत्कुशैरात्मप्रतिकृतिमन्येन ‘ कव्याद-

मग्निम् ’ इत्यादिना स्वस्वमन्त्रेण दाहयेत् । ततो ‘ वातास्त ’ इत्यादि शवदाहवत् । ततो

मुद्गमिश्रं तिलमिश्रं च तण्डुलचरुद्वयमन्यस्मिन्नाग्नौ सपवित्रकं श्रपयेत् । तदाग्निसमीपे कर्षून् ३०

- कुत्वा प्रत्येकं मधुक्षीरघृतोदकैः पूरयेत् । तथान्ते मुद्गपूरितानि त्रीणि शरावाणि ' ॐ पृथिव्यै नमस्तुभ्यम् ॐ यमाय नमस्तुभ्यम् ॐ रुद्राय इमशानपतये नमस्तुभ्यम् ' इति प्रत्येकं निवेदयेत् । ततो दीप्तं प्रतिकृतिदाहार्थमग्निं ' ॐ ऋग्यादवह्नितप्तायै भूम्यै नमः ' इति पठन् क्षीराक्तजलकुम्भजलेन निर्वापयेत् । ततः स्नात्वा नाभिमात्रे जले स्थित्वा यमादिभ्यः सप्त
- ५ तिलाञ्जलीन् दद्यात् । तत्रायं क्रमः ' ॐ यमाय स्वधा नमः ' एवं ' मृत्यवेऽन्तकाय वैवस्वताय धर्मराजाय कालाय सर्वप्राणिहराय ' इति । ततः ' ॐ नमो रुद्राय इमशानपतये नमः ' इति मन्त्रेण लाजोदकपूर्णकुम्भं भुवि विकिरेत् । ततो दक्षिणाग्नेषु दर्भेषु ' स्वधाऽमुकगोत्रामुकैतत्तिलोदकं तुभ्यमस्त्विति तिलोदकं दद्यात् । शूद्रे स्वधास्थाने नमः । ततः पूर्वकृतचरुभ्यां पञ्च पञ्च पिण्डान् प्रत्येकं इत्येवं दश पिण्डान्स्वोद्देशेन पिण्डदानविधिना दत्त्वाऽर्घ्यं गन्धपुष्पधूपदीपबलीन् दत्त्वा प्रत्येकं सर्वेषाम्
- १० अक्षय्यमस्तु इति ब्रूयात् । ततो विष्णुं सौम्यमुखं स्मरेत् । पिण्डानामूष्मणि निवृत्ते एकैकं पिण्डं जलपूर्णकुम्भे निधाय नाभिमात्रे जले प्रविश्यैकैकं सकुम्भं जलमध्ये क्षिपेत् । तत एकैकं जलपूर्णकुम्भमेकैकं च तिलजलाञ्जलिमित्येवं पञ्चपञ्चाशत् कुम्भा जलाञ्जलयश्च देयाः । ततः स्नात्वा गृहे आगत्य गृहद्वारोपान्ते पात्रद्वये क्षीरं जलं च क्षिपन् ' जीवात्र स्नाहि ' इति जलं निवेद्य ' इदं दुग्धं पिब ' इति दुग्धं निवेदयेत् । तस्मिन्दिने आशौचम् । ततो रात्रौ दक्षिणामुखदर्भेषु
- १५ उदङ्मुखः स्वपेत् । प्रातरमावास्यायां स्नात्वा ' जीवच्छ्राद्धं करिष्ये ' इति सङ्कल्प्य सापिण्डकं स्वस्यैकोद्दिष्टं श्राद्धं कुर्यात् । सर्वत्र जीवच्छ्राद्धे प्रेतशब्दोच्चारणं नास्ति । अत्रोक्तजलधेनुविधिर्विष्णुधर्मोत्तरे " जलधेनुं प्रवक्ष्यामि प्रीयते दत्तया यथा ।
- " देवदेवो हृषीकेशः सर्वेशः सर्वभावनः । जलकुम्भं नरव्याघ्रं सुवर्णरजतान्वितम् ॥
- " रत्नगर्भमशेषैस्तु याम्यैर्धान्यैः समन्वितम् । सितवस्त्रयुगच्छन्नं दूर्वापल्लवशोभितम् ॥
- २० " कुष्ठमांसीसुरोशीरवालकामलकैर्युतम् । प्रियङ्गुपत्रसहितं सितवस्त्रोपवीतितम् ॥
- " सच्छत्रं सउपानत्कं दर्भविष्टरसंस्थितम् । चतुर्भिः संवृतं भूष तिलपात्रैश्चतुर्दिशम् ॥
- " स्थगितं दधिपात्रेण घृतक्षौद्रवता मुखे । उपोषितः समभ्यर्च्य वासुदेवं जलेशयम् ॥
- " पुष्पधूपोपहारैश्च यथाविभवमादृतः ॥
- " सङ्कल्प्य जलधेनुं च कुम्भं तमभिपूज्य च । पूजयेद्वत्सकं तद्वत्कृतं जलमयं बुधः ॥
- २५ " एवं संपूज्य गोविदं जलधेनुं सवत्सकाम् । सितवस्त्रधरः शान्तो वीतरागो विमत्सरः ॥
- " दद्याद्दिजाय राजेन्द्र प्रीत्यर्थं जलशायिनः । जलशायी जगद्योनिः प्रीयतां मम केशवः ॥
- " इति चोच्चार्य भूनाथ विप्राय प्रतिपाद्य ताम् । अपकान्नाशिना स्थेयमहोरात्रमतः परम् ॥
- " अनेन विधिना दत्त्वा जलधेनुं नराधिप । सर्वान्कामानवाप्नोति ये दिव्या ये च मानुषाः ॥
- " शरीरारोग्यमावाधाप्रशमः सार्वकामिकः । नृणां भवति दत्तायां जलधेन्वां समाहितः " ॥
- ३० अत्र जलकुम्भे शक्त्या परिमाणम् । सुवर्णाद्यन्वितत्वं च सुवर्णं शृङ्गाकृति रजतं सुराकृति तिलपात्रं कटिगतं ताम्रमयादि दधिपात्रं कांस्यमयम् धान्यानि पार्श्वद्वयम् श्राद्धदेशे

प्रियङ्गुपत्रं श्रमणे यज्ञोपवीतं शिरसि वत्सश्चतुर्थांशेन दक्षिणा च सुवर्णमारभ्य यथाशक्ति ।  
एतच्चेतरधेनुवत् ' अविरोधात्सामान्यात् इतरेषु तथात्वम् ' इति न्यायन ज्ञेयम् ।

इति श्रीमीमांसकशङ्करभट्टात्मजभट्टनीलकण्ठकृते भगवद्भास्करे श्राद्धमयूखः समाप्तः ।

न       "       "       " तृतीय       "

यकघट,,       "       " भास्करे श्राद्धमयूखः समाप्तोऽयं ।

क्ष.....कृतै श्राद्धमयूखस्तृतीयः ।

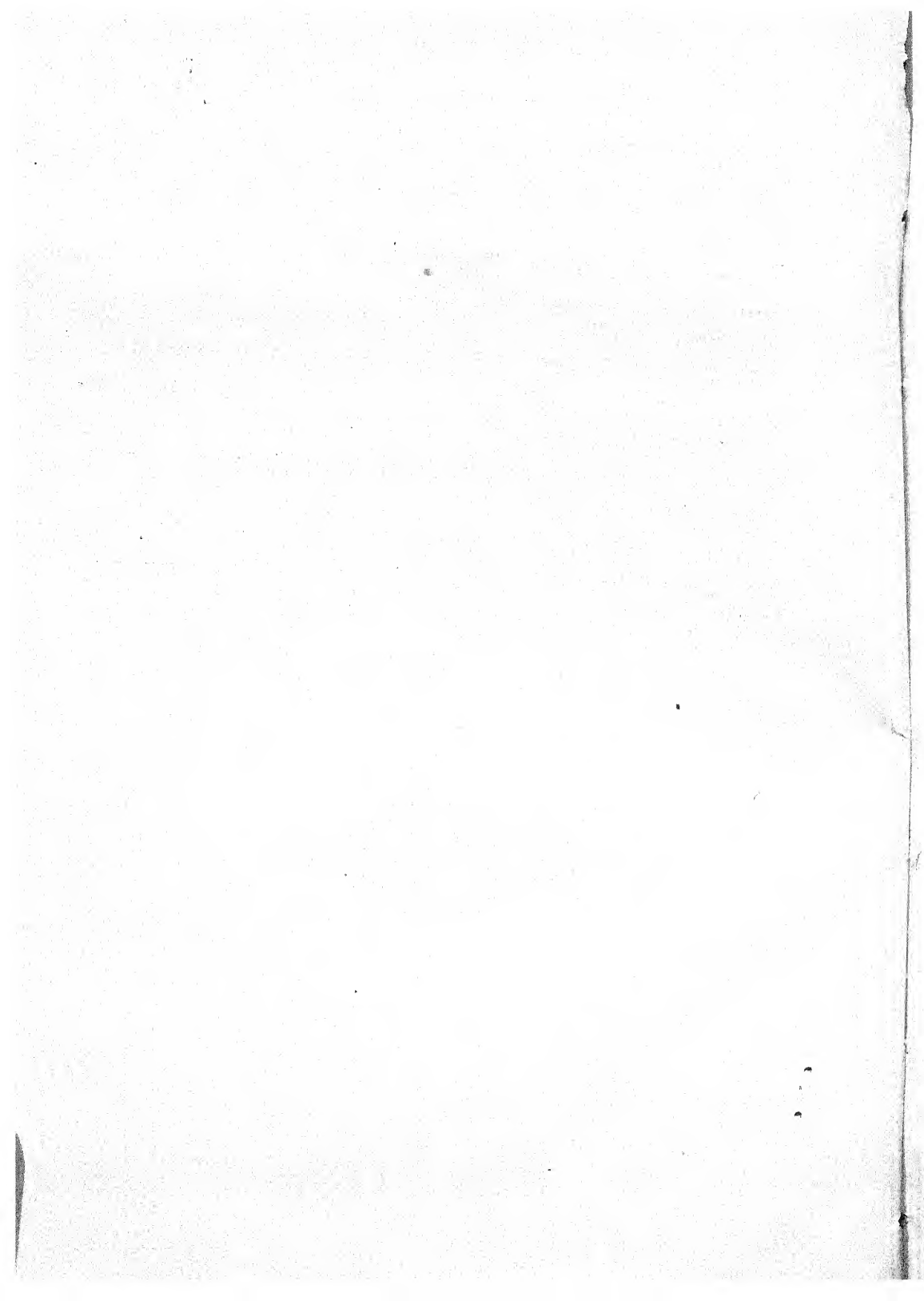
अबईड—इति श्रीसेंगरवंशावतंसमहाराजाधिराजश्रीभगवंतदेवादिष्टश्रीजगद्गुरुभट्टनारायणसूरिसूनुपंडित  
शिरोरत्नमीमांसापारावारपारीणधुरीणभट्टशंकरसूनोर्भट्टनीलकण्ठकृते भास्करे श्राद्धमयूखः । समाप्तम् ।

ज्ञ—इति श्रीसकलशास्त्राभिज्ञानछविरणपणसूरिसूनुमीमांसकशंकरभट्टात्मजनीलकण्ठकृते भास्करे श्राद्ध-  
मयूखश्चतुर्थः ।

ध—इति श्री सकलशास्त्राभिज्ञभट्टनारायणभट्टसूरिसूनुमीमांसकशंकरभट्टात्मजभट्टनीलकण्ठकृते भास्करे श्राद्धमयूखे ।  
समाप्तोऽयं ग्रंथः ।

र—इति श्रीसकलशास्त्राभिज्ञभट्टनारायणसूनुशंकरभट्टात्मजभट्टनीलकण्ठकृते भास्करे श्राद्धमयूखस्तृतीयः समाप्तः ।  
संवत् १७७९ ना वर्षे पौषमासे कृष्णपक्षे द्वितीयायां तिथौ मंदीवासरे अथाह्ने श्रीसूर्यपुरेवास्तव्ये ब्राह्मणसारस्वत-  
शौरठीज्ञातीयभट्टश्रीदामोदरसुतभट्टनारायणसुतभट्टकेशवजीलिखितं । शुभं शुभम् ।





# एतत्पुस्तकोद्धृतक्राणिवचनानामकारादिवर्णतः सूचिः ।

| क्राणिः                   | पृष्ठम्, | क्राणिः                           | पृष्ठम्, | क्राणिः                | पृष्ठम्, |
|---------------------------|----------|-----------------------------------|----------|------------------------|----------|
| <b>अग्निस्मृतिः</b>       |          | यदि द्विपिता                      | २५       | <b>उशानाः १७, ७२</b>   |          |
| एकचित्पां समारूढः         | ३०       | यश्चाथहरः                         | २१       | अपत्नाकः               | १७       |
| <b>अंगिराः</b>            |          | समौ साग्रौ दमौ                    | ३५       | एकाद्विष्टं न कुर्वीत  | ८६       |
| कपित्थबिल्वमात्रान्       | ५८       | सव्यंजान्वाच                      | ५८       | तिलोन्मश्रेण           | ५७       |
| त्रयोदश्यां रुष्णपक्षे    | १४       | <b>आश्वलायनः</b>                  |          | नालिकाशण               | ३३       |
| न जातकुसुमानि             | ३७       | अपः प्रदाय ( गृ. सू. १।५।७ )      | ४६       | पितुः सपिण्डीकरणं      | ८३       |
| प्रथमेऽन्दि द्वितीयेऽन्दि | ७६       | अथातः पावणे ( १।७।१ )             | ३, ७६    | भोजनं तु               | ५३       |
| <b>अग्निः १७,</b>         |          | आन्वष्टक्यं                       | ४८       | वृद्धिश्राद्धविहीनः    | ८५       |
| अगाधूमं च यच्छाद्वं       | ३१       | अपरेऽन्वष्टका ( २।५।१ )           | ३        | सिद्धान्ते तु          | ७३       |
| अपसव्यं                   | ४१       | अप्यनडुहो ( २।१।८ )               | ३        | <b>ऊहप्रकरणम्</b>      | ७४       |
| तदहश्चेत्                 | १६       | एतेन माध्याह्ने ( २।५।९ )         | १३       | मन्त्रोहेन             | २८       |
| पिता पितामहो              | ३८       | तस्यां पिण्डान्                   | ५८       | <b>ऋग्विधानम्</b>      |          |
| पितृणामासन्स्थानात्       | ५६       | तामभ्युक्ष्य                      | ५७       | एभयुभिजपेत्            | ४        |
| ब्रह्मयज्ञो जपे           | ३५       | ताः प्रतिग्राहयिष्यन् ( १।७।१२ )  | ४७       | <b>ऋग्यजुर्गः</b>      |          |
| भ्रात्रे भगिन्यै          | २५       | देवतास्तर्पयति ( ३।१।१ )          | २        | अपुत्रस्य तु           | २०       |
| युवं वस्त्राणि            | ४७       | नवमिश्रम्                         | ७६       | देये पितृणां           | १६       |
| हुंकारेणापि               | ५३       | पात्रेषु दर्भान्तरितेषु ( १।७।८ ) | ४७       | सपिण्डीकरणश्राद्धं     | ८५       |
| <b>अथर्ववेदः</b>          |          | यद्यदन्नमुपभुक्तं                 | ५८       | <b>कण्वः</b>           |          |
| पिनावत्स                  | ८०       | भुक्तवत्सु ( १।८।१२ )             | ५५       | एकमद्विश्य             | ३        |
| हिरण्यवर्णा               | ८०       | सरुदाच्छिन्नैः                    | ५७       | <b>कपर्दी</b>          | २        |
| <b>अधिकारिनिर्णयः ४</b>   |          | सर्वकर्माणि                       | ५७       | <b>कपिलः</b>           |          |
| <b>अध्ययनवादः १७</b>      |          | सृष्टदत्तं                        | ५३       | मन्वादिषु              | ६९       |
| <b>अन्त्येष्टिपद्धतिः</b> |          | संपन्नं पृष्ट्वा                  | ५४       | <b>कर्कः</b>           | २        |
| कनीयसा कृतं               | ८६       | हेमन्तशिशिरयोः ( २।१।१ )          | ३        | अन्यदीयश्राद्धोपकुप्तं | ४३       |
| <b>अपरार्कः ४८, ७३</b>    |          | <b>आश्वलायनगृह्यपरिशिष्टम्</b>    |          | आचान्तेषु              | ४१       |
| असंस्कृतप्रमीता           | ५५       | अतो देवा                          | ९०       | आपत्प्रवास             | ७२       |
| हंसे हंसस्थिते            | ५        | कर्षूंसमन्वितं                    | ९        | तलेरेव                 | ६२       |
| <b>आपस्तम्बः</b>          |          | जीवत्पिता सुतसंस्कारेषु           | २७       | पाणिहोमे               | ४९       |
| अटव्यां ये                | ३६       | सोपायामानि                        | ९०       | पिण्डदानमेव            | २        |
| तस्य मासिश्राद्धेन        | ३        |                                   |          | <b>कर्मप्रदीपः</b>     |          |
| पितरो देवताः ( २।१६।३ )   | २        |                                   |          | असरुयानि कर्माणि       | ८८       |

| ऋषिः                   | पृष्ठम्, | ऋषिः                     | पृष्ठम्, | ऋषिः                       | पृष्ठम्, |
|------------------------|----------|--------------------------|----------|----------------------------|----------|
| कर्मादिषु च सर्वेषु    | ८८       | कर्षूसमान्वितं           | १५       | ऋतुः                       |          |
| गणशः क्रियमाणेषु       | ८८       | ततः संवत्सरे             | ८५       | जीवत्पिता नैव              | २७       |
| नाष्टकास्तु भवेत्      | ८७       | तृप्तान् ज्ञात्वा        | ५४       | कालहेमाद्रिः               |          |
| प्रतिमासु च            | ८८       | दक्षिणेनोच्छिख्य         | ५७       | प्रौष्टपद्यां              | १३       |
| <b>कलिका</b>           |          | दक्षिणं पातयेत्          | ४४       | श्राद्धमेतेष्वकुर्वाणो     | "        |
| अक्षता गोपशुश्रूव      | ३४       | द्वे बहूनि               | २९       | <b>कालादर्शः</b> ८४, २६    |          |
| पितृव्यभ्रातृमातृणां   | २५       | निर्वर्त्य वृद्धितन्त्रं | २४       | अनमिकोऽपि ( हारीतः )       | ८९       |
| <b>कलिनिषिद्धानि</b>   |          | पात्राणां पूरणादीनि      | ९०       | अपुत्रा तु यदा भार्या      | १८       |
| दत्तौरसेषु             | २५       | पितुः पुत्रेण            | २०       | चौलाद्याब्दिकात्           | २२       |
| <b>कल्पतरुः</b>        |          | पितृव्यभ्रातृ            | २४       | दार्शिकस्य                 | २९       |
| पितृव्यायेकोद्दिष्ट    | ७५       | पित्र्ये यः              | ४९       | नित्यदार्शिकयोः            | "        |
| <b>काठकम्</b>          |          | ब्राह्मणादिहते           | ८५       | नित्यस्य चोदकुम्भस्य       | "        |
| गजच्छायासु कुर्वीत     | ५        | प्रातरामीत्रितान्        | ९०       | सपिण्डीकरणं ( ऋष्यशृंगः )  | ८५       |
| <b>काठकगृह्यम् ५</b>   |          | मातामहस्य                | ४९       | सर्वाभावे स्त्रियः कुर्युः | २२       |
| मघात्रयोदशी            | १४       | मा नः सप्त               | ८१       | <b>काश्यपः</b>             |          |
| <b>कातीयसूत्राणि ३</b> |          | या तिथिर्यस्य            | ११       | अनमिको                     | ४९       |
| <b>कात्यायनः २५</b>    |          | ये अमिदग्धा              | ५५       | काणादीन्                   | ३१       |
| अक्षय्योदकदानं         | ९१       | वृद्धो तीर्थे च          | २६, २७   | <b>कुत्तरत्नम्</b>         |          |
| अग्नौकरणहोमे           | ४८       | सदा परिचरेत्             | ८९       | पौर्णमासिषु ( वृद्धगर्गः ) | १९       |
| अर्द्धेन नास्ति        | ९१       | सपवित्रः सदर्भा          | ३५       | <b>कृष्णः</b>              |          |
| अनन्तर्गर्भितं         | ३५       | स पितुः                  | २७       | साण्डं नीलं शंसपादं        |          |
| अन्वष्टकासु            | ४        | सर्वमन्त्रं              | ५८       | <b>कौण्डिन्यः</b>          |          |
| अनाचान्तेषु            | ५५       | सौवर्णराजत               | ४६       | दर्शश्राद्धं गयाश्राद्धं   | २७       |
| अनिन्द्येन             | ४३       | स्वदितं                  | ७६       | <b>कौशिकः</b>              |          |
| अनुजा वाऽग्रजा         | २१       | स्वपितृभ्यः              | ८९       | शुचौ देशे                  | ३५       |
| अपवित्रः               | ३५       | होममन्येन                | ४४       | सप्तपत्राः शुभाः           | ३६       |
| अपुत्रायाः             | २१       | <b>काष्णार्जिनिः</b>     |          | <b>गर्गः</b>               |          |
| अश्वत्सु               | ५२       | अपसव्येन                 | ४१       | रुष्णे भाद्रपदे मासि       | ६८       |
| अथातयामं               | ८५       | अर्वागब्दात्             | ८५       | सर्वे तिलोदकं              | ६८       |
| असंस्कृतेन             | २२       | आदौ मध्येऽवसाने          | १०       | <b>वृद्धगर्गः</b>          |          |
| आपयन्सौ                | ७२       | नभस्यापरपक्षे            | ७        | प्राजापत्ये च              | "        |
| आमन्त्रित              | ४३       | पित्रोः श्राद्धे         | ३०       | पौष्णे च                   | ११       |
| उल्मुकं पुरस्तात्      | ५७       | पुत्रानायुस्तथा          | ९        | <b>गार्ग्यः ३०</b>         |          |
| एकमप्याशयेत्           | ९१       | स्त्रीहारी धनहारी        | २१       | अग्न्यभावे हि विप्रस्य     | ४९       |
| एकादशहं                | ८४       | श्राद्धं नैवेकवर्गस्य    | १४       |                            |          |



| ऋषिः                         | पृष्ठम्, | ऋषिः                   | पृष्ठम्, | ऋषिः                         | पृष्ठम्, |
|------------------------------|----------|------------------------|----------|------------------------------|----------|
| एकचित्प्यां समारुह्य         | ३०       | कन्यागते सवितरि        | १०       | व्याममात्रं समुत्सृज्य       | ५६       |
| नन्दायां भार्गवदिने          | ७८       | मृतेऽहनि तु संप्राप्ते | १७       | सपिण्डीकरणात्                | १२       |
| नैकगोत्रे                    | ३८       | चतुर्विंशतिमतम्        |          | जीवत्पितृकानिर्णयः           |          |
| स्थाहोते चैव देवानां         | ४६       | अर्घ्यपात्रं विधाय     | २७       | मुण्डनं                      |          |
| बुद्धगार्थः                  |          | एकस्मिन्ब्राह्मणे      | १२       | टोडरानन्दः १२                |          |
| पौर्णमासीषु                  | १९       | कोद्रवा राजमाषाः       | ३१       | ढण्डूपद्धतिः ७८              |          |
| गोमिलः ५७                    |          | चवारीहार्यपात्राणि     | ८५       | तातचरणाः ७, १८, २२, ३०       |          |
| अग्निदग्धास्तु ये जीवा       | ५५       | तिस्रस्तिष्ठः शलाकाः   | ४७       |                              | ५९       |
| अश्नन्स्तु जपेत्             | ५२       | द्वे द्वे शलाके        | ४६       | दक्षः                        |          |
| असोमपाश्र्व ये               | ५४       | द्वौ द्वौ चाभ्युदये    | ९०       | मुण्डनं पिण्डदानं च          | १५       |
| आमंत्रितो जपेत्              | ४४       | पितृव्यभ्रातृमातृणां   | २५       | ज्येष्ठभ्रातृपितृज्येष्ठ     | ६९       |
| कुशमूले                      | "        | प्रीयन्तामिति च        | ९१       | दिवोदासः                     | २८, ७२   |
| गोत्रायाश्चासने              | ४०       | मातामहीस्ततः           | ८८       | हेमश्राद्धे पिण्डनिवृत्तिरपि | ७३       |
| दर्शे रविग्रहे               | १९       | शेषपन्नमनुज्ञाप्य      | ९१       | दीपिका                       |          |
| पूर्णसंवत्सरे                | ८३       | विप्रभावे              | ४२       | मातृयजनं त्वन्वष्टकादि       | ४        |
| भुक्त्वाऽऽचम्य               | ५४       | चन्द्रिका ६, ८.        |          | देवलः                        |          |
| यस्य संवत्सरात्              | ८४       | न जपेत्पैतृकं          | ९०       | अघृतं भोजयेत्                | ९२       |
| षड्भ्यः                      | ८८       | छागलेयः                |          | अथ संगृह्य कलशं              | ५५, ५६   |
| हनुस्थलादधः                  | ३९       | एकैकस्य तु वर्गस्य     | ८९       | अथ सांजलिरुत्थाय             | ५७       |
| गालवः                        |          | पिण्डं यत्र निवर्तेत   | ७१       | अनेन विधिना                  | ९१       |
| मरणात्                       | ७८       | छान्दोगसूत्रम्         | ८७       | अभ्यज्य मधुसार्पिण्यां       | ५६       |
| गुरुचरणाः २३                 |          | चत्वार्येव             | ९०       | अहः षोडशकं                   | १०       |
| गौतमः                        |          | जमदग्निः               |          | आचान्तेभ्यः                  | ५९       |
| अदैवं पार्वणश्राद्धं         | ८२       | अपसव्यं                | ५९       | इन्दुक्षयो गजच्छाया          | ६        |
| अग्निन्येनामंत्रितेन         | ४३       | सर्वकर्माप्रसादेन      | ४१       | उपलिप्ते शुचौ देशे           | ५६       |
| अपरपक्षश्राद्धं              | ९        | जयन्तस्वामी ४९         |          | उपवेश्यासनं                  | ९२       |
| नवावरान् ( १५।७।८ )          | ४२       | जातृकर्ण्यः २५         |          | एकदर्भेण तन्मध्यं            | "        |
| पुत्राभावे सपिण्डाः ( २।१३ ) | २१       | अहन्वेव तु भोक्तव्यं   | ६०       | एकोद्विष्टे तु संप्राप्त्ये  | १६       |
| भोजयेदूर्ध्वं ( १५।२२ )      | ३८       | ऊर्ध्वं त्रिपक्षात्    | ७८       | कण्डूरं श्वेतरकम्            | ३३       |
| शिष्यांश्चैके ( १५-२० )      | "        | एकाहेन तु              | "        | नतश्चरुमुषादाय               | ५८       |
| विकिरमुच्छिष्टैः             | ५५       | ग्रहोपरागे             | ६        | तृतीया रोहिणीयुक्ता          | ६        |
| सद्यःश्राद्धी                | ४३       | द्वादश प्रतिमास्यानि   | ७६       | दक्षिणां पितृविश्रेष्ठ्यः    | ५९       |
| श्लोकगौतमः                   |          | निरामिषं सक्तु         | ४३       | द्वाता विप्रान्निमेषयेत्     | ४२       |
| एकद्वित्रि                   | ७७       | पितरि प्रोषिते         | १६       | द्व्यामुष्यायणका दयुः        | २५       |
| अपुत्रा तु                   | १८       | पितृव्यभ्रातृ          | २४       | नाश्रु संपातयेत्             | ५१       |

| ऋषिः                           | पृष्ठम्, | ऋषिः                        | पृष्ठम्,   | ऋषिः                     | पृष्ठम्,   |
|--------------------------------|----------|-----------------------------|------------|--------------------------|------------|
| पात्रालाभे                     | ७३, ७४   | अनेका मातरो यस्य            | ४          | पारिजातः                 | ७३         |
| पिण्डमात्रं प्रदातव्यं         | ७४       | निगमः                       | "          | प्रजामिष्टां यशः स्वर्गं | १३         |
| श्राद्धं कृत्वा                | ६०, ७१   | अक्षना गोपशुश्रूषेव         | १३, ३४, ५८ | रजस्वलायां भार्यायां     | १८         |
| हुत्वंवमोक्षे                  | ५६       | अपहृता                      | ४५         | पितामहचरणाः              | ४, २८, ७३, |
| देवस्वामी                      |          | अपेक्षितं यो न दद्यात्      | ५०         | ७५, ८५.                  |            |
| द्वैतनिर्गमः ३०, ५९            |          | अमावास्यां चत्क्रियते       | २          | अमावास्या व्यतीपात       | ५          |
| महालयं गयाश्राद्धे             | १२       | महालये गयाश्राद्धे          | १२         | पुराणानि                 |            |
| द्वैतानेर्गये (स्मृतिसंग्रहे)  |          | मासापूपफलेष्वादि            | ५३         | १ अग्निपुराणम्           |            |
| पत्नी भ्राता च तत्पुत्रः       | २१       | यावनालानपि                  | ३१         | अन्वष्टकामु              | ४          |
| धर्मः                          |          | राक्षोघ्नीः पावमानीः        | ५०, ५१     | अमेधुनादयः सर्वे         | ४३         |
| आमं तु द्विगुणं श्लोकं         | ७३       | निश्चन्धकाराः २९            |            | २ आदित्यपुराणम्          |            |
| कपांचिद्विकिरः पूर्व           | ५४       | निर्गन्धदीपिका              |            | अटवी पर्वताः             | १९         |
| पृच्छक्षय्यासने पष्ठी          | ३१       | मृताहनि पितुर्यो वै         | १०         | अपि कन्यागते सूर्ये      | ११, ४६     |
| धूम्रः                         |          | मृत्संहः                    |            | अष्टौ वाथ चनस्रो         | ८०         |
| कारिस्थस्य प्रमाणेन            | ५५       | पराशरः                      |            | घण्टां लोहकृतां          | "          |
| धौम्यः                         |          | हस्तऽग्नें करणं कुर्यात्    | ४८         | तदहस्तु शुचिभूत्वा       | ४३         |
| पितरा यत्र पूज्यन्ते ९, १४, २५ |          | ज्योतिःपराशरः               |            | देशकालधर्मश्रद्धा        | ९२         |
| नागरखण्डम्                     |          | विवाहं विहिते               | १९         | नवान्नलाभे               | ४६         |
| एवं सर्वाः क्रियाः             | ४०       | बृहत्पराशरः                 |            | पक्षान्तरेऽपि कन्यास्थे  | ९          |
| आषाढ्याः पंचमे                 | ९        | मघायुक्तत्रयोदश्यां         | १४         | मधुकं राठकं चैव          | ३३         |
| कुलाचारसमोपेतान्               | ४२       | यस्तु प्राणवधं कृत्वा       | ३४         | विप्रो तु प्राङ्मुखौ     | ४४         |
| ततः सपिण्डीकरणम्               | ८३       | युगादिषु मघायां च           | १९         | सावित्रीं च जपेत्तथा     | ८०         |
| नभो वाऽथ                       | ११       | बृहत्पराशरः                 |            | ३ कालिकापुराणम्          |            |
| पूर्वेद्युः सायमासाय           | ४२       | सपिण्डीकरणात्               | २५         | अनाश्रमी तु यो विप्रो    | ३९         |
| ब्राह्मणानां गृहं गत्वा        | "        | परिशिष्टम्                  |            | अरण्ये चत्वरं वाऽपि      | ७९         |
| मातमात्रे                      | ४०       | संप्राप्ते पार्वणश्राद्धे   | ७०         | ४ कूर्मपुराणम्           |            |
| यो वै श्राद्धं                 | १०       | पारस्करः                    |            | असमानप्रवरको             | ३७         |
| विभक्तिरहितं श्राद्धं          | ३९       | अकालमूलान्कलशान्            | ८०         | आढकीक्रोविदाराश्च        | ३२         |
| अपमृत्युर्भवेद्देश             | ७        | अथालंकृत्य तान् सर्वान्     | ८०         | उद्धृत्य वा यथाशाकि      | ९१         |
| असन्नानस्तु                    | १४       | अहरहस्तमस्मै ( ३१९०१९४ )    | ८२         | एकादशेऽग्निं कुर्वीत     | ७७         |
| नारदः                          |          | निषेककाले सोमे च            | ४५         | बिस्वामलकमृद्धीक         | ३२         |
| नारायणः                        |          | बहुतोयतृणेऽरण्ये            | ८१         | यस्य वदेशश्च वेदी च      | ३७         |
| अभोग्यं ब्राह्मणस्यान्नं       | ४२       | विधारयेन्नतं कश्चित्        | "          | ५ गरुडपुराणम्            |            |
| केतनं कारयित्वा तु             | ४३       | विप्राणां बाहुमात्रेण       | ५६         | उदासीनिष्वलंबयेयुः       | २८         |
| नारायणवृत्तिः                  |          | हिरण्यं विश्वेभ्यो देवेभ्यः | ५९         |                          |            |

| ऋषिः                        | पृष्ठम्, | ऋषिः                         | पृष्ठम्, | ऋषिः                      | पृष्ठम्, |
|-----------------------------|----------|------------------------------|----------|---------------------------|----------|
| सत्पामिर्दमपिञ्जलेः         | ३५       | अध्याः पुष्पेश्वर            | २७       | देशे काले च पात्रे च      | २        |
| यो विद्युद्दयं मन्त्रं      | ५२       | आश्रमाश्रतकं                 | ३२       | न सीमानमतिक्रमिन्         | २४       |
| <b>६ देवीपुराणम्</b>        |          | आषाढ्यामथ कार्तिक्यां        | ६        | नभस्य कृष्णपक्षे          | १०       |
| एवं कृत्वा ह्यवाप्नोति      | ८१       | गृह्जनं शुक्तिकां            | ३३       | नभस्य योनिसंबद्धा         | ३८       |
| एवं लेष्टेसर्गाविधिं        | ८१       | त्यम्बुवाजिनमिति             | ९१       | पितृभ्यः प्रथमं दद्यात्   | ४        |
| चतस्रो वत्सिका भद्रे        | ८०       | नान्दीमुखान्पितृन्           | ९०       | लोहितो यस्तु वर्णेन       | ७९       |
| संकुभिःपिंडदानं च           | ७४       | नान्दीमुखानां प्रत्यब्दं     | ८        | वज्रेण वा कुशैर्वापि      | ५६       |
| प्रतिसंवत्सरं कार्यम्       | १८       | नासौ वाह्यो                  | ८१       | वैश्वदेवाहृतीरमो          | ६९       |
| <b>७ नन्दिपुराणम्</b>       |          | निहन्मि सर्वं यद्मेध्यं      | ५७       | सर्वथाद्देऽञ्जनं पुष्पं   | ३२       |
| चत्वार आश्रमाः पुण्याः      | ३७       | पिना पितामहश्चैव             | ८९       | स्नाह्यशब्दं प्रयुज्जति   | ८९       |
| <b>८ नारदीयम्</b>           |          | प्रागुदस्रवणे देशे           | ७९       | <b>१५ भविष्यत्पुराणम्</b> |          |
| द्वे शुक्ले द्वे तथा कृष्णे | ६        | प्राङ्मुखान्स्वथ दर्भान्     | ९०       | अतिक्रान्ते न प्रेषोऽस्ति | ३४       |
| <b>९ बृहन्नारदीयम्</b>      |          | भोक्तुं श्राद्धे न चार्हन्ति | ३९       | कृत्वा श्राद्धं महाबली    | ७०       |
| पर्युः श्राद्धकृन्मर्त्या   | ६८       | माघस्य पौर्णमास्यां          | ६        | तस्माच्छ्रद्धयां समासाय   | ८२       |
| मांसदानं तथा श्राद्धे       | ३४       | यदा च श्राद्धिभ्यः           | १९       | दशकृत्वः पिबेदापो         | ४४       |
| वृद्धिश्राद्धे सपिण्ड्यां च | ६८       | यवैर्व्रीहितिलैर्मर्षैः      | ३१       | दिनमेकं न जानाति          | १६       |
| <b>१० पुराणम्</b>           |          | युवानः पितरो                 | ७        | नान्दीमुखान्समुद्दिश्य    | ८९       |
| उभौ हस्तौ समौ कृत्वा        | ४५       | योऽग्नौ तु विद्यमानेऽपि      | ९०       | पावमान्यश्च कृष्मांड्याः  | ५१       |
| जपेदायन्तु न इति            | ४७       | विश्वेदेवाश्च                | ९१       | पितृन्सन्तप्य विधिवत्     | ७०       |
| निरंगुलं गृहीत्वा त         | ४५       | वीणावंशध्वनिं चाथ            | ५१       | पुवाह्ने भोजयेद्विप्रान्  | ८९       |
| राक्षोघ्नी                  | ५२       | वृषभः कृष्णसारस्तु           | ७९       | पृषदाज्येन संयुक्तं       | ९०       |
| श्रद्धमौ गयां व्यात्वा      | ४५       | सेनवं लवणं चैव               | ३३       | प्राङ्मुखान्श्चतुरश्वेव   | ९०       |
| सस्त्रिद्व्यदशिष्याद्या     | १२       | <b>१३ ब्रह्मवैवर्तम्</b>     |          | मातापितामही चैव           | ९१       |
| सपिण्डीकरणादर्वाक्          | ७८       | पालाशे ब्रह्मवर्चस्वम्       | ३६       | यथा व्रतस्थोऽपि सुतः      | २०       |
| <b>११ पद्मपुराणम्</b>       |          | विप्रान्गृहस्थान्            | ३७       | यजमानोऽग्निमान् राजन्     | ८४       |
| अग्निदग्धास्तु              | ५५       | शिष्याश्च ऋत्विजः            | ३८       | यस्त्वासन्नमतिक्रम्य      | ३८       |
| एवं शूद्रोऽपि               | ९१       | <b>१४ ब्रह्माण्डपुराणम्</b>  |          | स्वर्गे पुरन्दरे सूर्य    | ८२       |
| कोद्रवोद्दालवरक             | ३१       | अलामे सति भिक्षूणां          | ३८       | <b>१६ भाविष्योत्तरम्</b>  |          |
| तिलार्धस्तु                 | ८९       | आदित्यब्रह्मणोश्चैव          | ५२       | आवाहनं स्वधाकारम्         | ८२       |
| तृप्तान् ज्ञात्वा           | ५४       | उच्छिष्टे सतिलान्            | ५४       | कार्तिक्यामथवा माघ्याम्   | ७९       |
| प्रौष्टयष्टका भूयः          | ३        | उत्तानेन तु हस्तेन           | ५७       | पिण्डनिर्वपणं कुर्यात्    | ९०       |
| मृतकान्ते द्वितीयेऽग्नि     | ८२       | कण्ठनं पेपणं चैव             | ५६       | प्रदद्याद्दक्षिणा शक्या   | ९२       |
| <b>१२ ब्रह्मपुराणम्</b>     |          | त्रिशंकोर्वजयेद्देशं         | १९       | साण्डं नीलं शंसपादम्      | ७९       |
| अथ वृत्ते वृषोत्सर्गे       | ८१       | त्रीन्पिण्डानानुपर्व्येण     | ५८       | मृतवाताश्रुतेर्ग्राह्या   | १६       |
| अर्घं पुष्पं च धूपं च       | ९१       | देवताभ्यः पितृभ्यश्च         | ४५       |                           |          |

| ऋषिः                     | पृष्ठम्, | ऋषिः                       | पृष्ठम्, | ऋषिः                     | पृष्ठम्, |
|--------------------------|----------|----------------------------|----------|--------------------------|----------|
| १७ भागवतम् ७।१५          |          | गायत्रीमात्रसारोऽपि        | ३८       | धर्मशास्त्रपुराणानि      | ५१       |
| न दद्यादामिषं श्राद्धे   | ३४       | यदि स्यादधिको विप्रो       | ३८       | विसर्ज्याप्यगुर्विण्यो   | ८०       |
| १८ भारतम्                |          | २१ माधवीये( पुराणम् )      |          | २८ स्कन्दपुराणम् २२      |          |
| गजच्छायासु कुर्वीत       | ५        | दशरुत्त्वपिबेच्चापः        | ७१       | उपसन्ध्यं न कुर्वीत      | १९       |
| १९ मत्स्यपुराणम् ५६      |          | २२ मार्कण्डेयपुराणम्       |          | पुलस्त्यः                |          |
| अग्निदग्धास्तु ये जीवाः  | ५५       | नैमित्तिकमथो वक्ष्ये       | ८७       | महालये                   |          |
| अग्न्यभावे तु विप्रस्य   | ४९       | पितृतीर्थेन तोयं च         | ५७       | पृथ्वीचन्द्रोदयः         |          |
| अभावे सर्वविद्यानां      | ५२       | पुत्रो भ्राता च तत्पुत्रः  | २२       | सपिण्डीकरणादूर्ध्वं      | २५       |
| अमावास्यायुक्ता          | २६       | राज्ञा वा धनहारिणा         | २३       | प्रघट्टकम् ७३            |          |
| अश्वयुक्शुक्लनवमी        | ६        | सख्युरुत्सन्नबंधोश्च       | २१       | आदौ पिता ततो माता        | १२       |
| आधत्त पितरो गर्भं        | ५९       | सर्वाभावे च नृपतिः         | २१       | प्रचेताः                 |          |
| इन्द्रेशसोमसूक्तानि      | ५१       | २३ वराहपुराणम्             |          | अपसव्यं ततः कुर्यात्     | ४०       |
| उत्सवानन्दसन्ताने        | ८८       | अन्यान्यपि तु पात्राणि     | ३७       | एकादशाद्याः क्रमशः       | २३       |
| उपलिप्ते महीपृष्ठे       | ५६       | २४ वामनपुराणम्             |          | एकोद्विष्टं यतेनास्ति    | १५       |
| कोद्रवोद्दालवरक          | ३२       | त्रयोदश्यां तु वै श्राद्धं | १४       | रुतचूडस्तु कुर्वीत       | २१       |
| जलजं वाऽपि कुर्वीत       | ३६       | २५ वायुपुराणम्             |          | रुतासपव्यः पूर्वद्युः    | ४२       |
| तथैव शान्तिकाध्याय       | ५१       | अरुताग्रयणं                | ३१       | रुग्णमाषास्ति लाश्र्वेव  | ३१       |
| तृत्यान् ज्ञात्वा        | ५४       | आहृत्य दक्षिणार्घिं        | ४८       | तृप्ता स्थः              | ५४       |
| न करोति वृषोत्सर्गं      | ७९       | न भोजयेदेकगोत्रान्         | ३८       | न जपेत्पैतृकं जप्यं      | ९०       |
| नाम गोत्रं पितृणां       | ४४       | पत्न्यै प्रजार्थी दद्यात्  | ५९       | नामंत्रणं न होमं च       | ९२       |
| पठन्निमन्त्र्य नियमान्   | ४२       | पात्रं वै तैजसं            | ३७       | पित्वाऽपोशानमश्रियात्    | ५३       |
| पाद्यं चैव तथा चार्घ्यं  | ४४       | पुत्राभावे तु पत्नी        | २३       | पुरुषव्रतानि             | ५२       |
| पुनर्भोजनमध्वानं         | ७१       | मधुसर्पिस्ति लायुतान्      | ५८       | भृत्यवर्गवृत्तो          | ६०       |
| ब्रह्मविष्णवर्करुद्राणां | ५०       | लशुनं गृज्जनं चैव          | ३३       | यजूर्षि चैव रुद्राश्च    | ५१       |
| बृहद्रथंतरं              | ५२       | वैश्वदेवे यदैकस्मिन्       | ४९       | वृक्षारोहणलोहाद्यैः      | ७        |
| भरणी पितृपक्षे           | १३       | श्राद्धानि षोडश            | २३       | शिरःप्रभृति पादान्तं     | ४६       |
| भवनस्याग्रतो भुवि        | ४४       | संन्यासिनोऽप्याब्दिकादि    | १३       | श्राद्धभुक् प्रातरुत्थाय | ५३       |
| भुंजीतातिथिसंयुक्तः      | ७०       | २६ विष्णुपुराणम्           |          | सपिण्डीकरणादूर्ध्वं      | २५       |
| मृतकान्ते द्वितीयेऽग्निं | ८२       | कन्यापुत्रविवाहेषु         | ८७       | स्यादन्न परिमाणान्तं     | ४३       |
| राजतैर्भाजनैर्दैयं       | ३६       | वैशाखमासस्य तु या          | ६        | प्रजापतिः                |          |
| विश्वान्देवान्यवैः       | ४६       | २७ सौरपुराणम्              |          | संङ्क्रान्तावुपरगे च     | ८        |
| विष्णोर्देहसमुद्रताः     | ३६       | अङ्गवङ्गकलिङ्गाश्च         | ३९       | प्रतापमार्तंडः           |          |
| न शक्नोति स्वयं कर्तुं   | ४३       | ततो वृषभमानीय              | ८०       | मधायुकत्रयोदश्यां        | १४       |
| २० महाभारतम्             |          | महादेवस्य पुरतो            | ४९       | यतीनां च वनस्थानां       | १३       |
| अश्राद्धेयानि धान्यानि   | ३१       |                            |          |                          |          |

| ऋषिः                             | पृष्ठम्, | ऋषिः                          | पृष्ठम्, | ऋषिः                     | पृष्ठम्, |
|----------------------------------|----------|-------------------------------|----------|--------------------------|----------|
| <b>प्रयागमाहात्म्यम्</b>         |          | तदेकोद्विष्टमेव स्यात्        | ७७       | यद्वेष्टिताशिरा भुंक्ते  | ५३       |
| <b>प्रयोगपारिजातः</b> २७, २७, ७१ |          | तस्मादेवंविधं (२।८।४) ३८      |          | विष्णो हृदयं च कव्यं च   | ५०       |
| अमा पाते भरण्यां च               | ११       | पादेन पायमाक्रम्य             | ५२       | अ. श्लो.                 |          |
| पितृमातृमातामहः                  | १२       | प्रदक्षिणं तु देवानां         | ४४       | २।१७१-१७२                | २१       |
| प्रेतपक्षे चतुर्दश्यां           | १४       | संन्यासं संकल्प्य             | ९२       | ३।२१                     | ८५       |
| यस्य जाताः प्रमीयेरत्            | ४५       | ब्रह्मसिद्धांतः               | ८३       | " ८२                     | ९१       |
| <b>प्रवराध्यायः</b>              |          | <b>भृगुः</b>                  |          | " १४५                    | ३७       |
| द्वे श्राद्धे कुर्यात्           | २५       | वृद्धिश्राद्धं तथा होमं       | ११       | " १४८                    | ३८       |
| <b>प्राच्याः</b> २, १०           |          | आमन्त्रितो जपद्गोमूत्रं       | ४४       | " २१२                    | ४९       |
| <b>पैठीनासिः</b>                 |          | आसने तु भवेत्स्वाहा           | ४०       | " २१५                    | ५८       |
| मासिकानि स्वकुले                 | ७६       | तां मृताहनि संप्राप्ते        | ३०       | " २३२                    | ५०       |
| बाणमासिकाब्दे श्राद्धे           | ७८       | <b>भ्रातृचरणाः</b>            | ७८       | " २४६                    | ५३       |
| सपिण्डीकरणादवाक्                 | ८४       | <b>योगयाज्ञवल्क्यः</b>        | ४६       | " २६७, २७२               | ३०       |
| सूतकं तं पृथक् पृथक्             | "        | <b>भट्टचरणाः</b> ७८           |          | " २७९                    | ४०       |
| <b>बृहस्पतिः</b>                 |          | <b>भार्गवः</b>                |          | ५।६                      | ३२       |
| अनामिद्धा ये जीवा                | ५५       | पिण्डवत्प्रतिपत्तिः स्यात्    | ५५       | ९।१४२                    | ९५       |
| अन्यदेशगता पत्नी                 | ५९       | <b>भारद्वाजः</b>              |          | <b>बृहन्मनुः</b>         |          |
| आचाम्नेषु पिण्डदानं              | ५५       | नकोद्धृतं तु यत्तुयं          | ३३       | आषाढमवधिं कृत्वा         | ९        |
| ऋजून्सव्येन वै                   | ४०       | मुद्राढकीमाषवर्जं             | ३१       | आलाप्ते त्रिलोकालानां    | ८९       |
| तां निशां ब्रह्मचारी स्यात्      | ५१       | <b>मण्डणः</b>                 |          | <b>वृद्धमनुः</b>         |          |
| दिनमानौ न विज्ञातौ               | १६       | तुल्य एवाधिकरः स्यात्         | १७       | प्रोषितस्य यद्यकालो      | १६       |
| न ज्ञायते मृताहश्चेत्            | १५       | <b>मदनपारिजातः</b> ७२         |          | श्रवणाश्विधनिष्ठाद्रा    | ५        |
| यद्येकं भोजयेच्छ्राद्धे          | ३७       | अक्षता गोपशुश्रूवेव           | ३४       | निमन्त्र्य विप्रास्तदह   | ४३       |
| सर्वस्मात्प्रकृतादन्नात्         | ५८       | <b>मदनरत्नम्</b>              |          | शुक्लाः सुमनसः श्रेष्ठाः | ३६       |
| स्वयं शिष्योऽथवा सुतः            | ४३       | अदैवं पार्वणश्राद्धं          | ८२       | समस्या भानुवारे च        | ६        |
| <b>वृद्धवृहस्पतिः</b>            |          | एकादशाद्याः क्रमशः            | २३       | <b>मयूखः</b>             |          |
| यस्य न श्रूयते वार्ता            | १६       | (स्मृतिः) नान्दीश्राद्धं पिता |          | <b>दानमयूखः</b> १३       |          |
| <b>बाष्पचंद्रः</b> ३३            |          | कुर्यात्                      | २६       | <b>समयमयूखः</b> ६०       |          |
| <b>बोपदेवः</b>                   |          | <b>मनुः</b> ८६,               |          | <b>संस्कारमयूखः</b> ३९   |          |
| ताताम्भ्रात्रितयं                | १२       | अपसव्यमसौ कृत्वा              | ५५       | <b>व्यवहारमयूखः</b> २५   |          |
| <b>बौधायनः</b>                   |          | अभ्युषणं सर्वमन्नं            | ५३       | <b>मरीचिः</b>            |          |
| अथ संवत्सरं पूर्णं               | ८३       | रुच्छद्वादशरात्रेण            | ५३       | अन्येषां तु विगर्हितं    | ७        |
| अपरपक्षे त्रयोदशं                | ९३       | प्रतिसंवत्सरं कार्यं          | २५       | अविद्वद्वर्णः कृष्णश्च   | ३९       |
| अपि स्नेहेन कुर्यात्तां          | २१       | प्रेते पितृत्वमापन्ने         | ८६       | आर्द्रामलकमात्रास्तु     | ५८       |
| जीवन्नेवात्मनः श्राद्धं          | ९२       | मुन्यन्नं ब्राह्मणस्योक्तं    | ३४       |                          |          |

| कृषिः                           | पृष्ठम्, | कृषिः                       | पृष्ठम्, | कृषिः                               | पृष्ठम्, |
|---------------------------------|----------|-----------------------------|----------|-------------------------------------|----------|
| आवाहने स्वधाकारे                | ७३       | आचान्तांश्चानुजानीयात्      | ५५       | लौगाक्षिः ३०                        |          |
| कटुकानि च सर्वणि                | ३१       | छन्दोगं भोजयेत्             | ३७       | अप्रशस्तेषु यागेषु                  | ५६       |
| तथा मातामहश्राद्धं              | ४४       | नक्षत्रतिथिपुण्याहान्       | ॥        | नामान्त्रचोलगोदान                   | ८७       |
| धान्याच्चतुर्गुणैव              | ७३       | पुनर्भोजनमध्वानं            | ४४, ७१   | पक्षान्तं कर्म निर्वर्त्य           | ७०       |
| पवित्रपाणयः सर्वे               | ४४       | प्रार्थयित प्रदोषाति        | ४२       | पुष्पवत्स्वपि दागेषु                | १८       |
| प्रदक्षिणं शिवा आपो             | ४१       | ब्रह्मोद्याश्च कथाः कुर्युः | ४५       | मासादौ मासिकं कार्यं                | ७७       |
| यद्यकेत्र भवेत्स्याताम्         | १२       | भिक्षुश्च ब्रह्मचारी च      | ४५       | मृताहनि तु संप्राप्ते               | ३०       |
| विषशस्त्रश्चापदादि              | ७        | यवहस्तस्ततो देवान्          | ॥        | श्राद्धं कुर्यादवश्यं               | ५        |
| स्त्रीणाममन्त्रकं श्राद्धं      | ७५       | विष्टरान्स्त्रीन्वपेत्ततः   | ५७       | श्राद्धानि षोडशापाद्य               | ७६       |
| हस्तं प्रक्षाल्य                | ५४       | सपिण्डीकरणदूर्ध्वं          | १५       | <b>वसिष्ठः</b>                      |          |
| <b>माधवः ५, ७, ८, १०, १५,</b>   |          | हंसे वर्षासु कन्यास्थे      | ११       | नन्दायां मार्गवादिने                | ११       |
| <b>१८, २९, ३३, ३८, ४४,</b>      |          | <b>याज्ञवल्क्यः</b>         |          | दौ देवे त्वथ पित्र्ये (११।२७) ४२    |          |
| <b>४५, ४६, ४७, ७७, ८४,</b>      |          | या दिव्या आपः               | ४७       | पितृभ्योदद्यात् (११।१२)             |          |
| <b>८५, ८६</b>                   |          | सत्सु विप्रेषु सवपु         | ५९       |                                     | ३८       |
| दत्त्वा हस्ते पवित्रं तु        | ४६       | आचारे                       | ८७       | वैश्वदेवमकृत्वैव                    | ७०       |
| सपिण्डीकरणादूर्ध्वं             | ८५       | १३                          | ३        | रविरविजभौमवारे                      | ७८       |
| <b>मार्कण्डेयः</b>              |          | २१७-१८                      | ३८       | सप्तमेऽग्निह तृतीयेऽग्निह           | ७६       |
| रुत्तिकासु पितृनर्च्य           | ८        | २२२-२२४                     | ४६       | प्राङ्मुखो देवतीर्थेन               | ९०       |
| चतुर्भिर्दग्धिपिञ्जलैः          | ३६       | २२८                         | ४५       | <b>वृद्धवसिष्ठः ८५</b>              |          |
| नान्दीमुखानां कुर्वीत           | ९१       | २२९                         | ४६       | श्राद्धानि षोडशाकृत्वा              | ८४       |
| नीवत्ताः पौष्कराश्चैव           | ३१       | २३०-२३२                     | ४०       | त्रिदशाःस्पर्शसमये                  | ६        |
| वज्र्याश्चाभिषवा नित्यं         | ३२       | २३४-३५                      | ४७       | <b>वाग्मटे ( वाण्यचन्द्रवचनम् )</b> |          |
| सपवित्रेण हस्तेन                | ३५       | २३६                         | ४८       | गन्धयुतिरसैस्तुल्यं                 | ३३       |
| सपिण्डीकरणादूर्ध्वं             | २५       | २३८-२४०                     | ५०       | तृप्तिप्रश्ने तु संपन्नं            | ९०       |
| <b>मिताक्षरा ५, १५, ७७, ८५,</b> |          | २४०                         | ५१       | मातृश्राद्धे तु विप्राणां           | ८९       |
| <b>८६,</b>                      |          | २४२-४३                      | ५८       | श्राद्धानि षोडशापाद्य               | ८४       |
| ( स्मृतिः ) अमावास्याक्षयो      | १५       | २४४-४८                      | ५९       | <b>वाचस्पतिमिश्राः ८९</b>           |          |
| <b>मेधातिथिः ३८</b>             |          | २४६                         | ७०       | <b>विष्णुः ८६</b>                   |          |
| <b>मैत्रायणीयपारिशिष्टम्</b>    |          | २५१-२५२                     | ७६       | उदङ्मुखेष्वाचमनादौ                  | ५४       |
| आन्वष्टक्यं गद्याश्राद्धं       | ४        | २५३-५४                      | ८५       | एकवन्मन्त्रान् ( २।१२ )             | ७५       |
| उद्धाहे पुत्रजनने               | २६       | २५५                         | ८२       | कोपं परिहरेत् ( ५।५२१ )             | ४३       |
| महानदीषु सर्वासु                | ॥        | २५६                         | ७६       | घृतेन दीपो दातव्यः                  | ४७       |
| <b>यमः ७७</b>                   |          | २६२-६४                      | ६        | दक्षिणाग्नेषु                       | ४७       |
| अभोज्यं ब्राह्मणस्यान्नं        | ४२       |                             |          | न प्रत्यक्षं लवणं ( ७९।१२ ) ३३      |          |
| अहिंसित्यमक्रोध                 | ४३       |                             |          | न वार्यपि प्रयच्छेत् ( ९३।७ ) ३९    |          |



| ऋषिः                          | पृष्ठम्, | ऋषिः                          | पृष्ठम्, | ऋषिः                          | पृष्ठम्, |
|-------------------------------|----------|-------------------------------|----------|-------------------------------|----------|
| नान्नमासनमारोपयेत्            | ५०       | स्तीर्त्वा पितृणां त्रिष्वेव  | २७       | शातातपः                       |          |
| पुत्रः पौत्रः प्रपौत्रो वा    | २०       | व्याघ्रः                      |          | आमश्राद्धं तु पुत्राद्धं      | ७३       |
| पितरि जीवति ( ७५११ )          | २७       | रुतचूडस्तु कुर्वीत            | २१       | उदङ्मुखस्तु देवानां           | २२       |
| पित्र्ये स्वदितं              | ५२       | व्यासः                        |          | छन्दोगं भोजयेच्छ्राद्धे       | ३७       |
| पुराणिकोद्दिष्टे              | ७५       | अरन्तिमात्रमुत्सृज्य          | ५६       | जपे होमे तथा दाने             | ३५       |
| भुक्वत्सु ब्राह्मणेभ्यः       | ५२       | आनन्यात्कुलधर्माणां           | ८२       | युवा सुवासा इति वस्त्रं       | २७       |
| मसूरक्षारवातार्क              | ३२       | आमं ददत्तु कौन्तेय            | ७२       | नानिष्टा तु पितृन् श्राद्धे   | ८७       |
| भूस्तृणशिशुसर्पण ( ७९११७ )    | ३३       | एकमप्याशयेद्विभ्रं            | ९१       | नांदीमुखास्तु पितरः           | ९१       |
| मातामहानामप्येवं ( ७५१८ )     | ७२       | द्विहायनस्य वत्सस्य           | ५८       | भोजयेद्यवार्णं                | ३७       |
| त्रयोऽर्थहः सः पिंडदायी       | २०, २१   | पिण्डोदकमदानं तु              | ५७       | सन्निकृष्टमधीयानं             | ३८       |
| शेषाणां मंत्रवर्जितम्         | ७५       | मासानेकदश प्रीतिः             | ३५       | सपिण्डीकरणादूर्ध्वं           | १५, २५   |
| संव्यारार्थोक्तं कर्तव्यं     | १९       | संकल्पं तु यदा कुर्यात्       | ७१       | वृद्धशातातपः                  |          |
| संपन्नं पृष्ट्वाञ्ज           | ५२       | सपवित्रकरो दर्भो              | २७       | पृथग्दिनेऽप्यशकश्चेत्         | ८९       |
| विष्णुधर्मोत्तरीयम्           |          | मासपक्षतिथिस्पृष्टे           | १५       | अपेक्षितं याचितव्यं           | ५३       |
| अतः काम्यानि वक्ष्यामि        | ८        | द्रव्याभावे द्विजामावे        | १७       | पिण्डनिर्वापरहितं             | १९       |
| अलंकुर्यात्ततः पश्चात्        | ८०       | पुष्करेष्वक्षयं श्राद्धं      | १९       | प्रदद्यात्प्राङ्मुखः पिण्डान् | ९०       |
| अश्वयुक्तशुक्लपक्षस्य         | ७९       | शङ्खः                         |          | श्राद्धदीपः ३२                |          |
| आहिताग्निस्तु जुहुयात्        | ८८       | अप्सु चैव कुशस्तल्पे          | २९       | अक्षता गोपशुश्रूषेव           | ५८       |
| अंकितं स्थापयेत्पश्चात्       | ८०       | आन्नान्पालेवनानिहन्           | ३२       | पितृव्यभ्रातृमातृणां          | २५       |
| उत्तरादयनाद्राजन्             | १०       | आयं श्राद्धमशुद्धोऽपि         | ७६       | श्राद्धविवेकः                 |          |
| गोश्वर्मोक्षिभिः              | ३१       | गोगजाश्वदिजुष्टेभ्यः          | १९       | एतच्चानुपनीतोऽपि              | २६       |
| जलधेनुं प्रवक्ष्यामि          | ६२       | भोजयेदथवाऽप्येकं              | २२       | शाकटायनः                      |          |
| ततोऽङ्कितं जपेन्मंत्रं        | ८१       | यदा विष्टिव्यतीपातो           | ६        | जलाग्निभ्यां विपन्नानां       | ७        |
| तथैव पौरुषं सूक्तं            | ७९       | श्राद्धपंक्तौ तु भुञ्जानः     | ५३       | शाट्यायनिः                    | ८५       |
| तीर्थश्राद्धे सदा पिण्डान्    | ५९       | श्राद्धे नियुक्तान्भुञ्जानान् | ५०       | प्रेतश्राद्धानि सर्वाणि       | ८५       |
| दक्षिणाप्रवणे देशे            | १९       | शंखकात्यायनौ                  |          | सपिण्डीकरणादूर्ध्वं           | ८५       |
| दधताभ्यः पितृभ्यश्च           | ५२       | पितुः पुत्रेण कर्तव्या        | २०       | शालंकायनः                     |          |
| पिण्डनिर्वपणे                 | ५२       | शंखलिखितौ                     |          | पिण्डावापमनुज्ञाप्य           | ५६       |
| मन्त्रं पितावत्स इति          | ८०       | अत्रतिरर्थं मध्ये             | ५१       | श्राद्धात्प्रावेव कुर्वीत     | ७०       |
| श्राद्धमेतेष्वकुर्वाणः        | २, १३    | गायत्रीं समनुश्राव्य          | ५५       | शास्त्रान्तरम्                |          |
| सर्वस्तरस्य मध्ये तु          | ७७       | दर्भेण्वासीनो मधुवाता         | ५०       | पंचानवस्थो गुरुभूमिपुत्रो     | ५        |
| विज्ञानेश्वरः                 | ३३, ८२   | पिण्डान्निदध्यात्सर्वेभ्यः    | ५७       | शिवधर्मोत्तरीयम्              |          |
| वैजवापः                       |          | ब्राह्मणा अन्नं गुणदोषैः      | ५३       | रक्तपतिंश्च कुसुमैः           | ८०       |
| स्नादिरोदुम्बराण्यर्घपात्राणि | ३६       | ( पारिजते ) शंखः              |          | शूलपाणिः ७५                   |          |
| तस्योपरि कुशान्दन्वा          | २७       | प्रजामिष्टां यशः स्वर्गं      | १३       |                               |          |

| क्राप्तिः                      | पृष्ठम् | क्राप्तिः                    | पृष्ठम् | क्राप्तिः                          | पृष्ठम् |
|--------------------------------|---------|------------------------------|---------|------------------------------------|---------|
| <b>शौनकः</b>                   |         | <b>संग्रहश्लोकः</b>          |         | <b>पाणिहोमे</b>                    | ५९      |
| देवार्षिक्षत्रर्षिषुमनुष्यर्षय | १२      | नन्दाश्वकामरव्यार            | ११      | <b>विश्वेदेवाः</b>                 | १२      |
| पूर्वयुनान्दीमुखश्चाद्         | १२      | <b>संवर्तः</b>               |         | सर्वाधानीदक्षिणादौ                 | ५०      |
| मातापित्रोः क्षयाहे तु         | ६९      | समसं यस्तु शक्नोति           | ७१      | <b>स्मृतिचंद्रिका</b> ५, ६, ८, १३, |         |
| हुत्वाग्नौ परिशिष्टं तु        | २८      | <b>सांख्यायनगृह्यम्</b>      |         | ४६, ४९, ५६, ७३, ८६, ९०             |         |
| <b>षट्त्रिंशन्मतम्</b>         |         | भुक्तवस्तु पिण्डान्दयात्     |         | <b>स्मृतिदर्पणम्</b> २६            |         |
| आमश्चाद् प्रकुर्वीत            | ७३      | (१८११३) ५५                   |         | स्वभर्तृभृतित्रिभ्यः               | २८      |
| एकादशाहे भेतस्य                | ७८      | <b>सांप्रदायिकाः</b> ८७      |         | <b>स्मृतिसंग्रहः</b>               |         |
| रुग्णधान्यानि सर्वाणि          | ३१      | <b>स्मृतिः</b>               |         | अमोक्षणमर्थं च                     | ७१      |
| मासिकाब्दे तु संप्राप्ते       | १६      | अमावस्या क्षयो यस्य          | १५      | चत्वारः पार्वणाः प्रोक्ताः         | २८      |
| बर्ज्या मर्कटकाः श्राद्धे      | ११      | एकस्मिन्द्वयोः               | ८       | नन्दाश्वकामरव्यार                  | ११      |
| वियमानधनो विद्वान्             | ४३      | जातमन्त्रोऽपि दौहित्रः       | १५      | पत्नी भ्राता च तत्पुत्रः           | २१      |
| सेव्यं जानु निर्गन्धैवं        | ५७      | नवश्चाद् सपिण्डत्वं          | ८६      | पितृमातृमातामहा                    | १२      |
| <b>संत्यग्रतः</b>              |         | पाणिरग्रहणाद्धि सहस्रं       | १८      | यतीनां च वनस्थानां                 | १३      |
| जर्तिलास्तु तिलाः प्रोक्ताः    | ३६      | भर्तुरग्रे मृता नारी         | ४       | <b>स्मृत्यर्थसारः</b> ३५, ७३, ८६   |         |
| <b>सत्याषाढसूत्रम्</b>         | ३       | शिवनेत्रे द्रवं यस्नात्      | ४६      | उग्रगन्धीन्यगन्धीनि                | ३६      |
| <b>सिद्धान्तशिरोमणिः</b>       |         | विभक्ता वाऽविभक्ता वा        | १४      | तुरुष्कं गुग्गुलं चैव              |         |
| मत्स्यन्ते परिमियन्ते          | ८३      | सर्वासामव मातृणां            | ४       | पाणिहोमे इध्ममेक्षण                | ४९      |
| <b>सुमंतुः</b> २२              |         | <b>स्मृत्यन्तरम्</b> १७      |         | सर्वाधानी दक्षिणाद्यैव             | २०      |
| अनुपेतोऽपि कुर्वीत             | २१      | अंगानि पितृयज्ञस्य           | ७१      | भेतपक्षे चतुर्दश्यां               | १४      |
| असाववनेनिश्च                   | ५७      | आदौ पिता ततो माता            | १२      | <b>स्मृतिसंग्रहः</b>               |         |
| कन्याराशौ महाराज               | ११      | उपवासो यदा नित्यः            | ७१      | पुत्रः कुर्यात्पितुः श्राद्धं      | २०      |
| क्राणाः कुंठाश्च मण्डाश्च      | ३९      | गौरी पद्मा शची मेधा          | ८८      | <b>स्मृतिरत्नावलिः</b> १, ७२       |         |
| जीवत्पितरि वै पुत्रः           | २७      | तृणानि वा गव्यं दद्यात्      | ६८      | <b>स्मृतिसमुच्चयः</b>              |         |
| ज्ञातिश्रेष्ठ्यं त्रयोदश्यां   | ७       | नैवं श्राद्धदिने दद्यात्     | ६८      | एकादश्यहात्पभृति                   | ८२      |
| तीर्थे श्राद्धं प्रकुर्वीत     | ७२      | पितृन् यजेत                  | २       | <b>हारीतः</b>                      |         |
| इर्मपाणिद्विराचम्य             | ४४      | प्रथमेऽग्निं तृतीयेऽग्निं    | ६८      | अत्रापतर इति                       | ५१      |
| तामिव्याहारयेद् ब्रह्म         | २१      | मधायुतायां तस्यां तु         | १३      | चान्द्रायणं नवश्चाद्               | ७६      |
| बीजपूरान्                      | ३१      | मध्याह्नात्परतो यस्तु        | ७३      | देवे वा यदि वा पित्र्ये            | ८३      |
| भेतश्चेद्वाहिताग्निः स्यात्    | ८४      | यदेन्दुः पितृदेवत्ये         | ५       | नित्यश्राद्धमेदं स्यात्            | ११      |
| पुत्रः स्वोत्पत्तिमात्रेण      | २२      | श्राद्धानुकल्पं यः कुर्यात्  | ७४      | पुनन्तु मा पितरः                   | ५१      |
| तदा चैव तु शूद्राणां           | ७२      | संकल्प्य पितृदेव्यभ्यः       | ५०      | मासे नभस्यमावास्या                 | ३५      |
| तत्त्वमागतस्यापि               | ७८      | <b>स्मृत्यर्थसारः</b> ७३, ८६ |         | या तु पूर्वममावास्या               | ८४      |
| तपिण्डीकरणादुध्व               | २१      | तुलसीपत्राणि देयानि          | ३६      | राजतकास्यपणताम्रपात्राणि           | ३७      |

| क्रषिः                        | पृष्ठम्. | क्रषिः                  | पृष्ठम्. | क्रषिः                   | पृष्ठम्. |
|-------------------------------|----------|-------------------------|----------|--------------------------|----------|
| बाजेवाजेत्यनुग्रजेत्यन्त      | ५६       | अन्यान्वप्याचारजप्यानि  | ५१       | त्रिमासं विहाय           | ८३       |
| आह्विघ्ने द्विजाती ।          | ७२       | अरमुत्यभवद्येषां        | ७        | दाताविघ्नान्निमन्त्रयेत् | ४२       |
| (कालादर्शं) अनमिकोऽपि कुर्वति | ८९       | अमा पाते भरण्यां च      | ११       | न पेतृयज्ञियो होमः       | ४८       |
| लघुहारीतः                     |          | अष्टकान्वष्टकास्तिस्र   | ४        | न वा उदेवा               | ५१       |
| अनामिस्तु यदा वरि             | ८३       | असन्तानस्तु यस्तस्य     | १४       | यज्ञोद्वाहप्रतिष्ठासु    | ८७       |
| एकोद्विष्टं तु कर्तव्यं       | ७२       | असौ वा आदित्य           | १२       | ललाटे पुङ्कं दृष्ट्वा    | ४७       |
| भ्राता वा भ्रातृपुत्रो वा     | २४       | आधानसोमयाम              | ४५       | विभक्ता वाऽविभक्ता वा    | १४       |
| सुमन्नुहारीतौ                 |          | आवाढ्याः पञ्चमे पक्षे   | १०       | वृद्धिश्चाद् न कर्तव्यं  | ८७       |
| जिवत्पितरि वै पुत्रो          | २७       | उत्तरादनान्नाजन्        | १०       | सन्निद्रव्यदग्ध्यायाः    | १२       |
| हेमाद्रिः                     |          | उपवीतस्वाहाकारा         | ४९       | सपिण्डीकरणादूर्ध्व       | १२       |
| ५, ८, ११, १५, १६, १७, ३०      |          | एकादशाह त्वभूति         | ८२       | कालहेमाद्रिः             |          |
| ३१, ३३, ३६, ३८, ३९, ४०        |          | केवलास्तु क्षये कार्यां | ४        | आद्रमेतेष्वकुर्वाणः      | १३       |
| ४३, ४६, ४९, ५६, ७०, ७१        |          | केषांचिद्विक्रिः पूर्वं | ५४       | आद्रहेमाद्रिः            |          |
| ७५, ८३, ८४, ८९, ९२.           |          | जातमात्राऽपि द्वाहित्रः | १५       | महालये गयाश्चाद्दे       | १२       |

## ( १ ) न्यायाः

|                                      |    |                         |    |                                 |    |
|--------------------------------------|----|-------------------------|----|---------------------------------|----|
| रुध्रोध्वर इति                       | २  | कलवत्संनिधानीवफलतदंगं.  | ४  | विःश्रामेव्याधिकरणन्यायः        | ४९ |
| गोचलीवदन्यायः                        | ३० | योगसिध्याधिकरणन्यायः    | ३० | श्रुतानुपत्तिमूलकशब्दकल्पनामपे- |    |
| न तौ पश करोति                        | २७ | रात्रिसत्राधिकरणन्यायः  | ७१ | क्षयलपयस्या लक्षणयेवाधिकार-     |    |
| न्यायसाम्यम् १९, २८,                 |    | रूढिर्योगमपहरति         | २  | समर्थनं ज्यायः                  | २६ |
| प्रकृतो । वरु-यादेशः                 | ३  | लिंगसमवायन्यायः         | ९  | सक-प्रवृत्तायाः किमवगुठनेन      | २० |
| प्रतिपत्तिकर्म प्रतिपाद्यभाषिलुप्यते | ७० | संख्यायुक्तेषु समुच्चयः | १० |                                 |    |

## ( २ ) श्रुतिवचनानि

|                           |    |                    |   |                      |    |
|---------------------------|----|--------------------|---|----------------------|----|
| अथर्षवदै                  |    | हिरण्यवर्णा        |   | तैत्तिरीये           |    |
| पिता वत्स                 | ८० | काठकश्रुतिः        |   | यत्समूलं तन्निवृणां  | ५७ |
| पितृदेवत्या वैनीवीः       | ४० | एतद्देव पितृणायमनं | ५ | शतपथश्रुतिः          |    |
| बज्जो वे स्फ्यः           | ५७ | देवानां सयवा वत्स  |   | अथ सकृदाच्छन्नायमूलं | ५७ |
| सव्योत्तराभ्यां पाणिभ्यां | ५७ |                    |   |                      |    |

